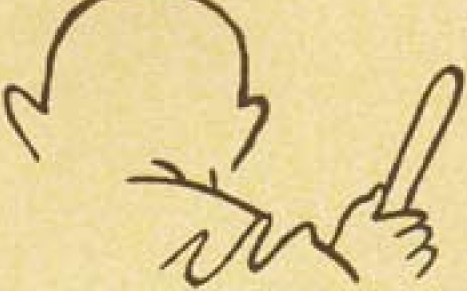

गांधी

की कहानी

लुई फिशर

गांधी की कहानी

सुप्रसिद्ध अमरीकी पत्रकार द्वारा लिखित

लेखक

लुई फिशर

अनुवादक

चंद्रगुप्त वार्ष्णेय

प्रकाशक

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

एन-77, पहली मंजिल, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली- 110 001

फोन / Phone : 011-23310505, 011-41523565

Email : sastasahityamandal@gmail.com

Visit us at : www.sastasahityamandal.org

प्रकाशकीय

गांधीजी के जीवन-काल में, उनके उत्सर्ग के बाद भी, भारतीय तथा विदेशी भाषाओं में उनका और उनसे संबंधित बहुत-सा साहित्य प्रकाशित हुआ है। ऐसी पुस्तकों में, जो उनके निधन के बाद प्रकाशित हुई हैं, सुप्रसिद्ध अमरीकी पत्रकार लुई फिशर की **दि लाइफ ऑफ़ महात्मा गांधी** अपने ढंग की एक ही है | प्रस्तुत पुस्तक उसी की हिन्दी-रूपांतर है।

गांधीजी का जीवन अपने परिवार या देश तक ही सीमित नहीं था। वह सारी मानवता के लिए था | इसलिए यह पुस्तक केवल गांधीजी की कहानी नहीं है, बल्कि भारत के स्वातंत्र्य-संग्राम और सारी मानवता के प्रति उनकी भावनाओं और कार्यों का अपने ढंग का इतिहास भी है।

लुई फिशर सिद्धहस्त पत्रकार थे | सारी सामग्री को उन्होंने इस तरह से प्रस्तुत किया है कि पुस्तक पढ़ने में उपन्यास का-सा आनंद आता है | कुछ प्रसंग तो बड़े ही सजीव, मार्मिक और नाटकीय हैं | एक विदेशी की कलम से अंकित राष्ट्रपिता की जीवनी होने के कारण यह हमारे लिए और भी अधिक दिलचस्पी की चीज़ बन गई है |

हमें विश्वास है कि यह पुस्तक अधिक-से-अधिक के हाथों में पहुँचेगी और इसके अध्ययन से पाठक पूरा लाभ उठायेंगे।

- **मंत्री**

दो शब्द

(विशेष रूप से हिन्दी-संस्करण के लिए)

दूसरे देशों की अक्सर यात्रा करते हुए मैं जितना अधिक इस दुनिया को देखता हूँ, उतना ही मेरा विश्वास गहरा होता जाता है कि अमरीका, यूरोप, एशिया, (जिसमें भारत भी शामिल है) तथा अन्य देशों का मार्गदर्शन, आध्यात्मिक अवलंबन तथा साहसपूर्ण कार्यों की मिसालों के लिए गांधीजी की ओर मुड़ने की आवश्यकता है | उनका जीवन मानवता की बहुत-सी समस्याओं का हल उपस्थित करता है, बशर्ते कि हम केवल वही करें, जो उन्होंने किया था।

- **लुई फिशर**

303, लेक्सिंग्टन एवेन्यू

न्यूयार्क

15 अगस्त, 1954

अनुक्रम

पहला भाग

अंत और प्रारंभ

1. प्रार्थना से पहले मृत्यु
2. गांधीजी की जीवन-झाँकी
3. पुत्र को पत्र
4. टाल्सटाय और गाँधी
5. भावी का पूर्वाभास
6. विजय

दूसरा भाग

गांधीजी भारत में

1. घर वापस
2. 'गांधी, बैठ जाओ'
3. हरिजन
4. नील
5. पहला उपवास
6. बकरी का दूध
7. गांधीजी राजनीति में
8. ऑपरेशन और उपवास
9. धन और गहने
10. मौन का वर्ष
11. थककर चूर
12. सत्याग्रह की तैयारी
13. समुद्र-तट की रंगभूमि

14. विद्रोही के साथ मंत्रणा

15. वापसी

16. अग्नि-परीक्षा

17. राजनीति से अलग

18. महायुद्ध का प्रारंभ

19. चर्चिल बनाम गांधी

20. गांधीजी के साथ एक सप्ताह

21. अदम्य इच्छा-शक्ति

22. जिन्ना और गांधी

तीसरा भाग

दो राष्ट्रों का उदय

1. स्वाधीनता के द्वार पर

2. भारत दुविधा में

3. गांधीजी से दुबारा भेंट

4. नोआखाली की महान यात्रा

5. प्रश्चिम को एशिया का संदेश

6. दुःखांत विजय

7. वेदना की पराकाष्ठा

8. भारत का भविष्य

9. आखिरी उपवास

10. अंतिम अध्याय

पहला भाग

अंत और प्रारंभ

1 / प्रार्थना से पहले मृत्यु

शाम को साढ़े चार बजे आभा भोजन लेकर आई। यही उनका अंतिम भोजन होनेवाला था | इस भोजन में बकरी का दूध, उबली हुई कच्ची भाजियाँ, नारंगियाँ, ग्वारपाठे का रस मिला हुआ अदरक, नीबू और घी का काढ़ा-ये चीजें थीं। नई दिल्ली में बिड़ला भवन के पिछवाड़ेवाले भाग में जमीन पर बैठे हुए गांधीजी खाते जाते थे और स्वतंत्र भारत की नई सरकार के उप-प्रधान-मंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल से बातें करते जाते थे। सरदार पटेल की पुत्री और उनकी सचिव मणिबहन भी वहाँ मौजूद थीं। बातचीत महत्त्वपूर्ण थी | पटेल और प्रधानमंत्री नेहरू के बीच मतभेद की अफवाहें थीं। अन्य समस्याओं की तरह यह समस्या भी महात्माजी के पल्ले डाल दी गई थी।

गांधीजी, सरदार पटेल और मणिबहन के पास अकेली बैठी आभा बीच में बोलने में सकुचा रही थी। परंतु समय-पालन के बारे में गांधीजी का आग्रह वह जानती थी । इसलिए उसने आखिर महात्माजी की घड़ी उठा ली और उन्हें दिखाई | गांधीजी बोले-"मुझे अब जाना होगा।" यह कहते हुए वह उठ, पास के गुसलखाने में गए और फिर भवन के बाईं ओर बड़े पार्क में प्रार्थना-स्थल की ओर चल पड़े | महात्माजी के चचेरे भाई के पोते कनु गांधी की पत्नी आभा और दूसरे चचेरे भाई की पोती मनु उनके साथ चलीं | उन्होंने इनके कंधों पर अपने बाजुओं को सहारा दिया | वह इन्हें अपनी 'टहलने की छड़ियाँ' कहा करते थे।

प्रार्थना-स्थान के रास्ते में लाल पत्थर के खंभोंवाली लंबी गैलरी थी | इसमें से होकर प्रतिदिन दो मिनट का रास्ता पार करते समय गांधीजी सुस्ताते और मज़ाक करते थे। इस समय उन्होंने गाजर के रस की चर्चा की, जो सुबह आभा ने उन्हें पिलाया था।

उन्होंने कहा-"अच्छा, तू मुझे जानवरों का खाना देती है!" और हँस पड़े।

आभा बोली--"बा इसे घोड़ों का चारा कहा करती थीं |"

गांधीजी ने विनोद करते हुए कहा-"क्या मेरे लिए यह शान की बात नहीं है कि जिसे कोई नहीं चाहता, उसे मैं पसंद करता हूँ?"

आभा कहने लगी-"बापू, आपकी घड़ी अपने को बहुत उपेक्षित अनुभव कर रही होगी | आज तो आप उसकी तरफ निगाह ही नहीं डालते थे |"

गांधीजी ने तुरंत ताना दिया-"जब तुम मेरी समय-पालिका हो, तो मुझे वैसा करने की जरूरत ही क्या है ?"

मनु बोली-"लेकिन आप तो समय-पालिकाओं को भी नहीं देखते |" गांधीजी फिर हँसने लगे।

अब वह प्रार्थना-स्थान के पासवाली दूब पर चल रहे थे | नित्य की सायंकालीन प्रार्थना के लिए करीब पाँच सौ की भीड़ जमा थी | गांधीजी ने बड़बड़ाते हुए कहा-"मुझे दस मिनट की देर हो गई | देरी से मुझे नफरत है। मुझे यहाँ ठीक पाँच पर पहुँच जाना चाहिए था।"

प्रार्थना-स्थान की भूमि पर पहुँचनेवाली पाँच छोटी सीढ़ियाँ उन्होंने जल्दी से पार कर लीं। प्रार्थना के समय जिस चौकी पर वह बैठते थे, वह अब कुछ ही गज दूर रह गई थी। अधिकतर लोग उठ खड़े हुए | जो नजदीक थे वे उनके चरणों में झुक गए। गांधीजी ने आभा और मनु के कंधों से अपने बाजू हटा लिए और दोनों हाथ जोड़ लिए।

ठीक इसी समय एक व्यक्ति भीड़ को चीरकर बीच के रास्ते में निकल आया। ऐसा जान पड़ा कि वह झुककर भक्त की तरह प्रणाम करना चाहता है, परंतु चूँकि देर हो रही थी, इसलिए मनु ने उसे रोकना चाहा और उसका हाथ पकड़ लिया। उसने आभा को ऐसा धक्का दिया कि वह गिर पड़ी और गांधीजी से करीब दो फुट के फासले पर खड़े होकर उसने छोटी-सी पिस्तौल से तीन गोलियाँ दाग दीं ।

ज्योंही पहली गोली लगी, गांधीजी का उठा हुआ पाँव नीचे गिर गया, परंतु वह खड़े रहे। दूसरी गोली लगी, गांधीजी के सफेद वस्त्रों पर खून के धब्बे चमकने लगे। उनका चेहरा

सफेद पड़ गया | उनके जुड़े हुए हाथ धीरे-धीरे नीचे खिसक गए और एक बाजू कुछ क्षण के लिए आभा की गरदन पर टिक गया।

गांधीजी के मुँह से शब्द निकले-"हे राम !" तीसरी गोली की आवाज हुई। शिथिल शरीर धरती पर गिर गया | उनकी ऐनक जमीन पर जा पड़ी | चप्पल उनके पाँवों से उतर गए।

आभा और मनु ने गांधीजी का सिर हाथों पर उठा लिया। कोमल हाथों ने उन्हें धरती से उठाया और फिर उन्हें बिड़ला भवन में उनके कमरे में ले गए। आँखें अधखुली थीं और शरीर में जीवन के चिह्न दिखाई दे रहे थे | सरदार पटेल, जो अभी महात्माजी को छोड़कर गए थे, उनके पास लौट आए। उन्होंने नाड़ी देखी और उन्हें लगा कि वह बहुत मंद गति से चलती हुई मालूम दे रही है। किसी ने हड़बड़ाहट के साथ दवाइयों की पेटी में ऐड्रिनेलीन तलाश की, लेकिन वह मिली नहीं ।

एक तत्पर दर्शक डा० द्वारकाप्रसाद भार्गव को ले आए। वह गोली लगने के दस मिनट बाद ही आ गए | डा० भार्गव का कहना है-"संसार की कोई भी वस्तु उन्हें नहीं बचा सकती थी। उन्हें मरे दस मिनट हो चुके थे।"

पहली गोली शरीर के बीच खींची गई रेखा से साढ़े तीन इंच दाहिनी ओर, नाभि से ढाई इंच ऊपर, पेट में घुस गई और पीठ में होकर बाहर निकल गई । दूसरी गोली इस मध्य-रेखा के एक इंच दाहिनी ओर पसलियों के बीच में होकर पार हो गई और पहली की तरह यह भी पीठ के पार निकल गई। तीसरी गोली दाहिने चुचुक से एक इंच ऊपर मध्य-रेखा के चार इंच दाहिनी ओर लगी और फेपड़े में ही धँसी रह गई।

डा० भार्गव का कहना था कि एक गोली शायद हृदय में होकर निकल गई और दूसरी ने शायद किसी बड़ी नस को काट दिया। उन्होंने बतलाया-"आंतों में भी चोट आई थी, क्योंकि दूसरे दिन मैंने देखा कि पेट फूल गया था।"

गांधीजी की निरंतर देखभाल करनेवाले युवक और युवतियाँ शव के पास बैठ गए और सिसकियाँ भरने लगे। डा० जीवराज मेहता भी आ पहुँचे और उन्होंने पुष्टि की कि मृत्यु हो

चुकी। इसी समय उपस्थित समुदाय में सुरसुराहट फैली। जवाहरलाल नेहरू दफ्तर से दौड़े हुए आए। गांधीजी के पास घुटनों के बल बैठकर उन्होंने अपना मुँह खून से सने कपड़ों में छिपा लिया और रोने लगे। इसके बाद गांधीजी के सबसे छोटे पुत्र देवदास और मौलाना आजाद आए | इनके पीछे बहुत से प्रमुख व्यक्ति थे।

देवदास ने अपने पिता के शरीर को स्पर्श किया और उनके बाजू को धीरे-से दबाया | शरीर में अभी तक हरारत थी। सिर अभी तक आभा की गोद में था। गांधीजी के चेहरे पर शांत मुसकराहट थी | वह सोए हुए-से मालूम पड़ते थे। देवदास ने बाद में लिखा था-"उस दिन हमने रात-भर जागरण किया | चेहरा इतना सौम्य था और शरीर को चारों ओर आवृत्त करनेवाला दैवी प्रकाश इतना कमनीय था कि शोक करना मानो उस पवित्रता को नष्ट करना था।"

विदेशी कूटनीतिक विभागों के लोग शोक-प्रदर्शन करने के लिए आए, कुछ तो रो भी पड़े।

बाहर भारी भीड़ जमा हो गई थी और लोग महात्माजी के अंतिम दर्शन की माँग कर रहे थे। इसलिए शव को सहारा लगाकर बिड़ला भवन की छत पर रख दिया गया और उस पर रोशनी डाली गई | हजारों लोग हाथ मलते हुए और रोते हुए खामोशी के साथ गुजारने लगे।

आधी रात के लगभग शव नीचे उतार लिया गया। शोकग्रस्त लोग रात-भर कमरे में बैठे रहे और सिसकियाँ भरते हुए गीता तथा अन्य मंत्रों का पाठ करते रहे।

देवदास के शब्दों में-"पौ फटने के साथ ही हम सबके लिए सबसे असह्य दर्द-भरा क्षण आ पहुँचा ।" अब उस ऊनी दुशाले और सूती चादर को हटाना था, जिन्हें गोली लगते समय महात्माजी सर्दी से बचने के लिए ओढ़े हुए थे। इन निर्मल शुभ्र वस्त्रों पर खून के दाग और धब्बे दिखाई दे रहे थे। ज्योंही दुशाला हटाया गया, एक खाली कारतूस निकलकर गिर पड़ा।

अब गांधीजी सबके सामने केवल घुटनों तक की सफेद धोती पहने हुए पड़े थे। सारी दुनिया उन्हें इसी तरह धोती पहने देखने की आदी थी। उपस्थित लोगों में बहुतों का धीरज छूट गया और वे फूट-फूटकर रोने लगे। इस दृश्य को देखकर लोगों ने सुझाव दिया कि मसाला लगाकर शव को कुछ दिन रखा जाय, ताकि नई दिल्ली से दूर के मित्र, साथी और संबंधी दाह से पहले उसके दर्शन कर सकें। परंतु देवदास, गांधीजी के निजी सचिव प्यारेलाल नैयर तथा अन्य लोगों ने इसका विरोध किया। यह चीज हिन्दू धार्मिक भावना के प्रतिकूल थी और उसके लिए "बापू हमें कभी क्षमा नहीं करेंगे ।" इसके अलावा वे गांधीजी के भौतिक अवशेष को सुरक्षित रखने के किसी भी प्रस्ताव को प्रोत्साहन नहीं देना चाहते थे। इसलिए शव को दूसरे दिन जलाने का निश्चय किया गया।

सुबह होते ही गांधीजी के अनुयायियों ने शव को स्नान कराया और गले में हाथ कते सूत की एक लच्छी तथा एक माला पहना दी। सिर, बाजुओं और सीने को छोड़कर बाकी शरीर पर ढकी हुई ऊनी चादर के ऊपर गुलाब के फूल और पंखुड़ियाँ बिखेर दी गईं। देवदास ने बतलाया-"मैंने कहा कि सीना उघड़ा रहने दिया जाय । बापू के सीने से सुंदर सीना किसी सिपाही का भी न होगा।" शव के पास धूप-दान जल रहा था।

जनता के दर्शनों के लिए शव को सुबह छत पर रख दिया गया।

गांधीजी के तीसरे पुत्र रामदास 11 बजे हवाई जहाज द्वारा नागपुर से आए। दाह-संस्कार उनके ही लिए रुका हुआ था। शव नीचे उतार लिया गया और उसे बाहर के चबूतरे पर ले गए। गांधीजी के सिर पर सूत की एक लच्छी लपेट दी गई थी | चेहरा शांत, किन्तु बड़ा ही विषादपूर्ण, दिखाई दे रहा था | अर्थी पर स्वतंत्र भारत का तिरंगा झंडा डाल दिया गया था।

रात-भर में 15-हंडरवेट सैनिक हथियार-गाड़ी के इंजनदार फ्रेम पर एक नया ऊँचा ढाँचा खड़ा कर दिया गया था, ताकि खुली अर्थी पर रखा हुआ शव सब दर्शकों को नज़र आता रहे | भारतीय स्थल-सेना, जल-सेना और वायु-सेना की दो सौ जवान चार मोटे रस्सों से

गाड़ी को खींच रहे थे। एक छोटा सैनिक अफसर मोटर के चक्के पर बैठा | नेहरू, पटेल, कुछ अन्य नेता तथा गांधीजी के कुछ युवा साथी इस वाहन पर सवार थे।

नई दिल्ली में अलबुकर्क रोड पर बिड़ला-भवन से दो मील लंबा जुलूस पौने बारह बजे रवाना हुआ और मनुष्यों की अपार भीड़ के बीच एक-एक इंच आगे बढ़ता हुआ चार बजकर बीस मिनट पर साढ़े पाँच मील दूर जमुना-किनारे पहुँचा। पंद्रह लाख जनता जुलूस के साथ थी और दस लाख दर्शक थे। नई दिल्ली के आलीशान छायादार पेड़ों की डालियाँ उन लोगों के बोझ से झुक रही थीं, जो जुलूस को अच्छी तरह देखने के लिए उनपर चढ़ गए थे। बादशाह जार्ज पंचम की ऊँची श्वेत प्रतिमा की चौकी, जो एक बड़ी तलैया के बीच बनी हुई है, सैकड़ों लोगों से ढक गई थी। ये लोग पानी में होकर वहाँ जा पहुँचे थे।

कभी-कभी हिन्दुओं, मुसलमानों, पारसियों, सिक्खों और ऐंग्लो-इंडियनों की आवाजें मिलकर 'महात्मा गांधी की जय' के नारे बुलंद करती थीं। बीच-बीच में भीड़ मंत्र-उच्चारण करने लगती थी। तीन डेकोटा वायुयान जुलूस के ऊपर उड़ रहे थे। ये सलामी देने के लिए झपकी खाते थे और गुलाब की असंख्य पंखुड़ियाँ बरसा जाते थे |

चार हजार सैनिक, एक हजार वायु सैनिक, एक हजार पुलिस के सिपाही और सैनिक भाँति-भाँति की रंग-बिरंगी वर्दियाँ और टोपियाँ पहने हुए अर्थी के आगे और पीछे फौजी ढंग से चल रहे थे। गवर्नर-जनरल लार्ड माउंटबेटन के अंगरक्षक भालेधारी सवार, जो लाल और सफेद झंडियाँ ऊँची किए हुए थे, इनमें उल्लेखनीय थे। व्यवस्था कायम रखने के लिए बख्तरबंद गाड़ियाँ, पुलिस और सैनिक मौजूद थे। शव-यात्रा के संचालक मेजर जनरल राय बूचर थे। यह अंग्रेज थे, जिन्हें भारत सरकार ने अपनी सेना का प्रथम प्रधान सेनापति नियुक्त किया था।

जमुना की पवित्र धारा के किनारे लगभग दस लाख नर-नारी सुबह से ही खड़े और बैठे हुए स्मशान में अर्थी के आने का इंतजार कर रहे थे। सफेद रंग ही सबसे ज्यादा झलक रहा था-स्त्रियों की सफेद साड़ियाँ और पुरुषों के सफेद वस्त्र, टोपियाँ और साफे |

नदी से कई सौ फुट की दूरी पर पत्थर, ईंट और मिट्टी की नव-निर्मित वेदी तैयार थी। यह करीब दो फुट ऊँची और आठ फुट लंबी व चौड़ी थी। इस पर धूप छिड़की हुई चंदन की पतली लकड़ियाँ जमाई हुई थीं। गांधीजी का शव उत्तर की ओर सिर तथा दक्षिण की ओर पाँव करके चिता पर लिटा दिया गया। ऐसी ही स्थिति में बुद्ध ने प्राण त्याग किए थे।

पौने पाँच बजे रामदास ने अपने पिता की चिता में आग दी । लकड़ियों में लपटें उठने लगीं | अपार भीड़ में से आह की ध्वनि निकली | भीड़ बाढ़ की तरह चिता की ओर बढ़ी और उसने सेना के घेरे को तोड़ दिया। परंतु उसी क्षण लोगों को भान हुआ कि वे क्या कर रहे हैं। वे अपने नंगे पाँवों की उँगलियाँ जमीन में जमाकर खड़े हो गए और दुर्घटना होते-होते बच गई।

लकड़ियाँ चटखने लगीं और आग तेज होने लगी। लपटें मिलकर एक बड़ी लौ बन गई। अब खामोशी थी | गांधीजी का शरीर भस्मीभूत होता जा रहा था।

चिता चौदह घंटे तक जलती रही। सारे समय में भजन गाए जाते रहे और पूरी गीता का पाठ किया गया। सत्ताईस घंटे बाद, जब आखिरी अंगारे ठंडे पड़ गए, तब पंडितों, सरकारी पदाधिकारियों, मित्रों तथा परिवार के लोगों ने चिता के चारों ओर पहरा लगे हुए तार के बाड़े के भीतर विशेष प्रार्थना की और भस्मी तथा अस्थियों के वे टुकड़े, जिन्हें आग जला नहीं पाई थी, एकत्र किए | भस्मी को स्नेह के साथ पसों में भर-भरकर हाथ कते सूत के थैले में डाल दिया गया। भस्मी में एक गोली निकली | अस्थियों पर जमुना-जल छिड़ककर उन्हें तांबे के घड़े में बंद कर दिया गया | रामदास ने घड़े की गरदन में सुगंधित फूलों का हार पहनाया। उसे गुलाब की पंखुड़ियों से भरी टोकरी में रखा और छाती से लगाकर बिड़ला-भवन ले गए।

गांधीजी के कई घनिष्ट मित्रों ने भस्मी की चुटकियाँ माँगीं और दे दी गईं। एक ने भस्मी के कुछ कण सोने की मुहरदार अंगूठी में भरवा लिए। परिजनों तथा अनुयायियों ने छहों महाद्वीपों से भस्मी के लिए आई हुई प्रार्थनाओं को अस्वीकार करना तय किया। गांधीजी

की कुछ भस्मी तिब्बत, लंका और मलाया भेजी गई। परंतु अधिकांश भस्मी हिन्दू रिवाज के अनुसार, मृत्यु के ठीक चौदह दिन बाद, भारत की नदियों में विसर्जित कर दी गई।

भस्मी, प्रदेशों के मुख्य मंत्रियों तथा अन्य उच्च पदाधिकारियों को दी गई | प्रादेशिक राजधानियों ने अपने हिस्से की भस्मी छोटे शहरी केन्द्रों में बाँट दी। भस्मी का सार्वजनिक प्रदर्शन हर जगह भारी तीर्थयात्रा बन गया और नदियों में अथवा बंबई जैसी जगह समुद्र में, भस्मी का अंतिम विसर्जन भी इसी प्रकार हुआ।

अस्थि-विसर्जन का मुख्य संस्कार इलाहाबाद में गंगा, जमुना और सरस्वती के पुनीत संगम पर हुआ। 11 फरवरी को सुबह 4 बजे तीसरे दर्जे के पाँच डिब्बों की एक स्पेशल ट्रेन दिल्ली से रवाना हुई । गांधीजी हमेशा तीसरे दर्जे में यात्रा किया करते थे। ट्रेन के बीच का डिब्बा, जिसमें भस्मी और अस्थियों का घट रखा हुआ था, छत तक फूलों से भरा था और आभा, मनु, प्यारेलाल नैयर, डा० सुशीला नैयर, प्रभावती नारायण और गांधीजी के अन्य दैनिक साथी घट की निगरानी पर थे। रास्ते में ट्रेन ग्यारह नगरों पर ठहरी; हर जगह लाखों नर-नारियों ने श्रद्धा से सिर झुकाए; प्रार्थनाएँ कीं और गाड़ी पर फूलों के हार व गुलदस्ते चढ़ाए।

12 तारीख को इलाहाबाद में यह घट लकड़ी की एक छोटी-सी पालकी पर रखा गया और बाद में मोटर-ट्रक पर आसीन कराकर शहर और आसपास के गाँवों के पंद्रह लाख जन-समूह को चीरते हुए आगे ले जाया गया। सफेद वस्त्र धारण किए हुए नर-नारी ट्रक के आगे भजन गाते हुए चल रहे थे। एक गायक प्राचीन बाजा बजा रहा था। ट्रक गुलाब के चलते-फिरते बगीचे जैसा नजर आ रहा था। उत्तर-प्रदेश की राज्यपाल श्रीमती सरोजिनी नायडू, आजाद, रामदास और पटेल आदि उस पर सवार थे | मुट्ठियाँ भींचे हुए और सीने तक चेहरा झुकाए हुए नेहरू पैदल चल रहे थे।

धीरे-धीरे ट्रक नदी के किनारे पहुँचा, जहाँ उसे सफेद रंगी हुई अमरीकन फौजी डक[1] पर रख दिया गया। अन्य डकें और नावें नदी के बहाव की ओर उसके साथ चलीं | गांधीजी

की अस्थियों के नजदीक पहुँचने के लिए लाखों आदमी घुटनों पानी में दूर तक जा पहुँचे। जब घट उलटा गया और उसमें भरी हुई भस्मी और अस्थियाँ नदी में गिरी, तब इलाहाबाद के किले से तोपों ने सलामी दी। भस्मी पानी पर फैल गई | अस्थियों के टुकड़े तेजी के साथ समुद्र की ओर बह चले।

गांधीजी की हत्या से सारे भारत में व्याकुलता तथा वेदना की लहर दौड़ गई। ऐसा जान पड़ता था कि जो तीन गोलियाँ गांधीजी के शरीर में लगी थीं, उन्होंने करोड़ों के मर्म को बेध डाला था। इस आकस्मिक समाचार ने कि इस शांतिदूत को, जो अपने शत्रुओं से प्रेम करता था और किसी कीड़े को भी मारने का इरादा नहीं रखता था, उसीके एक देशवासी तथा सहधर्मी ने गोली से मार डाला, राष्ट्र को चकित, स्तंभित और मर्माहत कर दिया।

आधुनिक इतिहास में किसी व्यक्ति के लिए इतना गहरा और इतना व्यापक शोक आज तक नहीं मनाया गया |

30 जनवरी 1948 को शुक्रवार जिस दिन महात्माजी की मृत्यु हुई, उस दिन वह वहीं थे, जैसे सदा से रहे थे-अर्थात् एक साधारण नागरिक, जिसके पास न धन था, न संपत्ति, न सरकारी उपाधि, न सरकारी पद, न विशेष प्रशिक्षण-योग्यता, न वैज्ञानिक सिद्धि और न कलात्मक प्रतिभा | फिर भी, ऐसे लोगों ने, जिनके पीछे सरकारें और सेनाएँ थीं, इस अठहत्तर वर्ष के लंगोटीधारी छोटे-से आदमी को श्रद्धांजलियाँ भेंट कीं | भारत के अधिकारियों को विदेशों से समावेदना के 3441 संदेश प्राप्त हुए, जो सब बिन माँगे आए थे, क्योंकि गांधीजी एक नीतिनिष्ठ व्यक्ति थे, और जब गोलियों ने उनका प्राणांत कर दिया, तो उस सभ्यता ने जिसके पास नैतिकता की अधिक संपत्ति नहीं है, अपने-आपको और भी अधिक दीन महसूस किया। अमरीकी संयुक्त राज्यों के राज्य-सचिव जनरल जार्ज मार्शल ने कहा था-"महात्मा गांधी सारी मानव-जाति की अंतरात्मा के प्रवक्ता थे |"

पोप पायस, तिब्बत के दलाई लामा, कैंटरबरी के आर्कबिशप, लंदन के मुख्य रब्बी, इंग्लैंड के बादशाह, राष्ट्रपति ट्रू मैन, च्याँगकाई शेक, फ्रांस के राष्ट्रपति और वास्तव में लगभग

सभी महत्त्वपूर्ण देशों तथा अधिकतर छोटे देशों के राजनैतिक नेताओं ने गांधीजी की मृत्यु पर सार्वजनिक रूप से शोक प्रदर्शन किया |

फ्रांस के समाजवादी लियो ब्लम ने वह बात लिखी, जिसे लाखों लोग महसूस करते थे। ब्लम ने लिखा--"मैंने गांधी को कभी नहीं देखा | मैं उनकी भाषा नहीं जानता। मैंने उनके देश में कभी पाँव नहीं रखा; परंतु फिर भी मुझे ऐसा शोक महसूस हो रहा है, मानो मैंने कोई अपना और प्यारा खो दिया हो। इस असाधारण मनुष्य की मृत्यु से सारा संसार शोक में डूब गया है।"

प्रोफेसर अल्बर्ट आइन्स्टीन ने दृढ़ता से कहा-"गांधी ने सिद्ध कर दिया कि केवल प्रचलित राजनैतिक चालबाज़ियों और धोखाघड़ियों के मक्कारी-भरी खेल के द्वारा ही नहीं, बल्कि जीवन के नैतिकतापूर्ण श्रेष्ठतर आचरण के प्रबल उदाहरण द्वारा भी मनुष्यों का एक बलशाली अनुगामी दल एकत्र किया जा सकता है।"

संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् ने अपनी बैठक की कार्रवाई रोक दी ताकि उसके सदस्य दिवंगत आत्मा को श्रद्धांजलि अर्पित कर सकें। ब्रिटिश प्रतिनिधि फिलिप नोएल-बेकर ने गांधीजी की प्रशंसा करते हुए उन्हें "सबसे गरीब, सबसे अलग और पथभ्रष्ट लोगों का हितचिंतक" बतलाया ।" सुरक्षा परिषद् के अन्य सदस्यों ने गांधीजी के आध्यात्मिक गुणों की बहुत प्रशंसा की और शांति तथा अहिंसा के प्रति उनकी निष्ठा को सराहा |"

संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपना झंडा झुका दिया।

मानवता ने अपनी ध्वजा नीची कर दी।

गांधीजी की मृत्यु पर संसार-व्यापी प्रतिक्रिया स्वयं ही एक महत्त्वपूर्ण तथ्य थी। उसने एक व्यापक मनःस्थिति और आवश्यकता को प्रकट कर दिया । न्यूयार्क के 'पीएम' नामक समाचार-पत्र में एल्बर्ट ड्यूत्श ने वक्तव्य दिया-"जिस संसार पर गांधी की मृत्यु की ऐसी श्रद्धापूर्ण प्रतिक्रिया हुई, उसके लिए अभी कुछ आशा बाकी है।"...

उपन्यास-लेखिका पर्ल एस. बक ने गांधीजी की हत्या को 'ईसा की सूली' के समान बतलाया।

जापान में मित्र-राष्ट्रों के सर्वोच्च सेनापति जनरल डगलस मैकआर्थर ने कहा-"सभ्यता के विकास में, यदि उसे जीवित रहना है, तो सब लोगों को गांधी का यह विश्वास अपनाना ही होगा कि विवादास्पद मुद्दों को हल करने में बल के सामूहिक प्रयोग की प्रक्रिया बुनियादी तौर पर न केवल गलत है, बल्कि उसीके भीतर आत्म-विनाश के बीज विद्यमान हैं।"

न्यूयार्क में 12 साल की एक लड़की कलेवे के लिए रसोईघर में गई हुई थी | रेडियो बोल रहा था और उसने गांधीजी पर गोली चलाई जाने का समाचार सुनाय | लड़की, नौकरानी और माली ने वहीं रसोईघर में सम्मिलित प्रार्थना की और आँसू बहाए। इसी तरह सब देशों में करोड़ों लोगों ने गांधीजी की मृत्यु पर ऐसा शोक मनाया, मानो उनकी व्यक्तिगत हानि हुई हो |

सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने लिखा था-"मैं किसी काल के और वास्तव में आधुनिक इतिहास के ऐसे किसी दूसरे व्यक्ति को नहीं जानता, जिसने भौतिक वस्तुओं पर आत्मा की शक्ति को इतने जोरदार और विश्वासपूर्ण तरीके से सिद्ध किया हो।"

गांधीजी के लिए शोक करनेवाले लोगों को यही महसूस हुआ। उनकी मृत्यु की आकस्मिक कौंध ने अनंत अंधकार उत्पन्न कर दिया। उनके जमाने के किसी भी जीवित व्यक्ति ने, महाबली प्रतिपक्षियों के विरुद्ध लंबे और कठिन संघर्ष में सच्चाई, दया, आत्मत्याग, विनय, सेवा और अहिंसा का जीवन बिताने का इतना कठोर प्रयत्न नहीं किया और वह भी इतनी सफलता के साथ | वह अपने देश पर ब्रिटिश शासन के विरुद्ध और अपने ही देशवासियों की बुराइयों के विरुद्ध तीव्र गति के साथ और लगातार लड़े, परंतु लड़ाई के बीच भी उन्होंने अपने दामन को बेदाग रखा। वह बिना वैमनस्य या कपट या द्वेष के लड़े।

1. नावनुमाँ मोटरगाड़ी, जो जमीन और पानी दोनों पर चलती है।

2 / गांधीजी की जीवन-झाँकी

गांधीजी का नाम मोहनदास तथा पिता का नाम करमचंद गांधी था।

मोहनदास गांधी अपने पिता के चौथे और अंतिम विवाह की चौथी और अंतिम संतान थे। इनका जन्म 2 अक्तूबर 1869 को पोरबंदर में हुआ था | इसी साल स्वेज नहर खुली, टॉमस ए. एडिसन ने अपना पहला आविष्कार पेटेंट कराया, फ्रांस ने नेपोलियन बोनापार्ट के जन्म की शताब्दी मनाई और चार्ल्स डब्ल्यू इलियट हारवर्ड विश्वविद्यालय का अध्यक्ष बना। कार्ल मार्क्स की कैपिटल अभी प्रकाशित हुई थी। बिस्मार्क फ्रांस-जर्मन युद्ध आरंभ करने ही वाला था और विक्टोरिया इंग्लैंड तथा भारत पर राज कर रही थी।

मोहनदास का जन्म नगर के किनारे एक मामूली तिमंजिले मकान के 11 फुट चौड़े, 19 ½ फुट लंबे और 10 फुट ऊँचे कमरे के अंधेरे, दाहिनी ओर वाले, कोने में हुआ था। यह मकान अभी तक मौजूद है।

गांधीजी के बड़े भाई लक्ष्मीदास राजकोट में वकालत करते थे और बाद में पोरबंदर सरकार के खजाने के एक हाकिम बन गए | वह खूब खुलकर खर्च करते थे और उन्होंने अपनी पुत्रियों के विवाह छोटे-मोटे भारतीय रजवाड़ों जैसी शान-शौकत के साथ किए | दूसरे भाई करसनदास पोरबंदर में पुलिस के सब-इंस्पेक्टर रहे और अंत में ठाकुर के रनवास के सब-इंस्पेक्टर हुए।

गांधीजी के जीवन-काल में ही दोनों भाइयों की मृत्यु हो गई। बहन रलियात बेन, जो इनसे चार वर्ष बड़ी थीं, इनके बाद भी जीवित रहीं और राजकोट में ही निवास करती रहीं।

जब मोहनदास बारह वर्ष के थे और राजकोट के एल्फ्रेड हाई स्कूल में दाखिल ही हुए थे, तब मि. जाइल्स नामक एक अंग्रेज इंस्पेक्टर विद्यार्थियों की परीक्षा लेने आए। विद्यार्थियों से पाँच अंग्रेजी शब्दों के हिज्जे लिखवाए गए। गांधीजी ने 'केटल' (चायदानी) शब्द ठीक नहीं लिखा। डेस्कों के बीच इधर-से-उधर टहलते हुए अध्यापक ने गलती देख ली और

मोहनदास को इशारा किया कि पासवाले लड़के की स्लेट से नकल कर लो | मोहनदास ने इन्कार कर दिया | बाद में अध्यापक ने इस बेवकूफी के लिए डाँटा, क्योंकि इससे कक्षा का रिकॉर्ड बिगड़ गया, बाकी सबने सारे शब्द ठीक लिखे थे।

जब मोहनदास का विवाह हुआ, तब वह हाई स्कूल में विद्यार्थी थे और उनकी आयु 13 वर्ष की थी। वधू का नाम कस्तूरबाबाई था। वह पोरबंदर के गोकुलदास मकनजी नामक व्यापारी की पुत्री थी।

1885 में करमचंद की मृत्यु होने पर मोहनदास की माता पुतलीबाई घरू मामलों में बेचरजी स्वामी नामक जैन-साधु से सलाह-मशविरा किया करती थीं । इन्हीं जैन साधु ने इंग्लैंड जाने में गांधीजी की सहायता की | माता को संदेह था कि युवा पुत्र इंग्लैंड में सदाचारी न रह सकेगा। इस स्थिति में बेचरजी स्वामी ने रास्ता निकाल दिया। उन्होंने मोहनदास को शपथ दिलवाई और मोहनदास ने तीन प्रतिज्ञाएँ कीं-मदिरा, स्त्री और मांस नहीं छुएँगे। इसपर पुतलीबाई राजी हो गईं |

जून 1888 में गांधीजी अपने भाई के साथ बंबई को रवाना हो गए। 4 सितंबर को वह जहाज में बैठ गए। अभी वह 18 वर्ष के भी न थे। कुछ ही महीने पहले कस्तूरबाई ने एक बालक को जन्म दिया था और उसका नाम हरिलाल रखा गया था।

6 नवंबर 1888 को गांधीजी इनर टेंपल[1] में विद्यार्थी की तरह दाखिल कर लिए गए और जून 1890 में उन्होंने लंदन विश्वविद्यालय की मैट्रिक परीक्षा पास की। उन्होंने फ्रेंच तथा लैटिन भाषाएँ सीखीं और भौतिक विज्ञान, साधारण कानून तथा रोमन कानून का अध्ययन किया।

अंतिम परीक्षाएँ पास करने में उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई | 10 जून 1891 को उन्हें अदालत में पैरवी करने की अनुमति मिली, 11 जून को उन्होंने हाईकोर्ट में दाखिला कराया और 12 जून को भारत के लिए रवाना हो गए। वह इंग्लैंड में एक दिन भी अधिक नहीं बिताना चाहते थे।

शुरू में गांधीजी का खयाल था कि वह 'अंग्रेज' बन सकते हैं। इसलिए उन्होंने अंग्रेज बनने के साधनों-पोशाक, नाच, वक्तृत्व-कला के पाठ, आदि-को बड़ी व्यग्रता से अपनाया। फिर उन्हें पता लगा कि बीच की दीवार कितनी ऊँची थी। उन्होंने समझ लिया कि वह भारतीय ही रहेंगे और वह भारतीय हो गए।

इंग्लैंड में गांधीजी दो वर्ष और आठ महीने रहे। इससे उनके व्यक्तित्व का निर्माण अवश्य हुआ होगा, परंतु इसका प्रभाव शायद उतना नहीं पड़ा जितना साधारणतया पड़ना चाहिए था, क्योंकि गांधीजी विद्यार्थी की तरह नहीं थे। वह आवश्यक बातें अध्ययन से नहीं सीखते थे। वह कर्मी थे और कर्म के द्वारा विकास तथा ज्ञान प्राप्त करते थे। पुस्तकों, लोगों और परिस्थितियों का उन पर असर पड़ता था। लेकिन स्कूली पढ़ाई तथा अध्ययन के वर्षों में सच्चे गांधी का, इतिहास के गांधी का, प्रादुर्भाव नहीं हुआ, यहाँ तक कि उसके अस्तित्व का भी संकेत नहीं मिला।

गांधीजी कर्म के द्वारा महानता की ओर बढ़े। इसलिए गीता गांधीजी की धर्म-पुस्तक बन गई, क्योंकि उसमें कर्म की महिमा गाई गई है।

यंग इंडिया के 6 अगस्त 1925 के अंक में गांधीजी ने लिखा था-"जब शंकाएँ मुझे घेर लेती हैं, जब निराशाएँ मेरे सामने आकर खड़ी हो जाती हैं और मुझे आशा की एक भी किरण नहीं दिखाई देती, तब मैं भगवद्गीता का आश्रय लेता हूँ और चित्त की शांति देनेवाला श्लोक पा जाता हूँ, और मैं अत्यधिक विषाद के बीच भी तुरंत मुसकराने लगता हूँ। मेरा जीवन बाह्य दुःखद घटनाओं से परिपूर्ण रहा है और यदि इनका मुझपर कोई प्रकट या अप्रकट प्रभाव बाकी नहीं रहा है, तो इसके लिए मैं भगवद्गीता के उपदेशों का ऋणी हूँ।"

लंदन में गांधीजी लेविटिकस और नंबर्स (बाइबिल के प्रकरण) से आगे नहीं बढ़ पाए, पुराना करार (ओल्ड टेस्टामेंट) के पहले हिस्सों से तो वह ऊब गए। नया करार (न्यू टेस्टामेंट) उन्हें अधिक रुचिकर हुआ और ईसा का गिरि- प्रवचन तो 'सीधा ही हृदय में पैठ गया'। इसमें तथा गीता में उन्हें सादृश्य दिखाई दिया | एक मित्र के सुझाव पर उन्होंने

हजरत मुहम्मद पर टॉमस कारलाइल का निबंध पढ़ा। कुछ पुस्तकें थियॉसफी पर पढ़ीं। गांधीजी का धार्मिक अध्ययन आकस्मिक और असंबद्ध था। फिर भी स्पष्टत: उनकी एक बड़ी आवश्यकता की पूर्ति हुई |

1891 की गर्मियों में गांधीजी भारत वापस लौटे | बंबई में जहाज से उतरने पर भाई ने सूचना दी कि माता पुतलीबाई का देहांत हो गया। यह समाचार पहले उनसे छिपाया गया था, क्योंकि परिवार के लोग माता के प्रति उनकी भक्ति से परिचित थे। गांधीजी को भारी आघात पहुँचा, परंतु उनका शोक, जो पिता की मृत्यु के समय से अधिक था, फूटने नहीं पाया।

बड़े भाई लक्ष्मीदास ने, अपने छोटे भाई पर बहुतेरी आशाएँ बांध रखी थीं, परंतु क्या राजकोट में और क्या बंबई में, मोहनदास वकालत में नितांत असफल सिद्ध हुए, क्योंकि बंबई की अदालत में वह एक छोटे-से मामले में भी एक शब्द तक नहीं बोल सके थे।

इसी अर्से में पोरबंदर के एक मुसलमान व्यापारी की फर्म का संदेश मिला कि वह गांधीजी को अपना वकील बनाकर एक साल के लिए दक्षिण अफ्रीका भेजना चाहती है। नया देश देखने और नए अनुभव प्राप्त करने के इस अवसर को गांधीजी ने जाने नहीं दिया। इस प्रकार अपने देश में दो वर्ष से कुछ कम असफल रहने के बाद उसका भावी नेता जंजीबार, मोजंबिक और नेटाल के लिए जहाज पर सवार हो गया | पत्नी और दो बच्चों को उन्होंने यहीं छोड़ दिया। 28 अक्तूबर 1892 को मणिलाल नामक दूसरा पुत्र जन्म ले चुका था।

जब मई 1893 में गांधीजी डरबन बंदर पर जहाज से उतरे, तो उनका उद्देश्य केवल यह था कि मुकदमा जीतना, कुछ रुपया पैदा करना और शायद आखिर में अपनी जीविका शुरू करना | जिस समय वह अपने मालिक दादा अब्दुल्ला सेठ मिलने के लिए नाव से उतरे, उस समय फैशनदार फ्रॉक कोट, इस्तरी की हुई पतलून, चमकदार जूते और पगड़ी पहने हुए थे।

मुकदमे के लिए गांधीजी का प्रिटोरिया जाना जरूरी था। डरबन में उनके लिए पहले दर्जे का टिकट खरीदा गया और वह गाड़ी में सवार हुए। ट्रांसतल की राजधानी मेरित्सबर्ग में एक गोरा डिब्बे में चढ़ा और काले आदमी को बैठे देखकर

दो रेलवे कर्मचारियों को बुला लाया। उन्होंने गांधीजी से तीसरे दर्जे में चले जाने को कहा। गांधीजी ने उतरने से इन्कार किया | इस पर वे लोग पुलिस के सिपाही को ले आए, जिसने सामान सहित उन्हें बाहर निकाल दिया।

गांधीजी चाहते तो तीसरे दर्जे में बैठ सकते थे; परंतु उन्होंने वेटिंग रूम में पड़े रहना पसंद किया। उस पहाड़ी प्रदेश में सर्दी थी। रात-भर गांधीजी बैठे-बैठे ठिठुरते रहे और चिन्तन करते रहे।

मेरित्सबर्ग में, कड़ाके की सर्दी थी उस रात में, गांधीजी के हृदय में सामाजिक प्रतिरोध का अंकुर पैदा हुआ, परंतु उन्होंने कुछ किया नहीं। वह अपने काम के लिए प्रिटोरिया चले गए।

प्रिटोरिया पहुँचने के एक सप्ताह के भीतर गांधीजी ने वहाँ के सब भारतीयों की एक सभा बुलाई | श्रोता लोग मुसलमान व्यापारी थे, जिनके बीच में कहीं-कहीं कुछ हिन्दू बैठे थे। गांधीजी ने चार बातों पर जोर दिया, व्यापार में भी सत्य बोलो, अधिक सफाई से रहने की आदत डालो, जात-पाँत और धर्म के भेद भूल जाओ, अंग्रेजी सीखो।

इसके बाद और सभाएँ भी हुईं और गांधीजी बहुत जल्दी प्रिटोरिया के सब भारतीयों से परिचित हो गए। प्रिटोरिया के भारतीयों ने अपना एक स्थायी संगठन बना लिया।

मुकदमा तय होने के बाद गांधीजी डरबन लौट आए और भारत के लिए रवाना होने की तैयारी करने लगे। रवाना होने से पहले साथियों ने उन्हें बिदाई की एक पार्टी दी। समारोह के बीच किसी ने उन्हें उस दिन का नेटाल मर्करी पत्र दिया, जिसमें उन्होंने एक समाचार पढ़ा कि नेटाल सरकार विधान मंडल में सदस्य चुनने के अधिकार से भारतीयों को वंचित करने का एक बिल पेश करना चाहती है। गांधीजी ने इस कदम को रोकने की आवश्यकता

पर जोर दिया | उनके मित्र इसके लिए तैयार तो हो गए, परंतु कहने लगे कि आपके बिना हम कुछ नहीं कर सकते | गांधीजी एक महीना ठहरने के लिए राजी हो गए | भारतीयों के अधिकारों की लड़ाई लड़ते हुए वह वहाँ बीस वर्ष ठहरे। उन्हें विजय प्राप्त हुई।

दक्षिण अफ्रीका में तीन वर्ष में गांधीजी एक संपन्न वकील और प्रमुख भारतीय राजनैतिक नेता बन गए थे | वह गिरमिटिया मज़दूरों के हिमायती मशहूर हो गए थे।

दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी के संघर्ष का उद्देश्य यह नहीं था कि वहाँ के भारतीयों के साथ गोरों के समान बर्ताव किया जाय। वह तो एक सिद्धांत स्थापित करना चाहते थे-भारतीय ब्रिटिश साम्राज्य के नागरिक हैं और इसलिए उसके कानून के अधीन उन्हें उसी समानता का अधिकार है।

हालाँकि अभी तक उनमें इतिहास के महान गांधी का केवल जरा-सा संकेत दिखाई पड़ता था, परंतु उन्होंने अपने को एक प्रभावशाली नेता और सर्वोत्तम संगठनकर्ता सिद्ध कर दिया था। उनके भारतीय सहयोगी कार्यकर्ता तो तेजी के साथ यह महसूस करते ही थे, परंतु उनकी निगाहों से भी यह छिपा न था कि उनके बिना भारतीयों के अधिकारों का संघर्ष एकदम खत्म हो जाएगा या कम-से-कम ढीला पड़ जाएगा।

इसलिए गांधीजी ने छः महीने की छुट्टी ली और अपने परिवार को लिवा लाने के लिए भारत गए।

1896 के साल के मध्य में अपनी जन्मभूमि पहुँचकर सत्ताईस वर्ष के इस आदमी ने, जिसने एक महान कार्य पूरा करने का बीड़ा उठाया था, जबरदस्त हलचल पैदा कर दी | राजकोट में गांधीजी ने अपने परिवार की गोद में एक महीना दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों की शिकायतों पर एक पुस्तिका लिखने में बिताया। इसकी दस हजार प्रतियाँ छपवाई गईं और अखबारों तथा प्रमुख भारतीयों को भेजी गईं।

राजकोट से गांधीजी बंबई गए और वहाँ उन्होंने दक्षिण अफ्रीका पर एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया। सभा बुलानेवालों के नाम और चर्चा के विषय ऐसे थे कि इससे बंबई की इस सभा की सफलता जबरदस्त रही।

पूना में गांधीजी ने भारत के दो महापुरुषों से मुलाकात की। भारत सेवक समिति के अध्यक्ष गोपालकृष्ण गोखले और असाधारण मेधावी तथा उच्च राजनैतिक नेता लोकमान्य तिलक।

गांधीजी कलकत्ता में भी-बंबई, पूना और मद्रास जैसी-सभा करना चाहते थे, लेकिन एक संकट का मुकाबला करने के लिए उन्हें नेटाल जाने का तार से बुलावा आ गया। अतः वह बंबई दौड़े आए और पत्नी, दो पुत्रों तथा विधवा बहन के इकलौते पुत्र के साथ जहाज पर दक्षिण अफ्रीका के लिए रवाना हो गए।

डरबन में गांधीजी और उनके साथियों को जहाज से उतरने नहीं दिया गया। गोरों की सभाओं में माँग की गई कि इन्हें भारत वापस भेज दिया जाय।

13 जनवरी 1897 को जहाजों को डॉक पर लगने दिया गया | लेकिन नेटाल सरकार के एटर्नी जनरल मि. हैरी एस्कंब ने गांधीजी को संदेश भेजा कि झगड़ा बचाने के लिए वह दिन-छिपे जहाज से उतरें। दादा अब्दुल्ला के कानूनी सलाहकार मि. लाटन ने इसके विरुद्ध सलाह दी और गांधीजी भी छिप-छिपाकर शहर में नहीं जाना चाहते थे | श्रीमती गांधी और दोनों बच्चे सामान्य रूप में जहाज से उतरे और उन्हें रुस्तमजी के घर पहुँचा दिया गया। गांधीजी और लाटन पैदल चले। हल्ला मचानेवाली भीड़ बिखर चुकी थी, लेकिन दो छोटे लड़कों ने गांधीजी को पहचान लिया और उनका नाम पुकारा । इसे सुनकर कई गोरे आ गए। ज्यों-ज्यों गांधीजी और लाटन आगे बढ़ते गए, भीड़ भी बढ़ती गई और हमला करने पर उतारू हो गई। लोगों ने उनपर पत्थर, ईंट और अंडे फेंके । फिर उन्होंने गांधीजी की पगड़ी छीन ली और उनपर मार और ठोकरें लगाईं।

एक भारतीय लड़का पुलिस को बुला लाया। गांधीजी ने पुलिस थाने में शरण लेने से इन्कार कर दिया, लेकिन इस बात पर राजी हो गए कि पुलिस उन्हें रुस्तमजी के घर तक पहुँचा दे। ।

शहर के लोगों को अब गांधीजी का ठिकाना मालूम हो गया था | गोरों के झुंडों ने रुस्तमजी के मकान को घेर लिया और चिल्लाने लगे कि गांधी को उनके हवाले कर दिया जाय।

रात को पुलिस सुपरिटेंडेंट अलेक्जेंडर ने गांधीजी को गुप्त संदेश भेजा कि यह वेष बदलकर निकल जाएँ | गांधीजी ने ऐसा ही किया और पुलिस थाने में पहुँच गए | यहाँ वह तीन दिन रहे।

ऑक्सफोर्ड के प्रोफेसर एडवर्ड टामसन ने लिखा है-"गांधी को चाहिए था कि जीवन-भर हर एक गोरी शक्ल से नफरत करते |" लेकिन गांधीजी ने डरबन के उन गोरों को क्षमा कर दिया, जो उन्हें जिन्दा जला डालने के लिए जमा हुए थे और उनको भी क्षमा कर दिया, जिन्होंने उन्हें घायल किया और मारा था।

दक्षिण अफ्रीका में 1899 से 1902 तक जो बोअर युद्ध[2] हुआ, उसमें गांधीजी की व्यक्तिगत सहानुभूति पूरी तरह बोअरों के साथ थे | फिर भी उन्होंने अपनी सेवाएँ अंग्रेजों को अर्पण कीं | गाँधीजी का खयाल था की बोअर-युद्ध में अंग्रेजों का समर्थन करके ब्रिटिश साम्राज्य में भारतीयों की स्थिति सुधारने का यह सुनहरी मौका है |

गांधीजी ने घायलों की सेवा के लिए एक टुकड़ी तैयार की, जिसमें 300 स्वतंत्र भारतीय और 800 गिरमिटिए मजदूर थे। जनता ने और सेना ने गांधीजी की टुकड़ी की सहनशीलता और हिम्मत की सराहना की।

प्रिटोरिया न्यूज़ के अंग्रेज संपादक मि. वीयर स्टेंट ने जोहांसबर्ग इलस्ट्रटेड स्टार के जुलाई 1911 के अंक में स्पियाँ कोक की लड़ाई के मोर्चे का आँखों देखा हाल लिखा था। इसने बतलाया-"रात-भर काम करने के बाद, जिसमें बड़े-बड़े तगड़े आदमियों के अंजर-पंजर ढीले हो गए थे, मैंने सुबह गांधी को सड़क के किनारे बैठा देखा | बुलर के दल का हर एक आदमी सुस्त और हतोत्साह था और हर चीज पर लानत भेज रहा था। लेकिन गांधी अपने बर्ताव में विरागी जैसा और बातचीत में हँसमुख और निःशंक था और उसकी आँखों में

दया थी |"नेटाल अभियान के कितने ही रणक्षेत्रों में मैंने इस आदमी को देखा और उसकी छोटी-सी टुकड़ी को देखा। जहाँ सहायता की जरूरत होती, ये लोग वहीं जा पहुँचते |"

सन् 1900 में यह भारतीय टुकड़ी तोड़ दी गई। गांधीजी और उनके कई साथियों को तमगे मिले और टुकड़ी का जिक्र खरीतों में किया गया।

1901 में गांधीजी ने भारत लौटने का इरादा किया । परिवार के साथ बिदा होने की पूर्व संध्या को भारतीय समुदाय ने कृतज्ञता के मूर्त्त प्रदर्शनों की होड़ लगा दी।

गांधीजी को सोने व चाँदी की चीजें और हीरे के जड़ाऊ आभूषण भेंट किए गए। कस्तूरबाई के लिए सोने का एक कीमती हार था।

1896 में भी भारत जाते समय गांधीजी को उपहार मिले थे, परंतु वे इस प्रकार न थे। इनको न रखने की दुविधा में गांधीजी को रात-भर नींद नहीं आई। सुबह होते-होते उन्होंने उन्हें वापस करने का निश्चय कर लिया, परंतु इस बात के लिए वह कस्तूरबा को बहुत मुश्किल से राजी कर सके।

अंत में गांधीजी ने घोषणा की कि 1901 और 1896 के उपहार ट्रस्टियों को सौंप दिए जाएँगे। ऐसा ही हुआ और इससे जो कोष बना, उससे दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों का बाद में कितने ही वर्ष काम चला।

भारत लौटकर गांधीजी ने बंबई में रहने का मकान और वकालत का कमरा किराए पर लिए।

गांधीजी बंबई में बस चुके थे, लेकिन 1902 में उन्हें दक्षिण अफ्रीका से फिर बुलावा आया | उन्होंने समझ लिया कि अब उन्हें दक्षिण अफ्रीका में बहुत दिन रहना पड़ेगा, इसलिए उन्होंने अपनी पत्नी और तीन पुत्रों को भी वहीं बुला लिया। सबसे बड़ा हरिलाल भारत में ही रह गया। गांधीजी ने जोहांसबर्ग में अपनी वकालत शुरू कर दी, जिससे खूब आमदनी होने लगी।

एक शाम को गांधीजी अपने प्रिय निरामिष रेस्टराँ की मालकिन के 'एट-होम' में गए | वहाँ उनकी मुलाकात हेनरी एस. एल. पोलक नामक एक नवयुवक से हुई।

कुछ महीने पहले, 1903 में, गांधीजी ने इंडियन ओपीनियन[3] नामक साप्ताहिक पत्र शुरू किया था। पत्रिका पर कुछ कठिनाई आई और उसे वहीं निबटाने के लिए गांधीजी को डरबन जाना पड़ा, जहाँ से पत्रिका प्रकाशित होती थी। पोलक उन्हें स्टेशन पर पहुँचाने आए और लंबे रास्ते में पढ़ने के लिए उन्हें एक पुस्तक दे गए। वह जॉन रस्किन की अंटू दिस लास्ट थी।

गांधीजी ने रस्किन की कोई रचना अभी तक नहीं पढ़ी थी। उन्होंने जोहांसबर्ग से गाड़ी छूटते ही इस पुस्तक को पढ़ना शुरू किया और रात-भर पढ़ते रहे | अक्तूबर 1946 में गांधीजी ने कहा था-"इस पुस्तक ने मेरे जीवन की धारा बदल दी ।" उनका कहना था कि यह पुस्तक रक्त और आँसुओं से लिखी गई है। उन्होंने पुस्तक के आदर्शों के अनुसार अपना जीवन बनाने का निश्चय कर लिया। उन्होंने सोच लिया कि अपने परिवार तथा सहयोगियों के साथ एक फार्म में जाकर रहेंगे।

डरबन से चौदह मील दूर फिनिक्स नगर के पास गांधीजी ने एक फार्म खरीदा । बहुत जल्दी इंडियन ओपीनियन का छापाखाना और दफ्तर फार्म में पहुँचा दिए गए। यह पत्र इस स्थान से मणिलाल गांधी[3] द्वारा प्रकाशित हो रहा है।

वासनाओं पर विजय पाने के प्रयत्नों में 1906 का साल गांधीजी के जीवन में परिवर्तन-काल की भाँति उल्लेखनीय है। अब उन्होंने ब्रह्मचर्य का व्रत ले लिया। 1906 से लेकर, जब वह सैंतीस वर्ष के थे, 1948 तक मृत्यु-पर्यंत, गांधीजी ने ब्रह्मचर्य का पालन किया।

11 सितंबर 1906 | जोहांसबर्ग के इंपीरियल थियेटर में करीब तीन हजार आदमियों की भीड़ थी। यह सभा गांधीजी ने बुलाई थी। 22 अगस्त 1906 के ट्रांसवाल गवर्नमेंट गजट में एक अध्यादेश का मसविदा छपा, जो विधान मंडल में पेश किया जानेवाला था। गांधीजी ने सोचा कि यदि यह स्वीकृत हो गया, तो दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों का सर्वनाश हो

जायगा। इस प्रस्तावित अध्यादेश के अनुसार सब भारतीय पुरुषों, स्त्रियों और आठ साल से ऊपर के बच्चों के लिए जरूरी था कि वे अधिकारियों के रजिस्टर में अपने नाम दर्ज कराएँ, उँगलियों की निशानियाँ दें और एक प्रमाण-पत्र प्राप्त करें, जिसे हर समय अपने साथ रखें ।

सभापति द्वारा कार्रवाई शुरू की जाने से पहले ही थियेटर का आर्केस्ट्रा, बालकनी और गैलरी खचाखच भर गए थे। चार भाषाओं में क्रोध भरे भाषणों ने भड़क उठनेवाले श्रोताओं को आवेग के ऊँचे दर्जे तक थर्रा दिया था। तब सेठ हाजीसाहब ने गांधीजी की सहायता से तैयार किया हुआ प्रस्ताव पढ़ा, जिसमें माँग की गई थी कि रजिस्टर में नाम दर्ज करवानेवाले कानून की अवज्ञा की जाय।

इसके बाद गांधीजी बोले | पहले तो उन्होंने लोगों को चेतावनी दी फिर उन्हें उत्तेजित करने का प्रयत्न किया | उन्होंने कहा-"सरकार ने भलमनसाहत की सारी बुद्धि को तिलांजलि दे दी है ।" लेकिन मैं हिम्मत और निश्चय के साथ घोषित करता हूँ कि जबतक अपनी प्रतिज्ञा पर सचाई के साथ डटे रहनेवाले मुट्ठीभर लोग भी रहेंगे, तबतक संघर्ष का एक ही अंत हो सकता है-वह है विजय |"

सभापति के संयत शब्दों के बाद मत लिया गया। सब उपस्थित लोगों ने खड़े होकर हाथ उठाए और ईश्वर की शपथ ली कि यदि प्रस्तावित भारतीय विरोधी अध्यादेश कानून बन गया तो उसे नहीं मानेंगे।

दूसरे दिन 12 सितंबर को, इंपीरियल थियेटर आग में जलकर भस्म हो गया। बहुत से भारतीयों ने इसे शकुन समझा कि अध्यादेश का भी यही हाल होगा। परंतु गांधीजी के लिए यह एक संयोग की बात थी। ऐसे शकुनों में उनका विश्वास नहीं था। नियति गांधीजी को ऐसे मूक संकेतों से आह्वान नहीं करती थी | उनकी अंतरात्मा में तो नियति उस हिमालय जैसे आत्म-विश्वास के जरिए बोलती थी, जो उन्होंने सभा में प्रकट किया था। वह जानते थे कि उन्हें अकेले लड़ना पड़ेगा।

इंपीरियल थियेटर में सम्मिलित प्रतिज्ञा के बाद गांधीजी ने सरकारी अनौचित्य के प्रति इस नई किस्म के सामूहिक पर व्यक्तिगत विरोध के अच्छे से नाम के लिए इनाम देने की घोषणा की।

मगनलाल गांधी ने सदाग्रह (सद्+आग्रह) सुझाया | गांधीजी ने इसे सत्याग्रह (सत्य+आग्रह) का संशोधित नाम दिया।

सत्याग्रह से सरकार का मुकाबला करने से पहले गांधीजी ने लंदन जाना उचित समझा | इंग्लैंड में उन्होंने उपनिवेशों के राज्य-सचिव लार्ड एल्गिन से और भारत के राज्य-सचिव मि. जान मार्ले से भेंट की और पार्लमेंट के सदस्यों की एक सभा में भाषण दिया।

दक्षिण अफ्रीका को लौटते समय रास्ते में लंदन से तार मिला कि लार्ड एल्गिन ट्रांसवाल के एशियाई विरोधी बिल को स्वीकृति नहीं देंगे। परंतु बाद में पता लगा कि यह केवल एक चाल थी।

ट्रांसवाल सरकार ने एशियायियों की रजिस्ट्री का कानून पास कर दिया, जो 31 जुलाई 1907 से अमल में आनेवाला था। भारतीयों ने सत्याग्रह की तैयारी शुरू कर दी।

कुछ भारतीयों ने कानून के मातहत परमिट ले लिए, परंतु अधिकांश ने नहीं लिए | इसलिए कुछ भारतीयों को नोटिस दिए गए कि या तो वे रजिस्टर में नाम दर्ज कराएँ, अन्यथा ट्रांसवाल छोड़कर चले जाएँ | ऐसा न करने पर 11 जनवरी 1908 को उन्हें मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया। इनमें गांधीजी भी थे। जज जार्डन ने उन्हें दो महीने की सादी कैद की सजा सुनाई।

गांधीजी की यह पहली जेल-यात्रा थी।

जनरल स्मट्स ने एल्बर्ट कार्टराइट को समझौते का प्रस्ताव लेकर जेल में गांधीजी से मिलने भेजा | प्रस्ताव यह था कि भारतीय लोग अपनी मर्जी से रजिस्टर में नाम दर्ज करा लें। उसके बाद 'काला कानून' वापस ले लिया जायगा।

30 जनवरी को स्मट्स ने गांधीजी को मिलने के लिए बुलाया। स्मट्स ने आश्वासन दिया कि जब अधिकांश भारतीय अपने-आप रजिस्टर में नाम दर्ज करा लेंगे, तब एशियाटिक कानून मंसूख कर दिया जायगा।

स्मट्स उठ खड़े हुए।

“मैं कहाँ जाऊँ?” गांधीजी ने पूछा।

“आप इसी क्षण से स्वतंत्र हैं।"

“दूसरे कैदियों का कया होगा?”

“मैं जेल-अधिकारियों को फोन कर रहा हूँ कि दूसरे कैदियों को कल सुबह छोड़ दिया जाय |”

जोहांसबर्ग आने पर गांधीजी को तूफानी विरोध का सामना करना पड़ा। लोगों ने तर्क दिया कि अगर स्मट्स विश्वासघात करे तो क्या होगा। गांधीजी ने कहा कि सत्याग्रही निर्भय होता है।

एक पठान खड़ा होकर कहने लगा-“हमने सुना है कि तुमने कौम के साथ धोखा किया है और उसे पंद्रह हजार पौंड में जनरल स्मट्स के हाथ बेच दिया है। मैं अल्लाह की कसम खाकर कहता हूँ कि जो कोई रजिस्ट्री कराने जाएगा, मैं उसे मार डालूँगा।”

गांधीजी ने 10 फरवरी को अपना नाम रजिस्टर में दर्ज कराने का इरादा किया। जब वह रजिस्ट्री के दफ्तर की ओर चले, तो पठानों के झुंड ने उनका पीछा किया। दफ्तर पहुँचने से पहले मीर आलम पठान ने आगे बढ़कर पूछा-“किधर जाते हो ?”

“मेरा इरादा रजिस्ट्री का सर्टिफिकेट लेने का है।” गांधीजी ने जवाब दिया |

गांधीजी के शब्द पूरे भी न हुए थे कि एक डंडा उनके सिर पर जोर से पड़ा | गांधीजी ने लिखा है-“मेरे मुँह से 'हे राम' शब्द निकले और मुझे गश आ गया।“

30 जनवरी 1948 को मृत्यु के समय भी यही उनके अंतिम शब्द थे।

जब गांधीजी जमीन पर गिर पड़े, तो उनपर और भी चोटें पड़ीं और पठानों ने उनके खूब ठोकरें लगाईं।

लोग उन्हें उठाकर एक दफ्तर में ले गए | होश में आते ही उन्होंने कहा-"मीर आलम कहाँ है ?"

"उसे दूसरे पठानों के साथ गिरफ्तार कर लिया गया है।"

"उन्हें छोड़ देना चाहिए," गांधीजी ने धीरे-धीरे कहा-"मैं उनपर मुकदमा नहीं चलाना चाहता |"

ठीक होने के बाद गांधीजी ने बराबर यह प्रचार किया कि रजिस्ट्री के बारे में उन्होंने जो समझौता किया है, उस पर ईमानदारी से अमल करना चाहिए | इसलिए जब स्मट्स ने 'काला कानून' मंसूख करने का वादा पूरा करने से इन्कार किया, तो गांधीजी को कितनी परेशानी हुई होगी !

16 अगस्त 1908 को जोहांसबर्ग की हमीदिया मस्जिद में सभा बुलाई गई। चार पायों पर टिकी हुई लोहे की एक बड़ी कड़ाही ऊँची जगह पर सबकी निगाह के सामने रखी हुई थी।

भाषणों के समाप्त होते ही दर्शकों से एकत्र किए गए दो हजार से अधिक रजिस्ट्री के सर्टिफिकेट कड़ाही में डाल दिए गए और मिट्टी का तेल छिड़ककर जला दिए गए। भीड़ ने भारी हर्ष-ध्वनि की ।

ट्रांसवाल की सरकार के साथ होनेवाले संघर्ष के लिए गांधीजी ने अपने साधन जुटाने शुरू कर दिए।

गांधीजी के तमाम, काले व गोरे, सहयोगियों में सबसे ज्यादा घनिष्ठ थे हेनरी एस. एल. पोलक, जोहांसबर्ग का एक अत्यंत धनी शिल्पकार हर्मन केलेनबेक और स्काटलैंड से आई हुई सोन्या श्लेशिन।

गिरफ्तार होने की अनुमति चाहनेवाले लोगों ने गांधीजी को घेर लिया। गांधीजी भी गिरफ्तार हो गए और वोल्टस्रस्ट जेल में रखे गए। उनका जेल कार्ड मणिलाल के पास सुरक्षित है। वह क्रीम रंग का है और उसका आकार 2 7/8 x 3 1/8 इंच का है। उस पर उनका नाम, गलती से, एम. एस. गांधी दिया हुआ है। "पेशा, सालिसिटर |" "दंड और तारीख, 25 पौंड जुरमाना या 2 मास की सजा |" "छूटने की तारीख, दिसंबर 13, 1908 ।" कार्ड के पीछे 'जेल अपराध' के नीचे खाली जगह है | वह आदर्श कैदी थे।

अक्सर यह कहा गया है कि सत्याग्रह की कल्पना गांधीजी ने थॉरो से ली, परंतु 10 सितंबर 1935 को भारत सेवक समिति के श्री कोदंड राव को लिखे गए पत्र में गांधीजी ने इससे इन्कार किया है। उन्होंने लिखा था-"यह कथन कि मैंने सविनय अवज्ञा की अपनी कल्पना थॉरो की पुस्तकों से प्राप्त की है, गलत है। सविनय अवज्ञा पर थॉरो का निबंध मेरे हाथ में पड़ने से पहले दक्षिण अफ्रीका में सत्ता के विरुद्ध प्रतिरोध काफी आगे बढ़ गया था। लेकिन उस समय यह आंदोलन 'निष्क्रिय प्रतिरोध' के नाम से प्रसिद्ध था। चूँकि वह शब्द अपूर्ण था, इसलिए गुजराती पाठकों के लिए मैंने 'सत्याग्रह' शब्द गढ़ा। जब मैंने थॉरो के महान निबंध का शीर्षक देखा, तो अंग्रेजी पाठकों को अपने संघर्ष की व्याख्या करने के लिए मैंने उसका प्रयोग किया। लेकिन मुझे लगा कि 'सविनय अवज्ञा' से भी संघर्ष का पूरा अर्थ व्यक्त नहीं होता है। अतः मैंने 'निष्क्रिय प्रतिरोध' शब्द प्रयुक्त किया |"

---

1. लंदन में कानून की शिक्षा देनेवाली एक संस्था।

2. दक्षिण अफ्रीका में हालैंड से आकर बसनेवालों तथा अंग्रेजों के बीच युद्ध |

3. श्री मणिलाल गांधी का स्वर्गवास हो गया है और अब यह पत्र उनकी पत्नी श्रीमती सुशीला गांधी चला रही हैं।--संपादक

3 / पुत्र को पत्र

गांधीजी की दूसरी जेल-अवधि 13 दिसंबर 1908 को समाप्त हुई; लेकिन चूँकि आवास-प्रतिबंध के विरुद्ध निष्क्रिय प्रतिरोध चल रहा था, उन्हें तीसरी बार तीन मास की सजा मिली और वह 25 फरवरी 1909 को फिर वोल्कस्रस्ट जेल में लौट आए। पाँच दिन बाद कुछ सामान सिर पर लादे घोर वर्षा में उन्हें प्रिटोरिया पहुँचाने के लिए रेल पर ले जाया गया, जहाँ उन्होंने नव-निर्मित प्रायश्चित-शाला में अपनी अवधि व्यतीत की | वहाँ पहुँचने पर जेल के वार्डर ने पूछा-"क्या आप गांधी के बेटे हैं ?" देखने में गांधीजी इतने जवान लगते थे कि अफसर ने भूल से उन्हें उनका लड़का मणिलाल समझ लिया। मणिलाल भी उस समय छ: महीने की जेल वोल्कस्रस्ट में काट रहे थे। तब गांधीजी 40 वर्ष के थे।

गांधीजी ने जेल से मणिलाल को एक पत्र भेजा था, जिसे मणिलाल ने आजतक सुरक्षित रखा है। यह प्रत्र जेल के क्रीम रंग के फुलस्केप कागज के पाँच कागजों पर दोनों ओर कापिंग पेंसिल से हाथ का लिखा हुआ है और अंग्रेजी में है। साधारण तौर पर गांधीजी मणिलाल को गुजराती में लिखते, परंतु हर एक पृष्ठ के बाएँ हाशिए पर अंग्रेजी, डच आदि भाषाओं में हिदायतें छपी हुई थीं कि पत्र-व्यवहार अंग्रेजी, डच, जर्मन, फ्रेंच या काफिर भाषाओं में किया जाना चाहिए। पत्र पर 25 मार्च 1909 की तारीख है। गांधीजी का नंबर 777 था, सेंसर ने पत्र को दो दिन बाद नामांकित किया था।

मणिलाल की आयु सत्रह वर्ष की थी और चूँकि उनके बारे में किसी और को चिन्ता नहीं थी, इसलिए वह अपने धंधे तथा भविष्य के बारे में चिन्तित थे। उनके स्कूली शिक्षा लगभग नहीं के बराबर थी। इस समय यह फार्म पर तथा इंडियन ओपीनियन में अपने पिता के कारकुन थे और शायद बहुत ही परेशान नवयुवक थे |

गांधीजी ने लिखा था :

प्रिय बेटे, मुझे हर महीने एक पत्र लिखने का और एक पत्र पाने का अधिकार है। मेरे सामने यह सवाल आया कि मैं किसको लिखूँ। मुझे मि. रिच (इंडियन ओपीनियन के संपादक)

का, मि. पोलक का और तुम्हारा खयाल आया। मैंने तुम्हें चुना, क्योंकि मेरे मन के सबसे अधिक निकट तुम्हीं रहे हो।

जहाँ तक मेरा संबंध है, मुझे अधिक नहीं कहना चाहिए और अधिक कहने की इजाजत भी नहीं है। मैं बिलकुल निश्चिन्त हूँ और मेरे लिए किसी को परेशान होने की जरूरत नहीं है।

मुझे आशा है कि तुम्हारी माता की तबीयत अब बिलकुल ठीक है | मैं जानता हूँ कि तुम्हारे कई पात्र आ चुके हैं, परंतु मुझे नहीं दिए गए हैं | किन्तु डिप्टी गवर्नर ने भलमनसाहत करके मुझे बता दिया है कि वह अच्छी तरह है | क्या वह आराम से चल-फिर सकती है ? मैं आशा करता हूँ कि वह और तुम सब सुबह साबूदाना और दूध लेते रहोगे। और चंची[1] का क्या हाल है ? उससे कहना कि वह मुझे रोज याद आती है। उसके सारे फोड़ों को आराम हो गया होगा और वह तथा रामी[2] अच्छी तरह होंगी |

आशा है, रामदास और देवदास भी अच्छी तरह होंगे, अपनी पढ़ाई करते होंगे और परेशानी का कारण नहीं बनते होंगे। रामदास की खाँसी जाती रही या नहीं ?

मुझे आशा है कि जब विली तुम्हारे पास था, तब तुम सबने उसके साथ अच्छा बर्ताव किया होगा। मैं चाहता था कि मि. कोर्डेज जो कुछ खाने का सामान छोड़ गए हों, वह उन्हें वापस लौटा दिया गया होता।

और अब तुम्हारे बारे में | तुम कैसे हो ? हालाँकि मेरे खयाल से तुम उस सारे बोझ को अच्छी तरह झेल सकते हो, जो मैंने तुम्हारे कंधों पर डाल दिया है और तुम हँसी-खुशी के साथ इसे झेल रहे हो, फिर भी मुझे कई बार लगता है कि जितना व्यक्तिगत मार्ग-दर्शन मैं तुम्हें दे सका हूँ, उससे अधिक की तुम्हें आवश्यकता थी। मैं यह भी जानता हूँ कि कभी-कभी तुम महसूस करते हो कि तुम्हारी शिक्षा की उपेक्षा की गई है। जेल में मैंने बहुत-कुछ पढ़ डाला है। मैं इमर्सन, रस्किन और मेज़िनी की रचनाएँ पढ़ता रहा हूँ। मैंने उपनिषद् भी पढ़ लिए हैं। सब इस मत को पुष्ट करते हैं कि शिक्षा का अर्थ अक्षर-ज्ञान नहीं हैं, बल्कि

चरित्र निर्माण है। इसका अर्थ है कर्तव्य का ज्ञान। अगर यह मत सही है, और मेरे विचार से सही मत केवल यही है, तो तुमको सबसे अच्छा शिक्षण मिल रहा है। इससे अच्छी शिक्षा और क्या हो सकती है कि तुम्हें अपनी माता की परिचर्या का और उसके कर्कश स्वभाव को सहन करने का अवसर मिल रहा है, या यह कि तुम चंची की देखभाल करते हो और उसकी जरूरतों को पहचान लेते हो और उसके साथ ऐसा बर्ताव करते हो कि उसे हरिलाल की अनुपस्थिति न खले, और यह कि तुम रामदास और देवदास के अभिभावक हो ? अगर तुम इन कामों को अच्छी तरह करने में सफल हो जाओगे तो तुम्हारी आधी से ज्यादा शिक्षा पूरी हो जायगी।

नाथूरामजी की उपनिषदों की प्रस्तावना का एक अंश मेरे हृदय में समा गया है। वह कहते हैं कि ब्रह्मचर्य आश्रम अर्थात् पहली सीढ़ी आखिरी सीढ़ी अर्थात् संन्यास आश्रम के समान है। यह सही है। खेल-कूद भोलेपन की आयु में ही, अर्थात् केवल बारह वर्ष की आयु तक, चलता है | समझदारी की आयु पर पहुँचते ही लड़के को अपनी जिम्मेदारियाँ महसूस करना सिखाया जाता है। इस आयु के बाद से हर एक लड़के को मन और कर्म से संयम का अभ्यास करना चाहिए। इसी प्रकार सत्य का और जीव-हिंसा से बचने का भी अभ्यास करना चाहिए | उसके लिए यह सीखना और अभ्यास करना झंझट नहीं होना चाहिए, बल्कि स्वाभाविक होना चाहिए। यह उसके लिए आनंदप्रद होना चाहिए | राजकोट के ऐसे कई लड़के मुझे याद आते हैं। मैं तुम्हें बता दूँ कि जब मैं तुमसे भी छोटा था, तब सबसे ज्यादा आनंद मुझे अपने पिताजी की सेवा में मिलता था | बारह वर्ष की आयु के बाद खेल-कूद से तो मेरा वास्ता ही नहीं रहा। यदि तुम तीन गुणों का पालन करो, यदि ये तुम्हारे जीवन का अंग बन जाएँ, तो जहाँ तक मेरा ताल्लुक है, तुम अपनी शिक्षा, अपनी ट्रेनिंग पूरी कर लोगे। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि इन हथियारों को लेकर तुम संसार में कहीं भी अपनी रोटी कमा सकोगे और आत्मा का, अपना तथा परमात्मा का सच्चा ज्ञान प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त कर सकोगे। इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम पढ़ना-लिखना न सीखो। यह तुम्हें करना चाहिए और तुम कर भी रहे हो, परंतु यह ऐसी बात है, जिस पर

तुम्हें झुंझलाना नहीं चाहिए | इसके लिए तुम्हारे पास बहुत समय पड़ा है और आखिर यह शिक्षा तो तुम्हें प्राप्त करनी ही है ताकि तुम्हारी ट्रेनिंग दूसरों के काम आ सके।

याद रखो कि आज से हमारे भाग्य में गरीबी लिखी है। जितना अधिक मैं इस बात को सोचता हूँ, उतना ही अधिक मुझे लगता है कि धनवान होने के बजाय गरीब होने में अधिक सुख है; गरीबी के उपयोग धन के उपयोग से बहुत मीठे हैं।

(इसके बाद फिनिक्स आश्रम के लोगों के लिए आदेशों, संदेशों और अभिवादनों की 105 पंक्तियाँ हैं। फिर लिखा हैः)

और अब तुम्हारे बारे में। बागबानी, अपने हाथों से जमीन खोदना, खुरपी चलाना आदि काम खूब करना। भविष्य में हमको इसी पर गुजारा करना है और तुमको परिवार का कुशल बागबान बन जाना चाहिए। अपने औजारों को उनकी निर्धारित जगहों पर और बिलकुल साफ रखा करो। अपने पाठों में तुम्हें गणित और संस्कृत पर बहुत अधिक ध्यान देना चाहिए। संस्कृत तो तुम्हारे लिए परमावश्यक है। इन दोनों का अध्ययन बड़ी उम्र में मुश्किल होता है। संगीत की भी उपेक्षा मत करना। तुम्हें पुस्तकों के सारे उत्तम अंशों, भजनों और पद्यों को-चाहे वे अंग्रेजी में हों या गुजराती में, या हिन्दी में-छाँटकर उन्हें अपने हाथ से सुंदर लिपि में एक कॉपी में उतार लेना चाहिए | साल-भर के बाद यह बहुमूल्य संग्रह हो जायगा। अगर तुम कायदे से काम करो, तो इन सब चीजों को आसानी से कर सकते हो। उद्विग्न कभी मत होना और न कभी यह सोचना कि तुम्हारे सामने बूते से बाहर का काम है और फिर चिन्ता करमे लगना कि पहले क्या करना चाहिए | अगर तुम धैर्य से काम लोगे और समय के प्रत्येक क्षण का ध्यान रखोगे, तो व्यवहार में तुम्हें पता लग जायगा कि कौन-सा काम पहले करना है। मुझे आशा है कि घर खर्च में उठनेवाली पाई-पाई का तुम वैसा ही सही हिसाब रखते होगे जैसाकि रखा जाना चाहिए।

मगनलाल भाई से कहना कि मैं उन्हें इमर्सन के निबंध पढ़ने की सलाह देता हूँ। डरहम में यह पुस्तक नौ पेंस में मिल सकती है। ये निबंध अध्ययन करने योग्य हैं। वह इन्हें पढ़ें, महत्त्वपूर्ण अंशों पर निशान लगाएँ और अंत में एक नोटबुक में इनकी नकल उतार लें।

मेरे विचार से इन निबंधों में एक पश्चिमी गुरु द्वारा भारतीय अनुभव-ज्ञान की शिक्षा है। कभी-कभी अपनी खुद की वस्तु को इस प्रकार भिन्न साँचे में ढली हुई देखकर कौतूहल होता है। उन्हें टाल्सटाय की प्रभु का साम्राज्य तुम्हारे हृदय में है (किंगडम ऑफ गॉड इज़ विदिन यू) भी पढ़ने की कोशिश करनी चाहिए। यह अत्यंत तर्कयुकत पुस्तक है | अनुवाद की अंग्रेजी बहुत सरल है। सबसे बड़ी बात यह है कि टाल्सटाय जो उपदेश देते हैं, उस पर अमल करते हैं।

बीजगणित की एक पुस्तक भेज देना। किसी भी संस्करण से काम चल जायगा।

- तुम्हारा बापू

पत्र-लेखक की चिन्ता पत्र पानेवाले को कभी-कभी खिझा देती है। मणिलाल को अपने-जैसे साँचे में ढालने के लिए गांधीजी की हार्दिक और स्नेहपूर्ण उत्कंठा मणिलाल को शायद ऐसे धर्मोपदेश के समान लगी हो, जिसके बीच-बीच में अखरनेवाले अनगिनती घरू कामों की चर्बी के पुट हों। गांधीजी के निःस्वार्थ आदेश अपने पुत्र के भले के लिए थे, परंतु भंडार में औजारों को करीने से जमाने की बात कहनेवाले कठोर कामलेवा की निगरानी में ब्रह्मचर्य, गरीबी और कठिन श्रम की संभावना, जीवन की देहली पर खड़े हुए नौजवान के सामने पुलकित करनेवाली कोई चीज नहीं हो सकती थी।

गांधीजी अब उस स्थिति पर पहुँच गए थे कि उनकी नजर एक दूरवर्ती, भव्य लक्ष्य पर जमी हुई थी, इसलिए कभी-कभी वह अपने निकटतम लोगों को नहीं देख पाते थे। वह उनसे यह चाहते थे कि जिन कठोर मर्यादाओं की कैद उन्होंने प्रसन्नता से खुद अपने ऊपर लगा ली है, उसे वे लोग भी निभाएँ | परंतु वह निष्ठुर न थे। बहुत संभव है, उन्हें कभी यह कल्पना भी न हुई हो कि उनके पत्र में गहरे प्रेम तथा पिता तुल्य खबरदारी के सिवा कोई अन्य भावना है।

---

1. हरिलाल की पत्नी गुलाब का मुँहबोला नाम।

2. हरिलाल की छोटी बच्ची।

4 / टाल्सटाय और गांधी

मध्य रूस में एक स्लाव रईस उन्हीं आध्यात्मिक समस्याओं से जूझ रहा था, जिन पर दक्षिण अफ्रीका में इस हिन्दू वकील का ध्यान लग रहा था। महाद्वीपों के उस पार से काउंट लियो टाल्सटाय मोहनदास करमचंद गांधी का मार्ग-दर्शन करता था और उसके संघर्ष में शांति प्राप्त करता था।

टाल्सटाय से गांधीजी का परिचय टाल्सटाय की पुस्तक दि किंगडम ऑफ गॉड इज़ विदिन यू के द्वारा हुआ।

गांधीजी ने टाल्सटाय से प्रथम व्यक्तिगत संपर्क एक लंबे पत्र के द्वारा किया। यह पत्र अंग्रेजी में वेस्टमिन्स्टर पैलेस होटल, 4 विक्टोरिया स्ट्रीट, एस. डब्ल्यू. लंदन से 1 अक्तूबर 1909 को लिखा गया था और वहाँ से मध्य रूस में टाल्सटाय के पास यासनाया पोलियाना रवाना किया गया था | इस पत्र में गांधीजी ने इस रूसी उपन्यासकार को ट्रांसवाल के सविनय अवज्ञा आंदोलन से अवगत कराया था।

टाल्सटाय ने अपनी डायरी के 24 सितंबर 1909 (रूसी तारीखें उन दिनों पश्चिमी तारीखों से तेरह दिन पीछे चलती थीं) के विवरण में लिखा था-"ट्रांसवाल के एक हिन्दू (भारतीय) से मनोहारी पत्र प्राप्त हुआ।" चार दिन बाद टाल्सटाय ने अपने एक घनिष्ठ मित्र व्लादिमीर जी. शर्टकॉफ को, जिसने बाद में उनकी संग्रहीत रचनाओं का संपादन किया, पत्र में लिखा-"ट्रांसवाल के हिन्दू के पत्र ने मेरे हृदय को छुआ है।"

यास्नाया पोल्याना से 7 अक्तूबर (20 अक्तूबर) 1909 के पत्र में टाल्सटाय ने रूसी भाषा में गांधीजी को उत्तर भेजा | टाल्सटाय की पुत्री ताशियाना ने इसे अंग्रेजी में अनुवाद करके गांधीजी को भेजा | टाल्सटाय ने लिखा था-"मुझे अभी आपका बड़ा दिलचस्प पत्र मिला, जिसे पढ़कर मुझे बहुत आनंद हुआ | ट्रांसवाल के हमारे भाइयों तथा सहकर्मियों की ईश्वर सहायता करे | कठोरता के विरुद्ध कोमलता का और अहंकार तथा हिंसा के विरुद्ध विनय

तथा प्रेम का यह संघर्ष हमारे यहाँ हर साल अपनी अधिकाधिक छाप डाल रहा है । ...मैं बंधुत्व की भावना से आपका अभिवादन करता हूँ और आपसे संपर्क होने में मुझे हर्ष है।"

टाल्सटाय को गांधीजी का दूसरा पत्र जोहांसबर्ग से 4 अप्रैल 1910 को लिखा गया और उसके साथ गांधीजी की छोटी-सी पुस्तिका इंडियन होम रूल (हिन्द स्वराज्य) भेजी गई। इस पत्र में गांधीजी ने लिखा था-"आपका एक नम्र अनुयायी होने के नाते मैं आपको अपनी लिखी हुई एक पुस्तिका भेज रहा हूँ। यह मेरी गुजराती रचना का मेरा ही किया हुआ (अंग्रेजी) अनुवाद है । ...मैं आपको बिलकुल परेशान नहीं करना चाहता, परंतु यदि आपका स्वास्थ्य इजाजत दे, और यदि आपको यह पुस्तिका पढ़ने का समय मिल सके, तो कहने की आवश्यकता नही कि पुस्तिका पर आपकी आलोचना की मैं बहुत ही कद्र करूँगा।"

19 अप्रैल 1910 को टाल्सटाय ने अपनी डायरी में लिखा-"आज सुबह दो जापानी आए, यूरोपीय सभ्यता पर दीवाने होनेवाले उत्तेजित आदमी | दूसरी ओर हिन्दू का पत्र और पुस्तक यूरोपीय सभ्यता की तमाम कमियों का, और उसकी संपूर्ण अपूर्णता का भी, बोध प्रकट करते हैं।"

दूसरे दिन टाल्सटाय की डायरी में एक और उल्लेख है-"कल मैंने सभ्यता पर गांधी के विचार पढ़े। बहुत बढ़िया ।" और फिर अगले दिन-"गांधी के बारे में एक पुस्तक पढ़ी, बहुत महत्त्वपूर्ण | मुझे उनको लिखना चाहिए |" गांधीजी के बारे में पुस्तक थी जे. जे. डोक की लिखी हुई बायोग्राफी ऑफ गांधी, जो उन्होंने टाल्सटाय को भेजी थी।

एक दिन बाद टाल्सटाय ने अपने मित्र शर्टकॉफ को पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने गांधीजी को 'हमारा, 'मेरा' बहुत नजदीकी व्यक्ति' बतलाया |

टाल्सटाय ने 25 अप्रैल (8 मई) 1910 को यास्नाया पोल्याना से पत्र भेजा | उन्होंने लिखा :

प्रिय मित्र,

मुझे आपका पत्र और आपकी पुस्तक इंडियन होम रूल अभी मिले। जिन बातों और प्रश्नों की आपने अपनी पुस्तक में विवेचना की है, उनके कारण मैंने उसे बहुत दिलचस्पी के साथ पढ़ा | निष्क्रिय प्रतिरोध केवल भारत के ही लिए नहीं, बल्कि सारी मानवता के लिए सर्वाधिक महत्त्व का प्रश्न है | मैं आपके पिछले पत्र नहीं ढूँढ़ सका, लेकिन जे. डोस (यहाँ टाल्सटाय ने गलती कर दी) का लिखा हुआ आपका जीवन-चरित्र मेरे देखने में आया । इसने भी मुझे बहुत आकर्षित किया और आपके पत्र को जानने और समझने की संभावना प्रदान की। इन दिनों मेरी तबीयत ठीक नहीं है, इसलिए आपकी पुस्तक और आपके कार्यों के संबंध में, जिनकी मैं बहुत सराहना करता हूँ, मुझे जो कुछ कहना है वह लिखने से रुक गया हूँ। परंतु तबीयत ठीक होते ही लिखूँगा।

आपका मित्र और भाई

एल. टाल्सटाय

यह है हिन्दी रूपांतर टाल्सटाय की उत्कृष्ट रूसी भाषा के अंग्रेजी अनुवाद का, जो गांधीजी को भेजा गया था।

गांधीजी का तीसरा पत्र 15 अगस्त 1910 को, 21-24 कोर्ट चैम्बर्स, कार्नर रिसिक ऐंड ऐंडरसन स्ट्रीट्स, जोहांसबर्ग से भेजा गया | इसमें गांधीजी ने टाल्सटाय के 8 मई 1910 के पत्र की धन्यवाद के साथ प्राप्ति स्वीकार की और लिखा-"पुस्तक की जिस ब्यौरेवार आलोचना का वादा आपने कृपापूर्वक अपने पत्र में किया है, उसकी मैं प्रतीक्षा करूँगा।" गांधीजी ने टाल्सटाय को उस टाल्सटाय-फार्म की भी सूचना दी जो केलेनबेक ने तथा उन्होंने स्थापित किया था। उन्होंने कहा कि फार्म के बारे में केलेनबेक उन्हें (टाल्सटाय को) अलग पत्र लिख रहे हैं। गांधीजी तथा केलेनबेक के पत्रों ने, जिनके साथ इंडियन ओपीनियन साप्ताहिक के कई अंक भेजे गए थे, गांधीजी के प्रति टाल्सटाय की दिलचस्पी बहुत बढ़ा दी। 6 (19) सितंबर की अपनी डायरी में टाल्सटाय ने लिखा था : "निष्क्रिय प्रतिरोध उपनिवेश के बारे में ट्रांसवाल से हर्षदायक समाचार ।" इस समय टाल्सटाय गंभीर

आध्यात्मिक निराशा की हालत में और शरीर से रुग्ण थे। फिर भी उन्होंने गांधीजी के पत्र का उसी दिन उत्तर दे दिया। टाल्सटाय ने यह उत्तर 5 व 6 (18 व 19) सितंबर को शाम के वक्त लिखाया था। 7वीं (20वीं) को टाल्सटाय ने पत्र की गलतियाँ सुधारीं और रूसी भाषा में उसे शर्टकॉफ के पास अंग्रेजी अनुवाद के लिए भेज दिया।

टाल्सटाय का यह पत्र गांधीजी के पास शर्टकॉफ ने भिजवाया था। इस पत्र के साथ शर्टकॉफ ने अपना भी एक पत्र रख दिया था, जिसमें उसने लिखा था— "मेरे मित्र लियो टाल्सटाय ने मुझसे अनुरोध किया है कि आपके 15 अगस्त के पत्र की प्राप्ति स्वीकार करूँ और आपके नाम उनके 7 सितंबर के रूसी भाषा में लिखे गए पत्र का अंग्रेजी अनुवाद कर दूँ।

"मि. केलेनबेक के बारे में जो कुछ आपने लिखा, उससे टाल्सटाय को बहुत दिलचस्पी हुई है और उन्होंने मुझसे कहा है कि मैं उनकी ओर से मि. केलेनबेक के पत्र का उत्तर दे दूँ। आपको तथा आपके सहकारियों को टाल्सटाय हार्दिक अभिवादन तथा आपके कार्य की सफलता के लिए आंतरिक शुभकामनाएँ प्रेषित करते हैं। आपके कार्य की टाल्सटाय जो सराहना करते हैं, उसका पता आपको उनके पत्र के संलग्न अनुवाद से लगेगा। अंग्रेजी अनुवाद में अपनी भूलों के लिए मैं क्षमा-प्रार्थी हूँ। परंतु रूस के देहात में रहने के कारण मैं अपनी गलतियाँ सुधरवाने में किसी अंग्रेज की सहायता का लाभ प्राप्त नहीं कर सकता।

"टाल्सटाय की अनुमति से उनका आपके नाम यह पत्र एक छोटी-सी पत्रिका में, जिसे लंदन के हमारे कुछ मित्र निकालते हैं, प्रकाशित किया जायगा | पत्रिका की एक प्रति पत्र के साथ आपके पास भेजी जायगी और 'फ्री एज प्रेस' द्वारा प्रकाशित टाल्सटाय कि रचनाओं के कुछ अंग्रेजी प्रकाशन भी।

"चूँकि मुझे यह अत्यंत वाँछनीय प्रतीत होता है कि आपके आंदोलन के बारे में अंग्रेजी में अधिक जानकारी उपलब्ध हो, मैं अपनी तथा टाल्सटाय की एक बड़ी मित्र, ग्लासगो की मिसेज मेयो, को सुझाव भेज रहा हूँ कि वह आपसे पत्र-व्यवहार करें |...."

शर्टकॉफ ने मि. केलेनबेक को अलग पत्र भेजा।

गांधीजी को टाल्सटाय का यह पत्र सारे पत्र-व्यवहार में सबसे अधिक लंबा था। 7 (20 सितंबर) की तारीखवाला और शर्टकॉफ द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित यह पत्र गांधीजी के पास भिजवाने के लिए इंगलैंड में एक मध्यस्थ के पास भेजा गया था। यह व्यक्ति उस समय बीमार था और पत्र 1 नवंबर की डाक में छोड़ा गया | इसलिए ट्रांसवाल में यह पत्र गांधीजी को काउंट टाल्सटाय की मृत्यु के कई दिन बाद मिला।

टाल्सटाय ने लिखा था-"ज्यों-ज्यों मेरी आयु बीतती जाती है, और खासकर अब जबकि मैं मृत्यु की निकटता को स्पष्ट महसूस कर रहा हूँ, मैं सबसे वह बात कहना चाहता हूँ, जो मैं अत्यंत स्पष्ट रूप से अनुभव करता हूँ और जो मेरे विचार से बड़े महत्त्व की है-यानी वह चीज जो निष्क्रिय प्रतिरोध कहलाती है, परंतु जो वास्तव में उस प्रेम की शिक्षा के सिवा और कुछ नहीं है, जो झूठी व्याख्या से कलुषित हुआ है।

"वह प्रेम... सर्वोच्च है तथा मानव-जीवन का एकमात्र नियम है, और अपनी आत्मा की गहराई में हर मानव-जीव (जैसाकि हम बालकों में बिलकुल स्पष्ट देखते हैं) इसे महसूस करता है और जानता है; वह इसे जानता है जबतक कि वह संसार की झूठी शिक्षाओं में उलझ नहीं जाता | इस सिद्धांत की घोषणा संसार के भारतीय तथा चीनी, हिब्रू, यूनानी, रोमन आदि सभी ऋषियों ने की है |....

"वास्तव में जैसे ही प्रेम में बल का प्रवेश हुआ, जीवन के सिद्धांत के रूप में प्रेम बाकी नहीं रहा और न रह सकता है। और चूँकि प्रेम का सिद्धांत बाकी नहीं रहा, इसलिए कोई सिद्धांत बाकी नहीं रहा, सिवा हिंसा अर्थात् बलवत्तम की शक्ति के। ईसाई मनुष्य-जाति उन्नीस सदियों से इस प्रकार जीवित है।..."

मृत्यु के द्वार पर खड़ा यह बहुत बूढ़ा आदमी एक नवयुवक को इस प्रकार लिख रहा था। गांधीजी युवा थे, आत्मा में अपनी आयु से पच्चीस वर्ष कम बूढ़े थे | टाल्सटाय को गहरा आंतरिक विषाद था। वार एंड पीस[1] की अंतर्दृष्टिवाला कोई भी व्यक्ति, जो यह महसूस

करता हो कि ईसा के उपदेशों में उपलब्ध आनंद की कुंजी का उपयोग करने में मानवता से इन्कार किया है या असमर्थता दिखाई है, दुःखी हुए बिना नहीं रह सकता। परंतु गांधीजी का विश्वास था कि वह अपना और दूसरों का सुधार कर सकते हैं। वह ऐसा कर भी रहे थे। यह चीज उन्हें आनंद प्रदान करती थी।

---

1. टाल्सटाय का सुप्रसिद्ध उपन्यास |

5 / भावी का पूर्वाभास

गांधीजी बुरे-से-बुरे व्यक्ति के बारे में भी हताश नहीं होते थे। दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के दौरान उन्हें पता लगा कि उनका एक निकट भारतीय सहयोगी सरकारी मुखबिर है। बाद में इस व्यक्ति ने गांधीजी का खुला विरोध किया, लेकिन जब वह बीमार पड़ा और खर्च से तंग हो गया, तो गांधीजी उसके यहाँ गए और उसे धन की सहायता दी। समय पाकर यह पतित अपनी भूल पर पछताया।

जल्दी ही एक नया खतरा नजर आने लगा। दक्षिण अफ्रीका के संयुक्त संघ का नक्शा बन रहा था। संभावना थी कि यह भी ट्रांसवाल की तरह का भारत-विरोधी कानून बना डाले। गांधीजी ने लंदन में पार्लमिन्ट के सदस्यों को समझाने का विचार किया | जनरल बोथा और जनरल स्मट्स वहाँ पहले ही पहुँच चुके थे और संघ के निर्माण की व्यवस्था कर रहे थे।

गांधीजी की दृष्टि हमेशा ऊँची रहती थी। इस बार उन्होंने मद्रास के भूतपूर्व गवर्नर और 1904 में भारत के कार्यवाहक वाइसराय लार्ड एंप्टहिल का क्रियात्मक सहयोग प्राप्त कर लिया | 10 जुलाई 1909 को इंगलैंड पहुँचने से लगाकर नवंबर में दक्षिण अफ्रीका को वापस आने तक गांधीजी संपादकों, पार्लमिन्ट के सदस्यों, सरकारी अफसरों तथा सब जातियों के नागरिकों से मिले, उनकी उत्कटता ने बहुतों को मोहित और प्रभावित किया।

इसके अलावा और जाहिरा तौर पर पहली बार, गांधीजी ने इस लंदन-निवास में भारत की स्वाधीना की समस्या से अपना संबंध जोड़ना शुरू किया | इंग्लैंड में उन्होंने सब रंगों के राजनैतिक विचारोंवाले भारतीयों को पकड़ा-राष्ट्रवादी, होमरूलवादी, अराजकतावादी और हत्या का समर्थन करनेवाले | एक ओर तो वह इनके साथ रातों बहस करते थे, दूसरी ओर उनके खुद के राजनैतिक विचार और दर्शन रूप ग्रहण कर रहे थे। 9 अक्तूबर 1909 को वेस्ट-मिन्स्टर पैलेस होटल से लार्ड एंप्टहिल के नाम भेजे गए पत्र में गांधीजी के कुछ वे तत्त्व पहली बार अभिव्यक्त हुए, जो बाद में उनके सिद्धांत के तंतु बने।

अपने-आपको भारत का आजाद करानेवाला निमित्त या नेता समझने का कोई दावा करने से बहुत दिन पहले गांधीजी जानते थे कि उनका लक्ष्य केवल यह नहीं था कि ब्रिटिश शासन के स्थान पर भारतीय शासन हो जाय | इसका संकेत उन्होंने एंट्हिल को लिखे गए इस पत्र में भी किया था। उनकी दिलचस्पी सरकारों में नहीं, बल्कि साधनों और साध्यों में थी, इसमें नहीं थी कि अधिकार की गद्दी पर कोई विलियम बैठता है या चंद्र, बल्कि इसमें थी कि किसके क्रिया-कलाप अधिक सभ्यतापूर्ण हैं।

अक्तूबर 1912 में अंग्रेजी तथा अर्थशास्त्र के प्रोफेसर और भारत सेवक समिति के अध्यक्ष गोपाल कृष्ण गोखले एक महीने के लिए दक्षिण अफ्रीका आए | उनके आने का उद्देश्य था भारतीय समुदाय की अवस्था का अनुमान करना और उसके सुधारने में गांधीजी की सहायता करना।

बहुत से भाषण देने के बाद और बहुत से भारतीयों तथा गोरों से बातचीत करने के बाद गोखले ने जनरल बोथा और जनरल स्मट्स से दो घंटे मुलाकात की |

जब गोखले मुलाकात करके वापस आए, तो उन्होंने सूचना दी कि आवास-कानून का जातीय प्रतिबंध बिलकुल हटा दिया जायगा और गिरमिट समाप्त होने के बाद दक्षिण अफ्रीका में बसनेवाले गिरमिटिया मजदूरों से लिया जानेवाला तीन पौंड का टैक्स भी उठा लिया जायगा।

गांधीजी ने ताना दिया-"मुझे इसमें बहुत शंका है, आप मंत्रियों को उतना नहीं जानते, जितना मैं जानता हूँ।"

6 / विजय

स्मट्स ने असेम्बली भवन में यह घोषणा करके, कि नेटाल के यूरोपीय लोग भूतपूर्व गिरमिटियों पर से तीन पौंड का वार्षिक कर हटाए जाने के लिए तैयार नहीं है, अंतिम संघर्ष निकट ला दिया। सविनय अवज्ञा के दुबारा शुरू होने के लिए यह इशारा था | गिरमिटिया मजदूरों और गिरमिट से छूटे हुए मजदूरों ने इसे गोखले को दिए गए वचन का भंग माना। वे सामूहिक रूप में सत्याग्रह के लिए आगे आने लगे।

नए अभियान में पहला कदम यह था कि स्वयंसेविकाओं की एक टुकड़ी ट्रांसवाल को पार करके नेटाल में जाकर गिरफ्तार होनेवाली थी। इन 'नेटाली' बहनों को गिरफ्तार करके जेल भेज दिया गया। इस पर रोष फैला और नए सत्याग्रही सामने आए | ट्रांसवाली बहनों को गिरफ्तार नहीं किया गया। ये न्यूकासल पहुँच गईं और वहाँ उन्होंने भारतीय मजदूरों को औजार डालने के लिए राजी कर लिया । तब सरकार ने उन्हें भी गिरफ्तार कर लिया। नतीजा यह हुआ कि खनिकों की हड़ताल फैल गई।

गांधीजी फिनिक्स से न्यूकासल दौड़े गए। उन्होंने हड़तालियों को सलाह दी कि मिस्टर और मिसेज डी.एम. लाज़रस के घर के बाहर कैम्प लगाएँ। कुछ ही दिनों में लाज़रस के मकान के नजदीक पाँच हजार हड़ताली जमा हो गए।

न्यूकासल से रवाना होने का दिन 13 अक्तूबर नियत किया गया। सब लोग बिना किसी घटना के चार्ल्सटाउन जा पहुँचे। सरकार ने चार्ल्सटाउन में उन्हें गिरफ्तार नहीं किया, न तीन पौंडवाला कर हटाया । तब गांधीजी ने बीस मील रोज चलकर आठ दिन में टाल्सटाय फार्म पहुँचने का इरादा किया।

गांधीजी ने अपनी सेना की गिनती की। उसमें 2037 पुरुष, 127 स्त्रियाँ और 57 बच्चे थे। गांधीजी ने लिखा है-"6 नवंबर 1913 को सुबह 6.30 बजे हमने प्रार्थना की और भगवान का नाम लेकर कूच कर दिया।"

पहला पड़ाव पामफोर्ड में डाला गया।

गांधीजी सोने की तैयारी कर रहे थे कि उन्होंने पुलिस के सिपाही को लालटेन लिए अपनी ओर आते देखा।

पुलिस अफसर ने कहा-"मेरे पास आपकी गिरफ्तारी का वारंट है। मैं आपको गिरफ्तार करना चाहता हूँ।

गिरफ्तार करके गांधीजी को वोल्कस्रस्त ले जाया गया और वहाँ अदालत में उनपर मुकदमा चलाया गया। न्यायाधीश ने गांधीजी को जमानत पर छोड़ दिया। केलेनबेक उन्हें मोटर में बिठाकर फिर भारतीय 'सेना' में ले गए।

दूसरे दिन भारतीयों ने स्टैंडर्टन में पड़ाव डाला। जब गांधीजी रोटियाँ और मुरब्बा बाँट रहे थे, तब एक मजिस्ट्रेट आया और बोला-"आप मेरे कैदी हैं।"

"ऐसा लगता है कि मुझे तरक्की मिल गई है," गांधीजी ने हँसते हुए विनोद किया-"केवल पुलिस अफसर के स्थान पर अब मजिस्ट्रेट को मुझे पकड़ने का कष्ट उठाना पड़ रहा है |"

इस बार गांधीजी को फिर जमानत पर रिहा कर दिया गया। उनके पाँच साथियों को जेल भेज दिया गया।

दो दिन बाद, 9 नवंबर को, जबकि गांधीजी और पोलक भारतीयों की लंबी कतार के आगे-आगे चल रहे थे, एक अफसर ने गांधीजी को गिरफ्तार कर लिया ।

इस तरह चार दिन में गांधीजी तीन बार गिरफ्तार हुए।

10 नवंबर को वालफोर में सारे सत्याग्रही पोलक-सहित गिरफ्तार कर लिए गए | पोलक को वोल्कस्रस्ट जेल भेजा गया, जहाँ केलेनबेक पहले ही मौजूद थे।

14 नवंबर को वोल्कस्रस्ट में गांधीजी को अदालत में पेश किया गया। उन्होंने अपना जुर्म कबूल किया। लेकिन अदालत एक कैदी को सिर्फ जुर्म स्वीकार करने पर ही सजा देने को

तैयार नहीं हुई। इसलिए उसने गांधीजी से कहा कि अपने विरुद्ध गवाह पेश करें। गांधीजी ने ऐसा ही किया और केलेनबेक तथा पोलक ने उनके विरुद्ध गवाही दी।

चौबीस घंटे बाद गांधीजी ने केलेनबेक के विरुद्ध गवाही दी और इसके दो दिन बाद गांधीजी और केलेनबेक ने पोलक के विरुद्ध गवाही दी। इसलिए न्यायाधीश ने अनिच्छा से इन तीनों को तीन-तीन महीने की सख्त कैद की सजा दी और इन्हें वोल्कस्रस्ट जेल में रखा गया।

हड़ताली खनिकों का इससे बुरा हाल हुआ | उन्हें रेलगाड़ियों में भरकर वापस खानों पर पहुँचा दिया गया। लेकिन कोड़े, लाठियाँ और ठोकरें पड़ने पर भी उन्होंने कोयले की खान में जाने से इन्कार कर दिया।

प्रतिरोध की लहर दिन-दिन बढ़ती गई। करीब पचास हजार गिरमिटिया मजदूर हड़ताल पर थे। कई हजार स्वतंत्र भारतीय जेलों में थे। भारत से धन की नदी चली आ रही थी। वाइसराय के दफ्तर तथा लंदन के बीच और लंदन तथा दक्षिण अफ्रीका के बीच लंबे-लंबे सरकारी संदेशों के तार खटखटा रहे थे।

18 दिसंबर 1913 को सरकार ने अचानक गांधीजी, केलेनबेक और पोलक को छोड़ दिया।

वाइसराय तथा व्हाइट हॉल के ब्रिटिश अधिकारियों का दबाव पड़ने पर दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों की शिकायतों की जाँच करने के लिए एक कमीशन नियुक्त किया गया।

परंतु जेल से रिहा होने पर गांधीजी ने एक सार्वजनिक वक्तव्य में कहा कि यह कमीशन एक दल के प्रतिनिधियों से भरा हुआ है और इसके पीछे इंग्लैंड तथा भारत दोनों की सरकारों और जनमत की आँखों में धूल झोंकने की नीयत है |

स्मट्स ने कमीशन में भारतीयों को या भारतीय-समर्थकों को लेने का गांधीजी का प्रस्ताव ठुकरा दिया।

तदनुसार गांधीजी ने घोषणा की कि 1 जनवरी 1914 को वह भारतीयों की एक टुकड़ी के साथ गिरफ्तार होने के लिए डरबन से कूच करेंगे।

जिस समय भारतीयों के सामूहिक कूच का यह परेशान करनेवाला खतरा सरकार के सिर पर लटक रहा था, उसी समय दक्षिण अफ्रीका की रेलों के तमाम गोरे-कर्मचारियों ने हड़ताल कर दी। गांधीजी ने अपने कूच का कार्यक्रम तुरंत स्थगित कर दिया। उन्होंने बतलाया कि प्रतिद्वंदी को नष्ट करना, चोट पहुँचाना, नीचा दिखाना या चिढ़ाना, या उसे कमजोर करके विजय प्राप्त करना, सत्याग्रह की कार्य-प्रणाली का अंग नहीं है।

यद्यपि स्मट्स रेलवे हड़ताल में व्यस्त थे, तथापि उन्होंने गांधीजी को बातचीत के लिए बुलाया। एक के बाद दूसरी बात चलती रही | अंततः सरकार ने समझौते का सिद्धांत स्वीकार कर लिया।

स्मट्स तथा गांधीजी ने अपनी-अपनी सारी बातें और मसविदें सामने रख दिए | हफ्तों तक हर एक शब्द तौला गया, हर एक वाक्य यथार्थता की दृष्टि से छिला- तराशा गया | 30 जून 1914 को दोनों सूक्ष्म-विचारी समझौताकारों ने पूर्ण समझौते की शर्तों को पक्का करनेवाले पत्रों का आदान-प्रदान किया।

लड़ाई जीतने पर गांधीजी 18 जुलाई 1914 को श्रीमती गांधी तथा केलेनबेक के साथ इंग्लैंड के लिए रवाना हो गए।

दक्षिण अफ्रीका को सदा के लिए छोड़ने से पहले गांधीजी ने मिस श्लेसिन और पोलक को चप्पलों की एक जोड़ी, जो उन्होंने जेल में बनाई थी, दी और कहा कि यह जनरल स्मट्स को भेंट के रूप में दे दी जाय। जनरल स्मट्स ने अपने फार्म पर हर साल गरमियों में उन चप्पलों का इस्तेमाल किया | बाद में गांधी अभिनंदन ग्रंथ के अपने एक लेख में जनरल स्मट्स ने अपने को एक पीढ़ी पहले गांधी का प्रतिद्वंद्वी बताया और कहा-"महात्मा-जैसे व्यक्ति हमें मायूसी और निष्फलता की भावना से बचाते हैं और भलाई करने में कभी न थकने की प्रेरणा देते हैं।

“दक्षिण अफ्रीका के यूनियन के प्रारंभिक दिनों में हम लोगों के संघर्ष की कहानी स्वयं गांधी ने बताई है और उसे सब जानते हैं। एक ऐसे व्यक्ति का विरोध करना मेरे भाग्य में बदा था, जिसके लिए उस समय भी मेरे मन में अत्यधिक मान था। “वह कभी भी किसी स्थिति के मानवीय पक्ष को नहीं भूले, न कभी क्रुद्ध हुए, न घृणा के वशीभूत हुए और सबसे कठिन परिस्थिति में भी उनकी विनोद-भावना स्थिर रही | हमारे आज के युग में जो निर्दय बर्बरता पाई जाती है, उससे उनका स्वभाव और उनकी भावना उस समय भी सर्वथा भिन्न थी और बाद में भी रही ।”

“मुझे साफ स्वीकार करना चाहिए," स्मट्स ने आगे लिखा-“कि उस समय उनकी वृत्तियाँ मेरे लिए बड़ी परेशानी की थीं ।” गांधी की एक नई कला थी। उनकी पद्धति जान-बूझकर कानून तोड़ने और अपने अनुयायियों को एक जन-आंदोलन के रूप में संगठित करने की थी । दोनों प्रदेशों में एक भयंकर और बेचैनी-भरी हलचल पैदा हो गई | बहुत बड़ी संख्या में भारतीय गैरकानूनी व्यवहार के लिए गिरफ्तार करने पड़े और गांधी को जेल में आराम और शांति का समय मिल गया, जो कि निस्संदेह वह चाहते थे। उनके लिए सारी चीज योजना-बद्ध ढंग से हुई। लेकिन मेरे लिए, जिस पर कि कानून और व्यवस्था के संरक्षण का दायित्व था, सदा की भाँति सिरदर्द हो गया कि कानून की भारी जिम्मेदारी को निभाऊँ, उस कानून की, जिसे भारी लोकमत का समर्थन नहीं था। अंत में जब कानून वापस लेना पड़ा, तो उसकी बेचैनी भी मुझे सहन करनी पड़ी |" 1939 में गांधीजी के सत्तरवें जन्म-दिन पर स्मट्स ने मित्रता के प्रतीक रूप उन चप्पलों को गांधीजी को लौटा दिया।

गांधीजी की इस भेंट का जिक्र करते हुए स्मट्स ने लिखा था-“तबसे मैंने बहुत-सी गरमियों में ये चप्पलें पहनी हैं, हालाँकि मैं महसूस करता हूँ कि मैं ऐसे महापुरुषों के जूतों में खड़े होने[1] के योग्य भी नहीं हूँ।“

ऐसी विनोद-प्रियता और उदारता ने सिद्ध कर दिया कि वह गांधी से टक्कर लेनेवाले योग्य पात्र थे।

गांधीजी की बहुत-कुछ प्रभावशालिता इसी में थी कि वह अपने प्रतिद्वंद्वी के हृदय में उच्चतम गांधीवादी प्रेरणाएँ जागृत कर देते थे।

गांधीजी के उपायों की शुद्धता के कारण स्मट्स के लिए उनका विरोध करना कठिन हो गया था। गांधीजी को विजय इसलिए नहीं प्राप्त हुई कि स्मट्स में उनसे लड़ने की शक्ति नहीं रही थी, बल्कि इसलिए प्राप्त हुई कि स्मट्स का हृदय उनसे लड़ना ही नहीं चाहता था।

ऑक्सफोर्ड के प्रोफेसर गिल्बर्ट मरे ने लिखा था-"इस आदमी से व्यवहार करने में सावधान रहो, क्योंकि यह न तो भोगों की तनिक भी परवाह करता है, न शरीर-सुख की या प्रशंसा की वृद्धि की परवाह करता है, बल्कि यह तो वह काम करने पर कटिबद्ध रहता है, जिसे वह ठीक समझता है। वह एक खतरनाक और परेशान करनेवाला शत्रु है, क्योंकि उसका शरीर, जिसे आप कभी भी जीत सकते हैं, उसकी आत्मा को जरा भी पकड़ में नहीं आने देता ।"

यह था गांधी-जिसमें नेतृत्व का गुण था।

---

1. अंग्रेजी में 'स्टैंड इन वंज़ शूज' (stand in one's shoes) एक मुहावरा है, जिसका अर्थ है-किसी व्यक्ति का स्थान लेना । स्मट्स ने यहाँ इस वाक्य का शाब्दिक अर्थ में प्रयोग किया है।-संपादक

दूसरा भाग

गांधीजी भारत में

1 / घर वापस

“क्या मैं अपनी बात का विरोध करता हूँ ?” गांधीजी ने पूछा-“जड़ता तो भूत है।” गांधीजी किसी भी वाद में बंधे न थे। उनके विचारों या कार्यों का संचालन किसी बद्धमूल सिद्धांत के अनुसार नहीं होता था। उन्होंने कभी किसी धारा के अनुरूप अपने को काट-छाँटकर नहीं बनाया। अपने-आपसे भी विरुद्ध जाने का अधिकार उन्होंने सुरक्षित रखा।

गांधीजी कहते थे कि उनका जीवन तो अनंत प्रयोग है। सत्तर वर्ष की उम्र में भी वह प्रयोग करते रहे। उनमें अनुदारता नहीं थी। वह रुढ़िबद्ध हिन्दू या राष्ट्रीयतावादी अथवा शांतिवादी नहीं थे।

वह स्वाधीन-चेता, बंधन-मुक्त थे और उनके बारे में कोई भविष्यवाणी नहीं की जा सकती थी। इसलिए लोग उनसे उभड़ते थे और सहज पार नहीं पा सकते थे। उनसे बातचीत करना मानो खोज-संबंधी यात्रा करने जैसा था। वह बिना किसी बाहरी सहायता के जहाँ चाहे जाने का साहस कर सकते थे।

जब उनपर आक्रमण होता था, तो शायद ही कभी अपना बचाव करते थे। भारत के साथ वह एकरूप थे और कभी किसी की निन्दा नहीं करते थे। वह विनम्र और सीधे-सादे थे और उनमें किसी प्रकार का दिखावा न था। इस प्रकार अनुत्पादक मानसिक भ्रम से बचे रहकर वह सदा क्रियात्मक कार्यों के लिए खुले रहते थे। केवल लोकप्रियता प्राप्त करने अथवा अपने अनुयायियों को जीतने या खुश करने के लिए उन्होंने न कभी कोई काम किया, न कुछ कहा। वह अक्सर किसी भी चीज को नई दिशा देते थे। अपने कार्य को पूरा करने की उनकी आंतरिक आवश्यकता प्रमुख होती थी, भले ही उसका प्रभाव उनके अनुयायियों पर कुछ भी क्यों न पड़े।

गांधीजी, श्रीमती गांधी और केलेनबेक दक्षिण अफ्रीका से इंग्लैंड पहुँचे। उसके दो ही दिन बाद प्रथम महायुद्ध छिड़ गया | गांधीजी ने महसूस किया कि भारतीयों को भी ब्रिटेन की

कुछ सहायता करनी चाहिए | तदनुसार उन्होंने अपने नेतृत्व में घायलों की परिचर्या के लिए एक टुकड़ी तैयार करने का बीड़ा उठाया।

गांधीजी द्वारा युद्ध का समर्थन व्यक्तिगत रूप से दुःखप्रद और राजनैतिक दृष्टि से हानिकर था, परंतु वह आराम की अपेक्षा सत्य को श्रेयस्कर मानते थे |

जिस समय गांधीजी के युद्ध-समर्थक रुख के कारण छोटा-सा तूफान उनके सिर पर मंडरा रहा था, उनकी फुफ्फुस-प्रदाह (प्लूरिसी) की बीमारी ने, जो उपवासों के कारण बढ़ गई थी, गंभीर रूप धारण कर लिया। डाक्टरों ने उन्हें आदेश दिया कि वह भारत चले जाएँ | तदनुसार 9 जनवरी 1915 को कस्तूरबा के साथ वह बंबई आ पहुँचे। जर्मन होने के कारण केलेनबेक को भारत आने की अनुमति नहीं दी गई और वह दक्षिण अफ्रीका वापस चले गए।

गांधीजी की फिनिक्स-फार्म से बिदाई के साथ-ही-साथ उनका परिवार भी, अन्य परिवारों के साथ दक्षिण अफ्रीका से भारत आ गया। इस दल के लड़कों के अस्थायी निवास के लिए गांधीजी ने रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शांति निकेतन को सबसे अच्छा स्थान पसंद किया।

गांधीजी और ठाकुर समकालीन थे और भारत के बीसवीं सदी के पुनर्जीवन के मुख्य हेतुओं के रूप में निकट संबद्ध थे। परंतु गांधीजी गेहूँ का खेत थे और ठाकुर गुलाब का बाग; गांधीजी काम करनेवाले हाथ थे और ठाकुर गानेवाली आवाज; गांधीजी सेनापति थे और ठाकुर अग्रगामी दूत; गांधीजी मुंडे हुए सिर और चेहरेवाले कृश तपस्वी थे और ठाकुर विशालकाय, लंबे सफेद बाल और सफेद दाढ़ीवाले रईस-मनस्वी, जिनके चेहरे पर उच्च कोटि का पितृतुल्य सौन्दर्य था; गांधीजी शुद्ध त्याग के उदाहरण थे, ठाकुर स्वतंत्रता के आलिंगन को आह्लाद के सहस्र बंधनों में अनुभव करते थे। परंतु भारत और मानवता के लिए प्रेम के कारण दोनों एक थे। ठाकुर भारत को दूसरे लोगों के कचरा-पात्रों से चीथड़े बटोरनेवाला देखकर रोते थे और सब मानव-जातियों की भव्यता समस्वरता के लिए प्रार्थना करते थे।

बीसवीं सदी के पूर्वाद्ध के ये दो महानतम भारतीय, गांधी और ठाकुर, एक-दूसरे का बड़ा सम्मान करते थे। मालूम होता है कि गांधीजी को 'महात्मा' की उपाधि ठाकुर ने ही दी थी। गांधीजी ठाकुर को 'गुरुदेव' कहते थे। मनोभावों में अपृथक् तथा अंत तक आत्मीय रहते हुए भी दोनों में शाब्दिक युद्ध चलते रहते थे, क्योंकि दोनों न्यारे-न्यारे थे। गांधीजी का मुख अतीत की ओर रहता था और वह उसमें से भावी इतिहास का निर्माण करते थे। धर्म, जाति तथा हिन्दू पौराणिक गाथाएँ उनके रोम-रोम में व्याप्त थी। ठाकुर यांत्रिक तथा पश्चिमी संस्कृतिवाले वर्तमान को अंगीकार करते थे, परंतु इसके बावजूद पूर्वी कविता रचते थे | चूँकि भारत में प्रांतीय मूल इतना महत्त्व रखते हैं, इसलिए शायद यह भेद विलग गुजरात तथा उदारमना बंगाल का था। गांधीजी मितव्ययी थे। ठाकुर अपव्ययी थे | गांधीजी ने ठाकुर को लिखा था-"आपत्तिग्रस्त जनसमूह केवल शक्तिप्रद भोजन की ही एक मात्र कविता की माँग करता है।" ठाकुर उन्हें संगीत देते थे | शांतिनिकेतन में ठाकुर के छात्र नाचते और गाते थे, मालाएँ गूँथते थे और जीवन को मधुर तथा सुंदर बनाते थे।

भारत लौटने के कुछ ही दिन बाद जब गांधीजी वहाँ यह देखने के लिए पहुँचे कि उनके फिनिक्स-फार्म के लड़कों का क्या हाल-चाल है, तो उन्होंने वहाँ की काया ही पलट दी। दक्षिण अफ्रीका के अपने मित्र चार्ल्स फ्रीअर एंड्रयूज तथा विलियम डब्ल्यू. पीयर्सन की सहायता से उन्होंने 125 लड़कों और शिक्षकों के सारे समुदाय को समझा-बुझाकर रसोई का प्रबंध करने, कचरा उठाने, टट्टियाँ साफ करने, अहाते में झाड़ू लगाने और व्यापक रूप से, संगीत को तिलांजलि देकर भिक्षु बनने के लिए तैयार कर लिया | ठाकुर सहनशीलता के साथ समंत हो गए और बोले-"इस प्रयोग में स्वराज्य की कुंजी है।" परंतु कठोर तपस्या उनके स्वभाव के प्रतिकूल थी, इसलिए जब गांधीजी गोखले के अंतिम संस्कार में शामिल होने के लिए चले गए, तो यह प्रयोग ठप्प हो गया।

गांधीजी अपने निजी आश्रम की खोज में थे, जहाँ वह, उनका परिवार और मित्रगण त्याग और सेवा के वातावरण में अपना स्थायी घर बनाएँ | गांधीजी के जीवन में अब निजी

वकालत अथवा पत्नी और पुत्रों के साथ खानगी संबंधों के लिए स्थान नहीं था। एक विदेशी ने एक बार गांधीजी से पूछा-"आपके कुटुंब का क्या हाल है ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया-"सारा भारत मेरा कुटुंब है |"

इस प्रकार उत्सर्ग करके गांधीजी ने पहले कोचरब में और फिर स्थायी रूप से साबरमती में सत्याग्रह आश्रम की नींव डाली।

2 / "गांधी, बैठ जाओ"

सितंबर 1915 में एक निराली अंग्रेज महिला श्रीमती एनी बेसेन्ट ने होमरूल लीग की स्थापना की घोषणा की और वयोवृद्ध दादाभाई को उसका अध्यक्ष बनने के लिए राजी कर लिया।

1892 में श्रीमती बेसेन्ट ने बनारस में एक स्कूल प्रारंग किया था और 1916 में इस संस्था ने मालवीयजी के मार्ग-दर्शन में बढ़ते-बढ़ते हिन्दू विश्वविद्यालय सेण्ट्रल कॉलेज का रूप ले लिया था। फरवरी 1916 में इसके तीन दिवसीय उद्‌घाटन-समारोह में अनेक उल्लेखनीय तथा सुविख्यात व्यक्तियों ने भाग लिया। वाइसराय वहाँ उपस्थित थे और अनेक रत्नाभूषित राजे-महाराजे, रानियाँ और उच्चाधिकारी अपनी चमचमाती पोशाकों में मौजूद थे।

4 फरवरी को गांधीजी ने इस सभा में भाषण दिया | उनका भाषण समाप्त होने से पहले ही सभा भंग हो गई।

भारत ने ऐसी खरी और बिना लाग-लपेट की वक्तृता पहले कभी नहीं सुनी थी | गांधीजी ने किसी को नहीं बख्शा, उपस्थित जनों को तो सबसे कम । गांधीजी ने कहा-"हमारी कल की मंत्रणाओं का सभापतित्व करनेवाले महाराजा ने भारत की गरीबी का जिक्र किया था। अन्य वक्ताओं ने भी उस पर खूब जोर दिया। परंतु जिस पंडाल में वाइसराय (लार्ड हार्डिंग) ने शिलान्यास का संस्कार संपन्न किया, वहाँ हमने क्या देखा ? निश्चय ही एक बड़ा भारी भड़कदार तमाशा और रत्नाभूषणों की एक प्रदर्शिनी थी, जो पेरिस से आने का कष्ट उठानेवाले बड़े-से-बड़े जौहरी की आँखों के लिए भी तृप्ति का भव्य दृश्य बनी हुई थी। बहुमूल्य वस्त्राभूषणों से सजे-सजाए इन रईसों के साथ मैं करोड़ों गरीबों की तुलना करता हूँ। मुझे इन रईसों से कहने की आंतरिक इच्छा होती है : 'जब तक आप लोग इन आभूषणों को बिलकुल उतार न देंगे और इन्हें भारत के अपने देशवासियों की अमानत के रूप में नहीं रखेंगे, तब तक भारत का निस्तार नहीं है।"

श्रोताओं में से विद्यार्थियों ने पुकारा-"वाह, वाह !" बहुतों ने असहमति प्रकट की | कुछ राजे तो उठकर भी चले गए।

पर इससे गांधीजी रुके नहीं | वह कहते गए-"जब कभी मैं भारत के किसी बड़े शहर में, चाहे वह ब्रिटिश भारत में हो, चाहे बड़े राजाओं द्वारा शासित भारत में, किसी विशाल महल के निर्माण की खबर सुनता हूँ, तब मुझे ईर्ष्या होने लगती है, और मैं कहता हूँ-हाय, यह वह रुपया है, जो किसानों से प्राप्त हुआ है। हम किसानों के श्रम का सारा फल छीन लेते हैं या दूसरों को छीन लेने देते हैं, तो हमारे आस-पास स्वराज्य की कुछ अधिक भावना नहीं मानी जा सकती | हमारा निस्तार किसानों द्वारा ही हो सकता है। उसे प्राप्त करानेवाले न तो वकील होंगे, न डाक्टर और न धनी जमींदार |"

गांधीजी अपना झंडा भारत के शक्तिशाली लोगों के सामने फहरा रहे थे। यह झंडा दीन-हीन जनों का था।

विद्यार्थियों को संबोधित करके गांधीजी ने आगे कहा-"अगर आप विद्यार्थी-जगत के लोग, जिनके लिए आज का मेरा भाषण रखा गया है, क्षण-भर के लिए भी समझते हों कि आध्यात्मिक जीवन, जिसके लिए यह देश विख्यात है और इस देश की तुलना करनेवाला कोई नहीं है, मौखिक शब्दों द्वारा दूसरों तक पहुँचाया जा सकता है, तो कृपया विश्वास कीजिए कि आप भूल करते हैं। केवल जबानी बातों से आप लोग वह संदेश कभी नहीं दे सकेंगे, जो मुझे आशा है कि एक दिन भारत सारे संसार में पहुँचाएगा । मैं आपको बताने का साहस करता हूँ कि भाषणबाजी में अब हम अपने साधनों के छोर पर जा पहुँचे हैं। यह काफी नहीं है कि हमारे कानों की तृप्ति हो, या हमारी आँखों की तृप्ति हो, बल्कि आवश्यकता इस बात की है कि हमारे हृदय झंकृत हो उठें और हमारे हाथ-पैरों में गति उत्पन्न हो जाय |"

गांधीजी ने फिर कहा-"हमारे लिए यह घोर अपमान और लज्जा की बात है कि आज मुझे इस महान कॉलेज की छाया में और इस पुनीत नगर में, अपने देशवासियों को ऐसी भाषा में संबोधित करना पड़ रहा है, जो मेरे लिए विदेशी है।"

गांधीजी ने आगे कहा-"कल्पना कीजिए कि पिछले पचास वर्षों में हमको अपनी-अपनी मातृभाषा में शिक्षा दी गई होती | ऐसी अवस्था में आज हम क्या होते ? आज हमारा भारत आजाद होता, हमारे शिक्षित लोग अपने ही देश में विदेशियों की तरह न होते, बल्कि राष्ट्र के हृदय से बातें करते हुए जान पड़ते, वे लोग दीन-से-दीन जनों में काम करते हुए दिखाई देते और गत पचास वर्षों में उन्होंने जो कुछ प्राप्त किया होता वह राष्ट्र की विरासत होता।"

इस विचार पर छुटपुट हर्ष-ध्वनि हुई।

अपने दर्शन का तत्त्व बतलाते हुए और एकत्र रईसों को स्तब्ध करनेवाले शब्दों का उपयोग करते हुए गांधीजी ने कहा-

"कोई भी कागजी लेख हमको कभी स्वराज्य नहीं दे सकता। कितने भी भाषण हमको कभी स्वराज्य के योग्य नहीं बना सकते। केवल हमारा आचरण ही हमको उसके योग्य बनाएगा | और हम अपने ऊपर शासन करने के क्या प्रयत्न कर रहे हैं? अगर आपको लगे कि आज मैं बिना वाक्-संयम के बोल रहा हूँ, तो कृपया यह समझिए कि उस आदमी के विचारों में शरीक हो रहे हैं, जो अपने दिल की बात सुनाने की आजादी ले रहा है। यदि आप समझते हों कि मैं शिष्टाचार-सम्मत मर्यादाओं का उल्लंघन कर रहा हूँ, तो मैं जो अनाधिकार चेष्टा कर रहा हूँ, उसके लिए मुझे क्षमा कीजिए | कल शाम को मैं विश्वनाथ के मंदिर में गया था और जब मैं उन गलियों में चल रहा था, तब इन विचारों ने मेरे हृदय को स्पर्श किया।…क्या यह उचित है कि हमारे पवित्र मंदिरों की गलियाँ इतनी गंदी हों ? गलियाँ सँकरी और टेढ़ी-मेढ़ी हैं | यदि हमारे मंदिर ही पवित्रता और सफाई के नमूने नहीं हैं, तो हमारा स्वराज्य कैसे हो सकता है ? क्या अंग्रेजों के भारत छोड़ते ही हमारे मंदिर धार्मिक पवित्रता, सफाई और शांति के आलय बन जाएँगे ?"

गांधीजी धरती के नजदीक रहते थे | नाजुक-से-नाजुक कानों को भी जीवन के तथ्य सुनने चाहिए। उन्होंने कहा-"यह बात कुछ सुखदाई नहीं है कि बंबई के बाजारों में घूमनेवाले लोगों को हमेशा यह डर रहता है कि ऊँची-ऊँची इमारतों में रहनेवाले कहीं उनपर थूक

न दें |" बहुत-से भारतीयों की त्यौरियाँ चढ़ गईं। क्या अँग्रेजों की उपस्थिति में किसी भारतीय को ऐसा कहना उचित था ? और बनारस विश्वविद्यालय या स्वतंत्रता का थूकने से क्या संबंध था ?

गांधीजी ने श्रोताओं की विरोधी-भावना महसूस कर ली, फिर भी वह ढीले न पड़े।

अरुचिकर विचारों की उस दिन की खुराक अभी पूरी नहीं हुई थी। अभी तो न कहनेवाली बात बाकी थी | गांधीजी ने जोर देकर कहा-

“मेरा कर्तव्य मजबूर करता है उस चीज का जिक्र करने के लिए, जो पिछले दो-तीन दिनों से हमारे दिमागों को परेशान कर रही है। जब वाइसराय बनारस के बाजारों में निकल रहे थे, तब हम सबों के लिए कितने ही चिन्तापूर्ण क्षण गुजरे थे | अनेक स्थानों पर जासूस तैनात थे |”

इस पर आमंत्रित मेहमानों में हलचल मच गई | यह बात सार्वजनिक रूप से कहने की नहीं थी। गांधीजी ने बतलाया-“हम थर्रा उठे | हमने अपने मन में सवाल किया-'यह अविश्वास क्यों ? क्या यह श्रेयस्कर नहीं है कि लार्ड हार्डिंग मर जाएँ बजाय इसके कि इस तरह जीवित मृत्यु का जीवन बिताएँ ?' परंतु एक शक्तिशाली सम्राट का प्रतिनिधि ऐसा नहीं कर सकता। उनके लिए शायद ऐसा जीवन भी आवश्यक हो, परंतु इन जासूसों को हम पर थोपना क्यों आवश्यक था ?”

गांधीजी ने यह अरुचिकर प्रश्न केवल पूछा ही नहीं, इसका और भी अरुचिकर उत्तर दिया। भारतवासियों पर जासूसों की प्रतिक्रिया के बारे में गांधीजी ने कहा- "भले ही हम ताव खा जाएँ, हम खीझें, हम रोष करें, लेकिन हमको भूलना नहीं चाहिए कि आज के भारत ने अधीरतावश विप्लवकारियों की एक सेना पैदा कर दी है। मैं खुद भी विप्लववादी हूँ, परंतु दूसरी किस्म का ।-उनका विप्लववाद- भय का चिह्न है। यदि हम ईश्वर में विश्वास रखें और उससे डरें, तो हमको किसी से भी डरने की जरूरत नहीं है, न महाराजाओं से, न वाइसराय से, न जासूसों से और न बादशाह जार्ज तक से |"

श्रोतागण बेकाबू होते जा रहे थे और सभा में जगह-जगह तकरार होने लगी | गांधीजी ने कुछ ही वाक्य और कहे होंगे कि श्रीमती बेसेन्ट ने, जो अध्यक्ष पद पर आसीन थीं,[1] उन्हें पुकारकर कहा-"कृपा करके इसे बंद कीजिए |"

गांधीजी ने उनकी ओर मुखातिब होकर कहा-"मैं आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा में हूँ। यदि आप सोचती हैं कि मेरे बोलने से देश और साम्राज्य का हित-साधन नहीं हो रहा है, तो मैं अवश्य बंद कर दूँगा।"

श्रीमती बेसेन्ट ने रुखाई से उत्तर दिया-"कृपया अपना उद्देश्य बताइए |"

गांधीजी बोले-"मैं अपना उद्देश्य बता रहा हूँ। मैं केवल..."

शोर इतना बढ़ गया कि उनकी आवाज सुनाई नहीं दे सकी।

किसीने चिल्लाकर कहा-"बोले जाओ !"

दूसरों ने चीखा-"गांधी, बैठ जाओ !"

शोर बंद हुआ तो गांधीजी ने श्रीमती बेसेन्ट का बचाव किया | "इसका कारण यह था," गांधीजी ने कहा-"कि यह भारत को बहुत प्रेम करती हैं और उनका विचार है की आप युवकों के सामने अपने विचार रखकर मैं भूल कर रहा हूँ।" लेकिन फिर भी उन्होंने अपनी बात साफ-साफ कहना ही पसंद किया । उन्होंने कहा-"मैं प्रकाश को अपने लोगों की ओर ही कर रहा हूँ ।...कभी-कभी दोष अपने ऊपर लेना अच्छा होता है |"

इतने में कुछ विशेष लोग मंच से उठकर चल दिए। शोर बढ़ा और गांधीजी को अपना भाषण बंद करना पड़ा। श्रीमती बेसेन्ट ने सभा स्थगित कर दी।[2]

बनारस से गांधीजी साबरमती चले गए।

भारत में एक जगह दूसरी से दूर है और यातायात के साधन अच्छे नहीं हैं। कम लोग पढ़े-लिखे हैं और बहुत कम लोगों के पास रेडियो है। इसलिए भारत के कान बहुत लंबे और ग्रहणशील हैं। सन् 1916 में वे कान एक व्यक्ति का स्वर सुनने लगे, जो हिम्मतवाला था,

पर विवेकशील नहीं-मामूली-सा व्यक्ति, जो गरीबों की तरह रहता था और धनिकों के मुकाबले में गरीबों की रक्षा करता था-आश्रम में रहनेवाला एक पवित्र पुरुष।

गांधीजी अभी तक राष्ट्रीय विभूति नहीं बनें थे। करोड़ों व्यक्ति उन्हें नहीं जानते थे । लेकिन नए महात्मा की ख्याति फैलती जा रही थी। भारत शक्ति और धन के भय के चंगुल में फँसा है, पर वह गरीबों के विनम्र सेवक को प्रेम करता है। धन- दौलत, हाथी-घोड़े, हीरे-जवाहिरात, पल्टन, महल भारत का आदर पाते हैं, बलिदान और त्याग को भारत का हृदय मिलता है।

मैकॉले ने लिखा है-"पूर्व पश्चिम के सामने झुका; धैर्य और गहरी घृणा से।

"और वह इसी घृणा से उस पूर्व के आगे झुका, जो धन और शक्ति का लोभी है।"

इसलिए भारत त्याग की महिमा भली प्रकार जानता और मानता है। भारत में बहुत से साधु-संत हैं, लेकिन गांधीजी के त्याग की प्रतिध्वनि अधिक हुई, क्योंकि उन्होंने महज त्याग की खातिर किए गए त्याग का विरोध किया। एक पत्र में उन्होंने लिखा-"माँ राजी से कभी वे भीगे बिस्तर पर नहीं सोएगी, लेकिन अपने बेटे की खातिर वह सूखे बिस्तर को उसके लिए छोड़कर स्वयं गीले पर खुशी-खुशी सो जायगी |"

गांधीजी ने सेवा के लिए त्याग किया।

---

1. इस सभा के अध्यक्ष महाराजा दरभंगा थे, श्रीमती बेसेन्ट उनके पास बैठीं थीं । -संपादक

2. श्रीमती बेसेन्ट ने सभा स्थगित नहीं की थी। महाराजा दरभंगा ही सभापति का आसन छोड़कर चले गए थे | उनके जाते ही गांधीजी ने अपना भाषण बंद कर दिया। बाद में गांधीजी के एक मित्र ने कहा था-"मैंने श्रोतागण को ऊबकर चले जाते हुए देखा है | मैंने यह भी देखा है कि वक्ताओं को बैठा दिया गया, लेकिन खुद अध्यक्ष को सभा छोड़कर जाते हुए कभी नहीं देखा ।"-संपादक

3 / हरिजन

एक अछूत परिवार ने साबरमती-आश्रम में स्थायी रूप से रहने की इच्छा प्रकट की | गांधीजी ने उन्हें आश्रम में दाखिल कर लिया।

इस पर तूफान उठ खड़ा हुआ।

आश्रम की स्त्रियों ने अछूत स्त्री को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया | कस्तूरबा को तो इस विचार से ही घृणा हुई कि दानीबहन रसोई में भोजन बनाए और बरतन साफ करे। गांधीजी ने समझा-बुझाकर उन्हें राजी कर लिया।

कुछ ही समय बाद गांधीजी ने घोषणा की कि उन्होंने अछूत कन्या लक्ष्मी को अपनी पुत्री बना लिया है। इस प्रकार कस्तूरबा एक अछूत की माता बन गईं !

गांधीजी ने जोर दिया कि अस्पृश्यता प्रारंभिक हिन्दू धर्म का अंग नहीं है | वस्तुतः अस्पृश्यता के विरुद्ध उनका संघर्ष हिन्दू धर्म के नाम पर ही हुआ। उन्होंने लिखा है-"मैं फिर से जन्म नहीं लेना चाहता, लेकिन यदि लेना ही पड़े, तो मैं अस्पृश्य के रूप में पैदा होना चाहूँगा, जिससे मैं उनकी वेदनाओं, कष्टों और उनके साथ किए जानेवाले दुर्व्यवहारों में साझीदार हो सकूँ और जिससे मैं अपने को और उनको दुःखदायी स्थिति से मुक्त कर सकूँ।"

लेकिन अगले जन्म में अछूत पैदा होने से पहले इस जन्म में ही वह अस्पृश्य की भाँति रहने लगे। वह आश्रम के पाखाने साफ करने लगे। उनके संगी-साथी भी साथ हो गए। अब अछूत कोई न रहा, क्योंकि बिना छूत-छात के विचार के हर कोई अछूत का काम करता था।

नीच जाति के लोग अछूत कहलाते थे। गांधीजी ने उनके मनोविज्ञान को समझा और अपने को 'हरिजन' कहना शुरू कर दिया। बाद में उन्होंने अपने साप्ताहिक पत्र का नाम 'हरिजन' रखा धीरे-धीरे 'हरिजन' शब्द प्रयोग में आकर गौरवशाली बन गया।

धर्मांध हिन्दुओं ने अछूतों को प्रेम करने के लिए गांधीजी को कभी क्षमा नहीं किया। अपने जीवन में गांधीजी को जिन राजनैतिक बाधाओं का सामना करना पड़ा, उनमें से बहुतों के लिए धर्मांध हिन्दू जिम्मेदार थे। लेकिन बहुसंख्यक लोगों के लिए वह महात्मा थे। वे उनसे आशीर्वाद माँगते थे, खुशी-खुशी उनके पैर छूते थे। इसलिए उन्हें इस बात को दरगुज़र करना पड़ा और वे भूल गए कि वह अछूतों की भाँती कलुषित हैं, क्योंकि वह सफाई का काम करते हैं और अछूतों के साथ रहते हैं और उनके पास एक अछूत लड़की रहती है। बरसों तक लाखों सवर्ण हिन्दू गांधीजी के आश्रम में उनसे मिलने, उनके साथ खाना खाने और टहलने आते रहे। उनमें से कुछ ने अपने को बाद में शुद्ध किया; लेकिन अधिकांश लोग इतने कायर नहीं थे | अस्पृश्यता का थोड़ा-बहुत अभिशाप दूर हो गया | गांधी-विचारधारा के लोग अछूतों को अपने घरों में रखने लगे। गांधीजी ने अपने उदाहरण से शिक्षा दी।

शहरी जीवन और औद्योगीकरण के कारण हरिजनों के प्रति अत्याचारों में कमी आई | देहात में लोग एक-दूसरे को जानते हैं; लेकिन अछूत कुछ और तरह का तो लगता नहीं है। रेल-मोटर में सवर्ण हिन्दू उनके साथ सटकर बैठते हैं और उन्हें पता भी नहीं चलता | इस प्रकार के अनिवार्य संपर्क से भी हिन्दुओं को हरिजनों के साथ मिलने-जुलने के लिए बाध्य होना पड़ता है।

फिर भी हरिजनों की गरीबी बनी रही और उनकी ओर से किए गए गांधीजी के प्रारंभिक कार्यों, संकेतों और वक्तव्यों से छुआछूत दूर नहीं हुई | इसलिए गांधीजी को अपना प्रयत्न निरंतर जारी रखना पड़ा।

गांधीजी के ऊपर ही यह भार क्यों आकर पड़ा कि वह हरिजनोद्धार का आंदोलन चलाएँ? और कोई क्यों नहीं ?

दक्षिण अफ्रीका में बहुत-से गिरमिटिया मजदूर अछूत थे और सन् 1914 के सविनय अवज्ञा आंदोलन के अंतिम चरण के नायक थे। इसके अलावा गांधीजी का दक्षिण अफ्रीका का

21 वर्ष का संघर्ष एक बुराई को दूर करने के लिए था, जिसकी जड़ में, आर्थिक प्रश्नों के साथ-साथ रंग-भेद भी था। असमान दैवी देनों के साथ सब मनुष्यों का जन्म होता है, पर उनके अधिकार समान होते हैं। समाज का कर्तव्य है कि वह उन्हें अपनी योग्यता के विकास तथा स्वतंत्र रहने के लिए समान, अथवा कम-से-कम, खुले अवसर प्रदान करे | तब गांधीजी, जो दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों की समानता के लिए लड़कर ताजे लौटे थे, अपने देश में ही देशवासियों द्वारा देशवासियों पर थोपी हुई क्रूर असमानता को कैसे सहन कर सकते थे ?

जहाँ कोई भी व्यक्ति अपने धर्म, विश्वास अथवा अपने पूर्वजों या संबंधियों के कार्य, नाक की शक्ल, खाल के रंग, नाम-बोध अथवा अपने जन्म-स्थान के कारण, समान अधिकारों से वंचित किया जाता है, वहाँ आजादी की नींव खोखली हो जाती है।

भारत के लिए गांधीजी की आजादी की कल्पना में हिन्दू-अनैतिकता तथा ब्रिटिश शासकों के लिए कोई स्थान न था। उन्होंने 25 मई 1921 के यंग इंडिया में लिखा-"यदि हम भारत के पाँचवें अंग को सतत् गुलामी में रखते हैं, तो स्वराज्य अर्थहीन है। यदि हम स्वयं अमानवीय रहेंगे, तो भगवान् के दरबार में हम दूसरों की अमानवीयता से छुटकारे के लिए कैसे याचना कर सकते हैं ?"

अछूतों के प्रति गांधीजी का रुख साफ था और वह यह कि अस्पृश्यता को वह सहन नहीं कर सकते थे। सच तो यह है कि मनुष्यों के इस अमानवीय बहिष्कार से वह इतने व्यथित थे कि उन्होंने कहा-"यदि मेरे सामने यह सिद्ध हो जाय कि अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का आवश्यक अंग है, तो मैं अपने को ऐसे धर्म के प्रति विद्रोही घोषित कर दूँगा |" लोकप्रियता का इच्छुक कोई भी व्यक्ति ऐसा सार्वजनिक वक्तव्य नहीं दे सकता था, विशेषकर ऐसे देश में, जहाँ रूढ़िवादी हिन्दुओं का बहुमत था। लेकिन उन्होंने कहा कि ऐसा उन्होंने हिन्दू की हैसियत से अपने धर्म को परिष्कृत करने के लिए किया। उनकी दृष्टि में अस्पृश्यता एक बड़ी व्याधि थी |

धर्मभीरु हिन्दू हरिजनों को अलग रहते देखकर संतुष्ट थे। फिर भी पृथकता में ऐक्य साधने का भारतीय आदर्श तो था ही; और उन्हें जोड़नेवाली तीन बातें हैं : संस्कृति की अखंड रेखा, जो धुंधले अतीत से आज दिन तक चली आती है, इतिहास की श्रृंखला, और रक्त तथा धर्म के बंधन।

रक्त हिन्दुओं को मुसलमानों और सिखों से जोड़ता है। धर्म इस संबंध को कमजोर करता है, भूगोल जोड़ता है, यातायात के भद्दे साधन विभाजन कर देते हैं, भाषाओं की विविधता भी उन्हें अलग करती है।

इन सब तत्त्वों के बीच से गांधीजी और उनकी पीढ़ी को एक राष्ट्र का निर्माण करना था।

4 / नील

जब मैं 1942 में सेवाग्राम आश्रम में गांधीजी से पहली बार मिला तो उन्होंने मुझसे कहा- "मैं तुम्हें बतलाऊँगा कि वह कौन-सी घटना थी, जिसके कारण मैंने अंग्रेजों के भारत छोड़ने पर जोर देने का निश्चय किया। यह घटना 1917 की है |"

गांधीजी कांग्रेस के दिसंबर 1916 के लखनऊ-अधिवेशन में शामिल होने के लिए गए थे। गांधीजी ने लिखा है-"जब कांग्रेस की कार्रवाई चल रही थी, एक किसान, भारत के अन्य किसानों की तरह गरीब और कृश-तन दिखाई देनेवाला मेरे पास आया और बोला-"मैं राजकुमार शुक्ल हूँ। मैं चंपारन से आया हूँ और चाहता हूँ कि आप मेरे जिले में चलें।" गांधीजी ने चंपारन का नाम पहले कभी नहीं सुना था।

बहुत दिनों से चली आ रही व्यवस्था के अनुसार चंपारन के किसान 'तीन कठिए'[1] थे। राजकुमार शुक्ल भी ऐसे किसानों में थे। वह कांग्रेस-अधिवेशन में चंपारन की इस जमीन्दारी-प्रथा के विरुद्ध शिकायत करने आए थे और शायद किसी ने उसे सलाह दी थी कि गांधीजी से बात करें।

गांधीजी इस किसान की दृढ़ता और गाथा से प्रभावित हुए | उन्होंने कहा-"मैं अमुक तारीख को कलकत्ता में रहूँगा। वहाँ मुझसे मिलना और मुझे ले चलना |"

शुक्ल गांधीजी से कलकत्ता में मिले और दोनों रेल में बैठकर पटना पहुँचे | शुक्ल उन्हें राजेन्द्रप्रसाद के घर ले गए | राजेन्द्रबाबू बाहर गए हुए थे। उनके नौकर ने गांधीजी को कुएँ से पानी नहीं भरने दिया।

गांधीजी ने पहले चंपारन के मार्ग में पड़नेवाले मुजफ्फरपुर जाने का निश्चय किया | उन्होंने मुजफ्फरपुर के आर्ट्स कॉलेज के प्रोफेसर जे. बी. कृपलानी को तार किया | 15 अप्रैल 1917 को रात के 12 बजे गाड़ी मुजफ्फरपुर पहुँची। स्टेशन पर कृपलानी मिले और गांधीजी को प्रोफेसर मलकानी के घर पर ठहराया गया।

गांधीजी के आने और उनकी यात्रा के उद्देश्य की खबर मुजफ्फरपुर और चंपारन में बहुत जल्दी फैल गई | चंपारन से 'तीन कठिया' किसान उनसे मिलने के लिए आने लगे।

कछ दिन पहले जर्मनीवालों ने नकली नील बना लिया था और निलहे गोरों को इसका पता लग गया था | इसलिए उन्होंने किसानों से इकरारनामे लिखवा लिए कि तीन कठिया व्यवस्था से छुटकारा पाने के लिए वे मुआवजा दे देंगे। जब इन किसानों ने नकली नील का समाचार सुना, तो उन्होंने माँग की कि मुआवजे की रकम उन्हें वापस की जाय।

गांधीजी चंपारन पहुँचे और वहाँ पहले निलहे गोरों की एसोसिएशन के मंत्री से मिले | उसने एक बाहर के आदमी को कोई जानकारी देने से इन्कार कर दिया।

तब गांधीजी तिरहुत डिवीजन के अंग्रेज कमिश्नर से मिले। उसने गांधीजी को डाँट बतलाई और तुरंत तिरहुत छोड़ देने की सलाह दी।

गांधीजी ने तिरहुत इलाका नहीं छोड़ा और मोतीहारी जा पहुँचे। यहाँ उन्हें सरकारी आज्ञा मिली कि वह चंपारन छोड़कर चले जाएँ | गांधीजी ने आज्ञा-प्राप्ति की रसीद पर लिख दिया कि वह इसकी अवज्ञा करेंगे। इस पर उन्हें अदालत में हाजिर होने का सम्मन मिला।

गांधीजी को रात-भर नींद नहीं आई। उन्होंने राजेन्द्रबाबू को तार दिया कि प्रभावशाली मित्रों के साथ आ जाएँ। आश्रम को भी उन्होंने हिदायतें भेज दीं और वाइसराय को पूरे विवरण का तार भेज दिया।

सुबह सारा मोतीहारी किसानों से भर गया। गांधीजी ने भीड़ को संभालने में अधिकारियों को सहायता दी। सरकार चक्कर में पड़ गई। सरकारी वकील ने अदालत से प्रार्थना की कि मुकदमा मुल्तवी कर दिया जाय।

गांधीजी ने इस देरी का विरोध किया। उन्होंने अदालत के सामने बयान में अपराध स्वीकार किया।

मजिस्ट्रेट ने कहा कि फैसला दो घंटे बाद सुनाया जायगा और इतने समय के लिए गांधीजी जमानत दें | गांधीजी ने इन्कार किया | इस पर मजिस्ट्रेट ने उन्हें बिना जमानत के ही छोड़ दिया।

दो घंटे बाद अदालत जब फिर बैठी, तो मजिस्ट्रेट ने कहा कि फैसला कुछ दिन बाद सुनाया जायगा ।

राजेन्द्रबाबू, ब्रजकिशोरबाबू, मौलाना मजहरुल हक आदि कई प्रमुख वकील आ पहुँचे। गांधीजी ने पूछा कि अगर मैं जेल चला जाऊँ, तो आप लोग क्या करेंगे ? उन्होंने जवाब दिया कि वापस चले जाएँगे।

गांधीजी ने पूछा-"तब किसानों पर जो अन्याय हो रहा है, उसका क्या होगा ?" वकीलों ने आपस में सलाह करके जवाब दिया कि वे भी उनके पीछे जेल जाने को तैयार हैं। गांधीजी बोले-"चंपारन की लड़ाई फतह हो गई।"

जून में गांधीजी को बिहार के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर सर एडवर्ड गेट का बुलावा आया। गवर्नर से बातचीत के फलस्वरूप तीन कठिया किसानों की अवस्था की जाँच के लिए एक कमीशन नियुक्त किया गया।

सरकारी जाँच में निलहे गोरों के विरुद्ध गवाहियों का पहाड़ जमा हो गया और इसे देखकर कमीशन ने यह सिद्धांत मान लिया कि किसानों को मुआवजे का रुपया वापस किया जाय।

निहले गोरों ने 25 प्रतिशत लौटाने का प्रस्ताव रखा। गांधीजी ने इसे मान लिया और उलझन मिट गई।

कुछ ही वर्षों में निलहे गोरों ने अपनी जमीन्दारियाँ छोड़ दीं और ये किसानों को मिल गईं। तीन कठिया प्रथा का अंत हो गया।

गांधीजी ने कभी बड़े राजनैतिक या आर्थिक समाधानों से संतोष नहीं माना | उन्होंने देखा कि चंपारन के गाँव सांस्कृतिक और सामाजिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। उनकी इच्छा हुई

कि वहाँ तत्काल कुछ करना चाहिए। उन्होंने अध्यापकों के लिए अपील की। छः गाँवों में प्राइमरी स्कूल खोले गए।

सफाई का हाल तो बहुत ही बुरा था | गांधीजी ने छः महीने तक सेवा करने के लिए एक डाक्टर तैयार किया। वहाँ सिर्फ तीन दवाइयाँ मिलती थीं। अंडी का तेल, कुनैन और गंधक का मरहम | जिसकी जीभ गंदी होती थी, उसे अंडी का तेल दिया जाता था। मलेरिया में कुनैन और अंडी का तेल तथा खुजली के लिए गंधक का मरहम और अंडी का तेल।

चंपारन में गांधीजी काफी दिन रहे। लेकिन उनकी निगाह दूर से ही बराबर आश्रम पर रही। वह डाक से निरंतर अपने आदेश भेजते थे और हिसाब मँगाते थे | एक बार उन्होंने आश्रमवासियों को लिखा कि पुराने पाखाने के गड्ढों को भर दें | नए खोदने का समय आ गया है, नहीं तो पुरानों में से बदबू आना शुर हो जायगी।

चंपारन की घटना ने गांधीजी के जीवन की धारा बदल दी। उन्होंने बतलाया -"जो कुछ मैंने किया, वह बहुत मामूली चीज थी। मैंने घोषणा कर दी कि मेरे ही देश में अंग्रेज लोग मुझ पर हुक्म नहीं चला सकते |"

चंपारन का मामला किसी प्रतिरोध के फलस्वरूप नहीं निकला | वह तो बहुत-से गरीब किसानों के कष्ट-निवारण के प्रयत्न में से उपजा | यह विशुद्ध गांधी-नमूना था | उनकी राजनीति व्यावहारिक और लाखों की दैनिक समस्याओं से जुड़ी हुई थी। वह किसी तत्त्व से नहीं बँधे थे। उनकी वफादारी जीवित प्राणियों के प्रति थी।

गांधीजी ने जो कुछ किया, उसके द्वारा नए स्वतंत्र भारतवासी का निर्माण किया, जो अपने पैरों पर खड़ा हो सके और इस प्रकार देश को आजाद कर सके।

चंपारन की लड़ाई के शुरू में गांधीजी के अनन्य अनुयायी एंड्रयूज फिजी जाने से पहले गांधीजी से मिलने वहाँ आए | गांधीजी के वकील मित्रों ने सोचा कि एंड्रयूज ठहरे रहें और उन्हें मदद दें, तो बड़ा अच्छा होगा। अगर गांधीजी अनुमति दे दें, तो वह रहने को तैयार थे। लेकिन गांधीजी ने इसका तीव्र विरोध किया। उन्होंने कहा-"आप सोचते हैं कि इस

असमान संघर्ष में अगर एक अंग्रेज हमारी तरफ हो तो हमें मदद मिलेगी। इससे आपके दिलों की कमजोरी मालूम होती है। पक्ष न्यायसंगत है और लड़ाई जीतने के लिए आपको अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिए। आपको एंड्रयूज का सहारा इसलिए नहीं लेना चाहिए कि वह एक अंग्रेज है |"

---

1. चंपारन के किसान अपनी जमीन के 3 / 20 हिस्से में नील की खेती करने के लिए कानूनन बाध्य थे। यह नील उन्हें निलहे गोरों की नील की कोठियों के लिए देना पड़ता था। यह प्रथा 'तीन कठिया' कहलाती थी।

5 / पहला उपवास

चंपारन के किसानों की दशा सुधारने के लिए गांधीजी कुछ दिन वहाँ और ठहरते, परंतु अहमदाबाद की कपड़ा-मिलों के मजदूरों में असंतोष फैलने के कारण उन्हें अहमदाबाद लौटना पड़ा | वहाँ की मिलों के मजदूरों को पैसा कम मिलता था और काम अधिक करना पड़ता था।

मजदूरों की समस्या का अध्ययन करने के बाद गांधीजी ने मिल-मालिकों से झगड़े का पंच-फैसला कराने को कहा। उन्होंने यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया।

तब गांधीजी ने मजदूरों को हड़ताल की सलाह दी । उन्होंने गांधीजी की सलाह मान ली | गांधीजी ने उसका संचालन किया।

गांधीजी ने मजदूरों से वचन ले लिया था कि जबतक मालिक उनकी माँग स्वीकार न कर लें या पंच-फैसले के लिए राजी न हो जाएँ, वे काम पर न जाएँ। प्रतिदिन वह साबरमती के किनारे वट-वृक्ष के नीचे मजदूरों से मिलते थे और हजारों आदमी उनका भाषण सुनने आते थे। वह उनसे शांति रखने और वचन-पालन की बात कहते थे। इस बीच गांधीजी मालिकों के संपर्क में रहे। क्या वह पंच-फैसले के लिए तैयार होंगे ? उन्होंने फिर इन्कार कर दिया।

हड़ताल खिंचती ही चली गई। मजदूर लोग ढीले पड़ने लगे। कुछ मिलों में हड़ताल-तोड़कर काम करने लगे थे। गांधीजी को भय था कि कहीं मार-पीट न हो जाय | उन्हें यह भी डर था कि प्रतिज्ञाओं के बावजूद मजदूर कहीं काम पर न चले जाएँ |

गांधीजी असमंजस में पड़ गए | एक दिन सवेरे ही वट के नीचे हड़तालियों की सभा में गांधीजी के मुँह से निकल गया-"जब तक फैसला न हो जाय, तब तक अगर मजदूर हड़ताल न चलाएँगे तो मैं उपवास करूँगा |"

गांधीजी का कोई इरादा न था कि उपवास की घोषणा करेंगे। बिना किसी सोच-विचार के ये शब्द अपने-आप मुँह पर आ गए। उनके श्रोताओं को जितना आश्चर्य हुआ, उतना ही उन्हें भी हुआ। बहुत-से तो चीख उठे।

"आपके साथ हम भी उपवास करेंगे।" कुछ मजदूरों ने कहा।

"नहीं," गांधीजी ने उत्तर दिया--"आप लोग सिर्फ हड़ताल किए जाएँ।"

धार्मिक या निजी कारणों से गांधीजी ने पहले भी उपवास किया था, लेकिन सार्वजनिक हित के लिए यह उनका पहला उपवास था।

गांधीजी ने देखा कि उनके उपवास ने उन्हें असमंजस में डाल दिया है। यह उपवास मजदूरों को अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रखने के उद्देश्य से किया गया था, परंतु इससे मिल-मालिकों पर दबाव पड़ा। गांधीजी ने उनसे कह भी दिया कि वे उनके उपवास से प्रभावित न हों। यह उनके विरुद्ध नहीं है। उन्होंने कहा कि मैं तो एक हड़ताली और हड़तालियों का प्रतिनिधि हूँ और यही मानकर मेरे साथ व्यवहार होना चाहिए। लेकिन उनके लिए तो वे महात्मा गांधी थे। उपवास शुरू होने के तीन दिन बाद मिल-मालिकों ने पंच-फैसले की बात मान ली और इक्कीस दिन की हड़ताल समाप्त हो गई। ।

गांधीजी ने सोचा कि उन्होंने उपवास हड़तालियों को दृढ़ रखने के लिए किया था। यदि हड़ताल असफल रहती, तो उससे इन तथा दूसरे मजदूरों में कमजोरी आती और गांधीजी कायरों को नापसंद करते थे। उनकी सहानुभूति गरीबों और पद-दलितों के साथ थी, जिन्हें वह गौरवशाली और शांतिपूर्ण प्रतिरोध की भावना जाग्रत करना चाहते थे। यदि मजदूरों ने पंच-फैसले की बात का विरोध किया होता तो वह उनके विरुद्ध उपवास कर डालते। गांधी-दर्शन में पंच-फैसले का सिद्धांत आवश्यक है, क्योंकि उससे हिंसा तथा दबाव दूर होते हैं, जो शांतिपूर्ण संघर्षों में भी पाए जा सकते हैं। इससे लोगों को धैर्य तथा समझौते की शिक्षा मिलती है | गांधीजी ने उपवास किसी व्यक्ति के लिए अथवा किसी के विरुद्ध नहीं किया था, बल्कि एक क्रियात्मक विचार के लिए किया था।

“निजी लाभ के लिए उपवास करना तो धमकी देने के समान है," गांधीजी ने कहा। स्पष्टत: इस उपवास से गांधीजी को निजी लाभ क्या होना था! मिल-मालिव इस बात को जानते थे। फिर भी वे शायद उससे डर गए । वे गांधीजी की मृत्यु का कारण नहीं बनना चाहते थे | यदि बंबई का गवर्नर उपवास कर रहा होता, तो वह कह देते-“मर जाने दो !” गांधीजी ने बाद में एक अवसर पर कहा-“जो मुझे प्रेम करते थे, उन्हें सुधारने के लिए मैंने यह उपवास किया था। आप किसी अत्याचारी के विरुद्ध उपवास नहीं कर सकते |" मिल-मालिक डर गए, क्योंकि गांधीजी के लिए उनके हृदय में अगाध स्नेह था और जब उन्होंने उनका निःस्वार्थ त्याग देखा, तो वे अपनी स्वार्थपरायणता पर लज्जित हो उठे। निजी स्वार्थ के लिए किए गए उपवास से ऐसी भावनाओं का उदय नहीं हो सकता था।

“मैं अपने पिता के दोष को दूर करने के लिए उनके विरुद्ध उपवास कर सकता हूँ,” गांधीजी ने समझाते हुए कहा-“लेकिन उनसे पैतृक संपत्ति लेने के लिए नहीं |”

वस्तुतः इस उपवास से पंच-फैसले की नींव पड़ी | जब मैं 1948 में अहमदाबाद गया, तो मुझे मालूम हुआ कि पूँजीपति और ट्रेड यूनियन, दोनों ही इस पद्धति की उपयोगिता को स्वीकार करते हैं।

6 / बकरी का दूध

खेडा के किसानों को लगान की छूट दिलवाने के लिए गांधीजी ने मार्च 1918 में वहाँ सत्याग्रह का संचालन किया। यह सविनय अवज्ञा-आंदोलन आंशिक रूप में सफल हुआ।

इसी साल जुलाई में गांधीजी खेड़ा जिले में युद्ध के लिए रंगरूटों को भरती करने गए | किसानों ने उन्हें अपनी बैलगाड़ियाँ किराए पर नहीं दीं और उनको तथा -उनके छोटे-से दल को भोजन तक देने से इन्कार कर दिया।

गांधीजी का यह प्रयत्न तो असफल रहा। हाँ, वह भयंकर रूप से बीमार पड़ने में जरूर सफल हो गए। वह कुटी हुई मूँगफलियों और नीबुओं पर गुजारा करते आ रहे थे। इस अधूरी खुराक और परिश्रम के कारण, और साथ ही असफलता की मायूसी के कारण, उन्हें पेचिश हो गई।

उन्होंने उपवास किया। दवा लेने से इन्कार कर दिया | इंजेक्शन लगवाने से भी इन्कार कर दिया।

उनके जीवन में यह पहली गंभीर बीमारी थी। उनका शरीर दुबला होता जा रहा था | शक्ति क्षीण होती जा रही थी, उन्होंने समझ लिया कि मृत्यु नजदीक आ गई है |

डाक्टरों ने दूध लेने की सलाह दी | गाय-भैंस के फूँका लगाकर दूध निकालने के निर्दय तरीके के कारण गांधीजी ने जीवन-भर दूध न लेने की प्रतिज्ञा कर ली थी। इसलिए उन्होंने दूध से भी इन्कार कर दिया।

कस्तूरबा जरा कठोरता के साथ बोल उठीं-"परंतु बकरी के दूध से तो आपको कोई ऐतराज नहीं हो सकता !"

गांधीजी जीना चाहते थे। उन्होंने स्वीकार किया है कि वह 'सेवा के मोह' को नहीं छोड़ सके|

बाद में गांधीजी ने लिखा था कि दूध लेना 'प्रतिज्ञा का भंग' था। यह बात उन्हें परेशान करती रही। यह कमजोरी जाहिर करनेवाली थी। फिर भी अपने अंतिम भोजन तक वह बकरी का दूध पीनेवाले बने रहे।

प्रतिज्ञा तोड़ने के लिए तैयार होने की कुंजी शायद कस्तूरबा के इसरार में थी | गांधीजी न मनुष्य से डरते थे, न सरकार से, न जेल से या गरीबी से, न मृत्यु से | परंतु वह अपनी पत्नी से जरूर डरते थे। ।

जी. रामचंद्रन् ने गांधीजी के जीवन की बहुत-सी घटनाएँ लिखी हैं, जिनकी सत्यता सी. राजगोपालाचार्य ने प्रमाणित की है। रामचंद्रन् साबरमती आश्रम में एक साल रहे थे। उन्होंने बतलाया है कि एक दिन जब दोपहर के भोजन के बाद रसोई घर की सफाई करके बा झपकी लेने के लिए पास के कमरे में चली गई थीं, तब गांधीजी रसोई-घर में आए और बा के सहकारी से बहुत धीमी आवाज में कहने लगे कि एक घंटे में कुछ मेहमान आनेवाले हैं, जिन्हें खाना खिलाना होगा। बा के कमरे की तरफ झाँककर उन्होंने ओठों के सामने अँगुली रखी और उस लड़के को जरूरी हिदायत देकर बोले-"बा को मत जगाना...उसे तभी बुलाना जब जरूरत हो। और ध्यान रखना कि वह नाराज न हो जाएँ। अगर वह मुझपर नहीं बिगड़ेगी तो तुम्हें इनाम दिया जायगा |"

रामचंद्रन ने लिखा है-"गांधीजी कुछ घबड़ा रहे थे कि कहीं बा एकाएक जाग न उठें और उनपर बरस न पड़ें।" इसलिए वह रसोईघर से चुपचाप खिसक गए | परंतु जब उनकी टक्कर से पीतल की एक थाली जमीन पर गिरकर झनझना उठी, तो रसोईघर के इस अपराध से, बिना पता लगे, बच निकलने की उनकी आशा चकनाचूर हो गई ! शाम को प्रार्थना के बाद बा दोनों हाथ बगल में दबाए उनके सामने आ खड़ी हुईं। उनका मिजाज बड़ा तेज था ।

"आपने मुझे जगाया क्यों नहीं?"

गांधीजी ने क्षमा माँगते हुए कहा-"बा, ऐसे मौकों पर मुझे तुमसे डर लगता है।"

बा अविश्वास के साथ हँस पड़ीं-"आप मुझसे डरते हैं?"

रामचंद्रन् ने विचार प्रकट किया है कि यह बात सच थी।

ब्रिटिश सेना के लिए रंगरूट भरती करने की उद्यतता गांधीजी की दूसरी कमजोरी थी। 1942 में मैंने इसके बारे में उनसे पूछा था। उन्होंने स्पष्ट किया- "मैं उसी समय दक्षिण अफ्रीका से लौटा था और तबतक यह नहीं जान पाया था कि मैं कहाँ खड़ा हूँ।" वह राष्ट्रीयता और शांतिवाद की असेतुबंध खाई के किनारे पर थे और समझ नहीं पा रहे थे कि क्या करें।

वह सरल मार्ग अपना सकते थे और युद्ध का समर्थन करने से इन्कार कर सकते थे। अधिकतर राष्ट्रवादियों ने ऐसा ही किया था | वे कहते थे कि भारत आजाद नहीं है, इसलिए हम नहीं लड़ेंगे। परंतु यह कोरा राष्ट्रवाद था, जो शांतिवाद के झीने घाघरे में छिपा हुआ था। इसका अर्थ यह था कि अगर भारत को स्वराज्य मिल गया होता तो हम फौज में भरती होकर शत्रु को मारते।

1918 में गांधीजी के सामने जो मुद्दा था, वह सार्वभौम और शाश्वत था | जब देश पर हमला हो, तो कोई नागरिक क्या करे? अपनी अंतरात्मा की संतुष्टि के लिए कोई शांतिवादी अपने शरीर को कष्ट देकर जेल चला जाय, या वह लामबंदी और अन्य सैनिक कार्रवाईयों का बहादुरी के साथ विरोध करे? लोगों को शिक्षित करने की दृष्टि से यह एक मूल्यवान प्रदर्शन हो सकता है | मगर मान लो कि सारा राष्ट्र उसके उदाहरण का अनुकरण करके लड़ने से इन्कार कर दे तो? (फर्ज कीजिए कि 1940 में अंग्रेजों ने लड़ने से इन्कार कर दिया होता तो?)

1918 में भारतीयों के लिए दो विकल्प संभव थे।

शत-प्रतिशत शांतिवादी युद्ध से अलग रहता और सदा के लिए भारत का औपनिवेशिक दर्जा पसंद करता, क्योंकि उपनिवेश रहते हुए भारत अपने को गुलाम बनानेवाले देश को

युद्धकालीन सहायता देने से इन्कार कर सकता था। इसके विपरीत यदि भारत राष्ट्र होता, तो उसे या तो युद्ध के लिए तैयार होना पड़ता या विनाश का सामना करना पड़ता।

गांधीजी यह रुख नहीं ले सकते थे, क्योंकि वह आजाद भारतीय राष्ट्र चाहते थे।

शत-प्रतिशत राष्ट्रवादी प्रथम महायुद्ध से यह कहकर अलग रहता कि यह ब्रिटेन का युद्ध है, परंतु भारत को स्वतंत्र कराने के लिए वह ब्रिटेन से युद्ध के लिए तैयार हो जाता।

गांधीजी यह रुख भी नहीं ले सकते थे, क्योंकि उन्हें अभी तक आशा थी कि भारत के भविष्य के बारे में ब्रिटेन से शांतिपूर्ण समझौता हो जायगा।

इसलिए 1918 में गांधीजी ने साम्राज्य को स्वीकार करके, और धीरे-धीरे शांतिपूर्ण उपायों से आजादी प्राप्त करने की आशा में, अपने राष्ट्रवाद को संकट में डाल दिया। ऐसा होने के बाद उनकी प्रेरणात्मक ईमानदारी ने उन्हें अपना शांतिवाद संकट में डालने तथा युद्ध के लिए रंगरूट भरती करने के लिए मजबूर कर दिया।

इस प्रकार राजनैतिक गांधी राष्ट्रवाद और शांतिवाद के ऐसे संघर्ष में फँस गया, जिसका मूलोच्छेद असंभव था | धार्मिक गांधी ने अहिंसा तथा विश्व-भ्रातृत्व का प्रचार करके और इन पर आचरण करके उसे हल करने का प्रयत्न किया।

इसी द्वैधता में गांधीजी के जीवन-नाटक की दुखांत घटनाएँ निहित थीं।

7 / गांधीजी राजनीति में

1914 में तिलक (मांडले जेल से) छूटकर आए और उन्होंने राजभक्ति का वचन दिया | गांधीजी जनवरी 1915 में लंदन होकर भारत लौटे और उन्होंने ब्रिटिश सेना के लिए रंगरूट भरती किए । परंतु निष्क्रियता और ईस्टर 1916 का आयरिश विद्रोह तिलक के प्रचंड स्वभाव को बर्दाश्त नहीं हुए और वह होमरूल के पक्ष में एक क्रोधभरे ब्रिटिश-विरोधी आंदोलन के लिए भड़क उठे | उनकी आंदोलनकारी साथिन श्रीमती एनी बेसेन्ट थीं, जो और कुछ नहीं तो वक्तृत्व और गाली-गलौज की भाषा में उनसे भी बड़ी-चढ़ी थीं। इनके जोरदार सहायकों में सर सी.पी. रामस्वामी ऐयर और मुहम्मद अली जिन्ना थे। |

भारत की धरती भीतर के ज्वालामुखी की आवाज से गड़गड़ा उठी | केवल राजनैतिक लोग ही नहीं, बल्कि सेना के सिपाही और किसान तक भी महसूस करने लगे कि ब्रिटेन की लड़ाई में वे जो खून बहा रहे थे, उसका मुआवजा मिलना चाहिए। अतः 20 अगस्त 1917 को भारत के राज्य-सचिव एडविन एस. मांटेग्यु ने लोक सभा में घोषणा की कि ब्रिटिश नीति यह दृष्टि में रखती है कि न केवल प्रशासन के हर विभाग में भारतीयों का उत्तरोत्तर अधिक संसर्ग हो, बल्कि स्वशासित संस्थाएँ भी प्रदान की जाएँ, ताकि ब्रिटिश साम्राज्य का अभिन्न अंग रहते हुए भारत को क्रमोन्नति से उत्तरदायी सरकार की प्राप्ति हो। इसे औपनिवेशिक दर्जे का वादा समझा गया।

तिलक का विचार था कि कभी-कभी राज्य के यंत्र में अधिकार के पद ग्रहण करना भी वांछनीय हो सकता है। एक बार उन्होंने गांधीजी को पचास हजार रुपए का चैक भेजकर शर्त लगाई कि अगर वह वाइसराय से यह वचन ले सकें कि फौज में भरती होनेवालों में से कुछ को अफसरों के पद दे दिए जाएँगे, तो वह ब्रिटिश सेना के लिए पाँच हजार मराठे भरती कर सकते हैं। गांधीजी ने चैक लौटा दिया | शर्त लगाना उन्हें पसंद नहीं था। वह तो यह महसूस करते थे कि अगर कोई आदमी कोई काम करता है तो इसलिए करता है कि उसमें उसका विश्वास है, इसलिए नहीं कि उससे कुछ मिल जायगा।

नवंबर 1918 में विजयपूर्वक युद्ध समाप्त हो गया। अशांति ने ज्यादा प्रतीक्षा नहीं की | वह 1919 के प्रारंभ में ही पैदा हो गई।

अगस्त 1918 में तिलक को दुबारा नजरबंद किया जा चुका था। श्रीमती बेसेन्ट भी गिरफ्तार थीं। शौकतअली और मुहम्मदअली को युद्ध के दौरान में ही बंदी बना दिया गया था। गुप्त अदालतें भारत के बहुत-से भागों में लोगों को सजाएँ दे रही थीं। युद्धकालीन सेन्सर प्रतिबंधों से अनेक अखबारों के मुँह बंद कर दिए गए थे |

इससे बहुत कटुता उत्पन्न हुई। परंतु युद्ध का अंत होने पर देश ने आशा की कि नागरिक स्वतंत्रता फिर स्थापित कर दी जायगी।

लेकिन इसके विपरीत सर सिडनी रौलट की अध्यक्षता में एक कमेटी ने 19 जुलाई को एक रिपोर्ट प्रकाशित की, जिसमें वस्तुत: युद्धकालीन सख्तियों को जारी रखने की सिफारिश की गई थी। रौलट के फैसलों की कांग्रेस दल ने बड़ी उग्रता से भर्त्सना की । लेकिन फिर भी सरकार ने इन सिफारिशों के अनुरूप एक विधेयक फरवरी 1919 में इंपीरियल लेजिस्लेटिव कौन्सिल में पेश कर दिया।

गांधीजी अभी पेचिश की बीमारी से उठे ही थे। यह मानकर कि विधेयक कानून बन जायगा, उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में अपने विजयपूर्ण प्रयत्न के नमूने की सविनय अवज्ञा की तैयारी शुरू कर दी। कमजोर होते हुए भी उन्होंने बहुत-से शहरों की यात्रा की और सरकार पर इस दमनकारी कानून को वापस लेने का दबाव डालने के इरादे से एक विशाल राष्ट्रव्यापी सत्याग्रह आंदोलन के लिए जमीन तैयार की।

18 मार्च 1919 को रौलट ऐक्ट कानून बन गया। सारे भारत में बिजली दौड़ गई | क्या यही औपनिवेशिक दर्जे की शुरुआत थी?

महात्मा गांधी, जो उन दिनों मद्रास में थे, दूसरे दिन राजगोपालाचारी से बोले-"रात को मुझे स्वप्न में विचार आया कि हमें हड़ताल के लिए देश का आह्वान करना चाहिए |"

हड़ताल का यह विचार सारे भारत में फैल गया। सत्याग्रह की भूमिका के रूप में यह हड़ताल दिल्ली में 30 मार्च को और बंबई तथा अन्य शहरों व गाँवों में 6 अप्रैल को मनाई गई।

परंतु दिल्ली में हड़ताल के कारण हिंसापूर्ण कार्यवाहियाँ हो गईं | पंजाब में दंगे-फिसाद हुए और गोलियाँ चलीं। नेताओं ने गांधीजी से तुरंत दिल्ली और पंजाब पहुँचने का अनुरोध किया। सरकार ने 9 अप्रैल को उन्हें पंजाब की सीमा पर रोक दिया और बंबई ले जाकर छोड़ दिया।

11 अप्रैल को बंबई में गांधीजी ने एक सभा में भाषण दिया और हिंसापूर्ण कृत्यों की निन्दा की।

बंबई से गांधीजी साबरमती आश्रम गए। वहाँ भी उन्होंने 14 अप्रैल को एक विशाल सभा में भाषण दिया। अहमदाबाद के लोगों ने भी हिंसापूर्ण कार्रवाइयाँ की थीं। इनके प्रायश्चित-स्वरूप गांधीजी ने बहत्तर घंटे के उपवास की घोषणा की।

साबरमती से गांधीजी सीधे नड़ियाद गए। वहाँ उन्हें पता लगा कि हिंसापूर्ण कार्रवाइयाँ छोटे-छोटे नगरों में भी फैल गई थीं। खिन्न होकर गांधीजी ने नड़ियाद-निवासियों से कहा कि सत्याग्रह का आंदोलन 'मेरी हिमालय जैसी भूल थी |' 18 अप्रैल को उन्होंने आंदोलन उठा लिया।

बहुत लोगों ने खिल्ली उड़ाई, उन्होंने ताने दिए कि महात्माजी ने 'हिमालय जैसी बड़ी गलती की ।' परंतु गांधीजी अपनी गलती कबूल करके कभी नहीं पछताए।

इस दौरान में पंजाब प्रांत खौल रहा था। वहाँ जो घटनाएँ घट रही थीं, उनका फल 13 अप्रैल 1919 को अमृतसर में प्रकट हुआ, जिसे सर वैलेंटाइन शिरोल ने ‘ब्रिटिश भारत के इतिहास में काला दिन' बतलाया | गांधीजी के लिए यह एक मोड़ था। भारतवासी इसे कभी नहीं भूले।

सरकार द्वारा नियुक्त जाँच कमीशन ने, जिसके अध्यक्ष लार्ड हंटर थे, पंजाब के दंगों की कई महीने तक छान-बीन करके अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की।

हंटर-रिपोर्ट में 13 अप्रैल के हत्याकांड का ब्यौरा दिया गया है। उसमें बताया गया है- "जनरल डायर ने एक बजे सुना कि लोग 4 बजे एक बहुत बड़ी सभा करनेवाले हैं | जब उससे पूछा गया कि उस सभा को रोकने के लिए कोई उपाय क्यों नहीं किया, तो उसने उत्तर दिया कि मैं जल्दी-से-जल्दी वहाँ पहुँचा | जलियाँवाला बाग में सभा हुई | डायर ने बिना सभा को भंग करने की सूचना दिए अपने फौजी दस्तों को गोली चलाने की आज्ञा दी | दस मिनट तक गोलियाँ चलती रहीं । ज्यों ही गोली चलना शुरू हुआ, भीड़ तितर-बितर होने लगी | कुल मिलकर 1650 बार फौजियों ने गोली चलाई | 1516 आदमी मारे गए।"

हंटर-कमीशन के आगे जिरह में डायर ने बताया कि उसके दिमाग में क्या बात थी और उसका क्या इरादा था :

प्रश्न--आप गोली चलाने की दिशा बार-बार बदलते गए और जिधर सबसे ज्यादा भीड़ थी उधर ही गोली चलवाई ?

उत्तर--जी हाँ।

प्रश्न--यदि द्वार बड़ा होता और उसमें से सशस्त्र मोटरें अंदर आ जातीं, तो आप मशीनगनें चलवाते ?

उत्तर-मैं सोचता हूँ, शायद जरूर चलवाता।

हंटर-रिपोर्ट में लिखा है-"हमारे सामने जब जाँच हुई, तो डायर ने बताया कि जब वह अपनी कार में आए, तो उनका इरादा पक्का हो गया था कि अगर उनकी आज्ञा का पालन न हुआ तो तत्काल गोली चलवा देंगे |-'मेरा पक्का इरादा था कि सारे आदमियों को मौत के घाट उतार दूँगा' |"

हंटर-कमीशन का निर्णय था-"यह दुर्भाग्य की बात है कि डायर ने अपने कर्तव्य की गलत कल्पना की | हमें लगता है कि इतनी देर तक गोलियाँ चलवाकर जनरल डायर ने बड़ी भारी भूल की |"

भारत के राज्य-सचिव एडविन एस. मांटेग्यू ने वाइसराय लार्ड चेम्सफोर्ड को 26 मई 1920 के एक सरकारी खरीते में लिखा था-"जलियाँवाला में ब्रिगेडियर जनरल डायर ने जिस सिद्धांत को अपनी कार्रवाई का आधार बनाया, उसे सम्राट की सरकार जोरदार शब्दों में अस्वीकार करती है।"

डायर को सेना से त्याग-पत्र देने को कहा गया | अपने जीवन के अंतिम दिनों में उसने वायुयानों की टोह लगानेवाले 'रेंज फाइंडर' का आविष्कार किया | 23 जुलाई 1927 को ब्रिस्टल में उसकी मृत्यु हुई।

जलियाँवाला बाग ने भारत के राजनैतिक जीवन में हलचल पैदा कर दी और गांधीजी को राजनीति में खींच लिया।

जिस रास्ते से गांधीजी भारतीय राजनैतिक जगत् के केन्द्र में पहुँचे, वह बड़ा टेढ़ा-मेढ़ा था | इसका प्रारंभ जलियाँवाला बाग से हुआ। हत्याकांड के बाद गांधीजी ने पंजाब जाने की अनुमति माँगी। उन्हें दुत्कार दिया गया। वह अपनी माँग पर आग्रह करते रहे। अंत में वाइसराय ने उन्हें तार दिया कि वह 17 अक्तूबर 1919 बाद वहाँ जा सकते हैं।

पंजाब में गांधीजी ने मोतीलाल नेहरू आदि भारतीय नेताओं को जलियाँवाला बाग हत्याकांड की स्वतंत्र जाँच करने में सहायता दी | रिपोर्ट का मसविदा गांधीजी ने ही तैयार किया।

नवंबर 1919 में गांधीजी को दिल्ली में होनेवाली मुस्लिम कानफ्रेन्स का निमंत्रण मेला | यह सभा खिलाफत के लिए बुलाई गई थी। इसमें अनेक हिन्दू भी उपस्थित थे | यह समय हिन्दू मुस्लिम राजनैतिक मैत्री की सुहागरात था।

कानफ्रेन्स में तर्क-वितर्क हुआ कि क्या किया जाय | तुर्की के प्रति अंग्रेजों की निष्ठुरता की निन्दा के प्रस्ताव काफी नहीं थे। ब्रिटिश कपड़े के बहिष्कार का सुझाव रखा गया।

गांधीजी मंच पर बैठे हुए अपने दिमाग में सोच रहे थे कि आगे की कार्रवाई का नक्शा क्या हो। वह एक कार्यक्रम की तलाश में थे और फिर ऐसे शब्द की तलाश में थे, जो नारा भी बन जाय और उस कार्यक्रम का समूचा निचोड़ भी व्यक्त कर दे | अंत में उन्हें यह चीज मिल गई और जब वह बोलने को खड़े हुए तो उन्होंने कहा--असहयोग !"

यह 'असहयोग' भारत तथा गांधीजी के जीवन में एक नए युग का द्योतक बन गया |

1919 के अंतिम सप्ताह में अमृतसर में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ। सरकार ने यह अधिवेशन जलियाँवाला बाग के नजदीक होने दिया और इस अवसर पर अली-बंधुओं को छोड़ दिया | इन बातों ने गांधीजी के सहज आशावाद को बल दिया |

चाहे जान-बूझकर हुआ हो या संयोग से, इस अधिवेशन से एक दिन पहले सम्राट ने मांटेग्यू-सुधारों की घोषणा की, जिनके बारे में काफी प्रचार किया जा चुका था | यह घोषणा सबके लिए असंतोषजनक थी, फिर भी गांधीजी इसे स्वीकार करने के पक्ष में थे।

यह मांटेग्यू-सुधार-योजना 9 फरवरी 1921 को 'सन् 1919 के गवर्नमेण्ट ऑफ ऐक्ट' के रूप में भारत का नया संविधान बना दी गई।

तिलक इन सुधारों को इस दृष्टि से स्वीकार करने के पक्ष में थे कि इन्हें अपर्याप्त सिद्ध कर दिया जाय। ।

गांधीजी इस दृष्टिकोण को ठीक नहीं मानते थे। प्रतिनिधिगण गांधीजी के समर्थक थे | परंतु गांधीजी तिलक को मात नहीं देना चाहते थे। नाटकीय ढंग से गांधीजी ने तिलक की ओर मुँह किया। गांधीजी सफेद खद्दर की टोपी पहने हुए थे, जो बाद में 'गांधी-टोपी' के नाम से विख्यात हुई | उन्होंने अपनी टोपी तिलक के पाँवों में डाल दी और समझौता स्वीकार करने के लिए अनुनय की। तिलक पिघल गए |

अमृतसर-अधिवेशन गांधीजी की सतर्कता की केवल अस्थायी सफलता थी | देश का रुख स्पष्ट रूप से असहयोग की ओर था | घटनाएँ तेजी से चल रही थीं | अप्रैल 1920 में गांधीजी होमरूल लीग के अध्यक्ष चुने गए। 30 जून को गांधीजी के मार्ग-दर्शन में खिलाफत-आंदोलन ने असहयोग की नीति स्वीकार की। गांधीजी ने वाइसराय को पत्र लिखा | वाइसराय ने जवाब दिया कि असहयोग "सब मूर्खतापूर्ण योजनाओं में सर्वाधिक मूर्खतापूर्ण है।" परंतु चेम्सफोर्ड की सारी शक्ति उसे रोकने में असफल रही । गांधीजी ने घोषणा की कि 1 अगस्त 1920 को असहयोग प्रारंभ होगा और उससे पहले 31 जुलाई को उपवास और प्रार्थना का दिन होगा | उसी दिन, यानी 1 अगस्त को तिलक की मृत्यु हो गई।

तिलक के बाद गांधीजी कांग्रेस के निर्विवाद नेता बन गए।

सितंबर 1921 में गांधीजी ने खादी और सादगी के प्रति अपने आग्रह को बल देने के लिए टोपी, जाकेट, नीची धोती या ढीला पाजामा सदा को त्याग दिए और लंगोटी धारण कर ली।

सरकार ने राजनैतिक नेताओं और उनके अनुगामियों की गिरफ्तारियाँ शुरू कर दीं । चित्तरंजनदास, मोतीलाल नेहरू, लाजपतराय आदि सैकड़ों प्रमुख कांग्रेसजन गिरफ्तार कर लिए गए । दिसंबर 1921 में, जब अहमदाबाद में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ, तो उस समय तक बीस हजार भारतवासी सविनय-अवज्ञा तथा राजद्रोह के अपराध में जेल भेजे जा चुके थे।

दिसंबर 1921 और जनवरी 1922 के बीच दस हजार भारतवासी और भी जेलों में डाल दिए गए | कई प्रांतों में किसानों ने अपने-आप कर-बंदी के आंदोल शुरू कर दिए। सरकारी नौकरों ने नौकरियाँ छोड़ दीं।

2 अप्रैल 1921 को नए वाइसराय लार्ड रीडिंग भारत आ पहुँचे। सेना और पुलिस पर इन्हें पूरा अधिकार प्राप्त था। कांग्रेस ने गांधीजी को अपना डिक्टेटर बना दिया था| महात्मा के मुख से निकला हुआ एक भी शब्द ऐसा जबरदस्त बवंडर पैदा कर सकता था कि जिसकी तुलना में 1857 का गदर एक छोटी-सी घटना दिखाई देता।

दिल्ली में अपना पद संभालने के कुछ ही दिन बाद लार्ड रीडिंग ने गांधीजी से बातचीत करने की इच्छा प्रकट की।

गांधीजी ने निमंत्रण स्वीकार कर लिया। बहुत-से भारतवासियों ने इस पर ऐतराज किया |

लार्ड रीडिंग की गांधीजी से मिलने की उत्सुकता बहुत हद तक पूरी हो गई। मई के अंत में लार्ड रीडिंग ने अपने पुत्र को एक पत्र में लिखा कि गांधीजी की उनसे छ: मुलाकातें हुईं : "पहली साढ़े चार घंटे की, दूसरी तीन घंटे की, तीसरी डेढ़ घंटे की, चौथी भी डेढ़ घंटे की, पॉचवीं डेढ़ घंटे की और छठी पौन घंटे की।"

तेरह घंटों की बातचीत के बाद रीडिंग का गांधीजी के बारे में क्या विचार था? उन्होंने अपने पुत्र को लिखा था-"उनकी शक्ल-सूरत में कोई अनोखी बात नहीं है ।...परंतु जब वह बात करते हैं, तो दूसरी तरह की छाप पड़ती है। वह स्पष्टवादी हैं और बहुत बढ़िया अंग्रेजी में अपने विचार व्यक्त करते हैं | जो शब्द वह बोलते हैं, उनके महत्त्व को बड़ी बारीकी से समझते हैं। उनमें कोई झिझक नहीं है और जब वह कुछ राजनैतिक प्रश्नों पर चर्चा करते हैं, उस समय को छोड़कर जो कुछ वह बोलते हैं, उसमें निष्कपटता की ध्वनि होती है।..."

यदि लार्ड रीडिंग गांधीजी की राजनीति को नहीं समझ पाए, तो इसमें आश्चर्य की बात नहीं है। 4 नवंबर 1921 को दिल्ली में कांग्रेस महासमिति ने अहिंसात्मक सविनय अवज्ञा के पक्ष में प्रस्ताव पास कर दिया, परंतु गांधीजी ने सारे नेताओं से वचन ले लिया कि उनकी सहमति के बिना आगे कदम नहीं उठाएँगे।

गांधीजी एक क्षेत्र में सामूहिक सविनय अवज्ञा का प्रयोग करना चाहते थे और इसके लिए उन्होंने वारडोली को चुना, जहाँ वह खुद अपनी देख-रेख में प्रयोग सकें। 1 फरवरी 1922 को गांधीजी ने वाइसराय को अपने इस इरादे की सुचना दे दी।

परंतु 5 फरवरी को चौरीचौरा में कुछ दूसरी ही बात हो गई | इस छोटे-से नगर में भीड़ ने पुलिस के सिपाहियों की हत्या कर दी |

8 फरवरी को बारडोली में गांधीजी के पास जब इस समाचार की खबर पहुँची, तो वह बीमार और उदास हो गए। यह बुरा शकुन था।

अतः गांधीजी ने बारडोली-आंदोलन स्थगित कर दिया और भारत में हर जगह सरकार विरोधी आंदोलन स्थगित कर दिया।

बंबई और मद्रास के गर्वनरों से परामर्श करने के बाद लार्ड रीडिंग ने 1 मार्च को गांधीजी की गिरफ्तारी का हुक्म दे दिया और शुक्रवार, 10 मार्च 1922 को रात साढ़े दस बजे उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया ।

गिरफ्तारी के दूसरे दिन बाद कच्ची पेशी में गांधीजी ने अपनी आयु तिरपन साल की बतलाई | धंधा बुनकर और किसान बतलाया और अपराध स्वीकार किया । उन पर यंग इंडिया में तीन राजद्रोहात्मक लेख लिखने का अभियोग लगाया गया था | पत्र के मुद्रक शंकरलाल बैंकर पर भी गांधीजी के साथ ही मुकदमा चलाया गया।

यह ऐतिहासिक मुकदमा अहमदाबाद के सरकारी सर्किट हाउस में डिस्ट्रिक्ट व सेशन्स जज मि. ब्रूम फील्ड की अदालत में, 18 मार्च 1922 को पेश हुआ | बंबई के एडवोकेट-जनरल सर जे. टी. स्ट्रैंगमेन ने सरकार की ओर से अभियोग पेश किया | गांधीजी और बैंकर ने कोई वकील नहीं किया | अदालत भवन और आस-पास की सड़कों पर सेना के दस्तों का जबरदस्त पहरा था। अदालत के छोटे-से कमरे में भारी भीड़ थी ।

जब अभियोग सुना दिया गया और एडवोकेट-जनरल ने गांधीजी के विरुद्ध मुकदमा पेश कर दिया, तो जज ने महात्माजी से पूछा कि वह कोई बयान देना चाहते हैं या नहीं | गांधीजी के पास लिखित बयान तैयार था।

गांधीजी ने अपना तैयार किया हुआ बयान पढ़ा, जिसमें उन्होंने बतलाया कि “क्यों मैं एक कट्टर राजभकत और सहयोगी से एक अटल राजद्रोही और असहयोगी बन गया।”

अंत में गांधीजी ने कहा कि उन्हें 'कठोर-से-कठोर सजा' दी जाय।

गांधीजी के बैठने पर मि. ब्रूमफील्ड ने उन्हें नमस्कार किया और सजा सुनाई | जज ने कहा-"न्यायोचित सजा का निश्चय करना शायद एक ऐसा कठिन सवाल है जिसका इस देश के किसी भी जज को सामना करना पड़ता है। कानून व्यक्तियों की परवाह नहीं करता । फिर भी इस बात से इन्कार करना असंभव है कि जितने व्यक्तियों के मुकदमे मुझे अब तक करने पड़े हैं या संभवतया करने पड़ेंगे, उन सबसे आपका दर्जा अलग है। इस तथ्य से भी इन्कार करना असंभव है कि अपने करोड़ों देशवासियों की निगाह में आप एक महान देशभक्त और महान नेता हैं। जो लोग राजनीति में आपसे मतभेद रखते हैं, वे भी आपके जीवन को उच्च आदर्शोंवाला तथा सच्चरित्र और ऋषितुल्य मानते हैं।"

इसके बाद जज ने घोषणा की कि गांधीजी को छः साल की कैद भुगतनी पड़ेगी और साथ ही कहा कि यदि सरकार बाद में इस सजा को घटाना उचित समझे तो "मुझसे अधिक कोई भी प्रसन्न नहीं होगा।"

अदालत के उठने पर बहुत-से दर्शक गांधीजी के चरणों में झुक गए। बहुत-से रोने लगे। गांधीजी को जेल ले जाया गया तो उनके चेहरे पर मधुर मुसकान थी |

स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए राष्ट्र को जागृत करने के निमित्त जेल जाना आवश्यक था।

ब्रिटिश सरकार ने गांधीजी को कई बार जेल भेजकर उनकी यह बात मान ली, परंतु उन पर मुकदमा चलाने का यह अंतिम ही मौका था।

8 / ऑपरेशन और उपवास

20 मार्च 1922 को गांधीजी जिस यरवदा सेन्ट्रल जेल में रखे गए थे, वहाँ से 12 जनवरी 1924 को उन्हें शीघ्रता के साथ पूना के सैसून अस्पताल ले जाया गया। उन्हें आंत्र-शोथ (अपेंडिसाइटिस) की तीक्ष्ण पीड़ा उठ खड़ी हुई थी | सरकार बंबई से भारतीय डाक्टरों के आने तक ठहरने को तैयार थी, परंतु आधी रात से कुछ देर पहले अंग्रेज सर्जन कर्नल मैडक ने गांधीजी को सूचना दी कि उन्हें तुरंत ऑपरेशन करना पड़ेगा | गांधीजी राजी हो गए।

जिस समय ऑपरेशन की तैयारी हो रही थी, गांधीजी के कहने पर भारत-सेवक-समिति के अध्यक्ष श्री श्रीनिवास शास्त्री और महात्माजी के मित्र डा० पाठक को बुलाया गया। इन दोनों ने मिलकर एक सार्वजनिक वक्तव्य तैयार किया, जिसमें कहा गया कि गांधीजी ऑपरेशन के लिए राजी हो गए हैं, डाक्टरों ने उनकी अच्छी

तरह चिकित्सा की है और चाहे जो हो, सरकार-विरोधी हलचल नहीं होनी चाहिए। अस्पताल के अधिकारी और गांधीजी जानते थे कि अगर ऑपरेशन सफल नहीं हुआ, तो भारत-भर में आग भड़क उठेगी।

जब वक्तव्य तैयार हो गया तो गांधीजी ने अपने घुटने सिकोड़कर उस पर हस्ताक्षर किए । "देखते हो, मेरा हाथ कैसा काँपता है?" कर्नल मैडक से हँसते हुए उन्होंने कहा-"इसे तुम्हें ठीक करना होगा।"

सर्जन ने उत्तर दिया-"ओह, हम लोग इसमें टनों ताकत भर देंगे।"

गांधीजी को क्लोरोफार्म सुंघाया गया और एक फोटो खींचा गया। ऑपरेशन के बीच में तूफान ने बिजली की रोशनी काट दी। इसके बाद नर्स जो टार्च दिखा रही थी, बुझ गई और ऑपरेशन लालटेन की रोशनी में पूरा किया गया।

ऑपरेशन तो सफल हो गया, परंतु चीरे की जगह मवाद पड़ गया और गांधीजी को अच्छे होने में देर लगी। इस परिस्थिति में सरकार ने अक्लमंदी से या उदारता से 5 फरवरी को गांधीजी को छोड़ दिया।

गांधीजी ने एक बार मिस स्लेड (भीरा बहन) को लिखा था-"अपने शल्यक्रिया-संबंधी आविष्कारों तथा इस दिशा में सर्वतोमुखी प्रगति के लिए मैं पश्चिम का सदा प्रशंसक रहा हूँ।"

फिर भी डाक्टरों के प्रति अपने तास्सुब को गांधीजी पूरी तरह कभी भी नहीं दूर कर सके | एक बार उन्होंने पेनिसिलीन का इंजेक्शन लगवाने से साफ इन्कार कर दिया।

डाक्टर ने कहा-"अगर मैं आपके पेनिसिलीन का इंजेक्शन लगा दूँ, तो आप तीन दिन में अच्छे हो जाएँगे, वरना तीन हफ्ते लगेंगे।"

गांधीजी ने जवाब दिया-"रहने दीजिए, मुझे कोई जल्दी नहीं है।"

डाक्टर ने बतलाया-"आपसे दूसरों को छूत लग सकती है।"

गांधीजी ने सलाह दी-"तो फिर उन्हें पेनिसिलीन दे दीजिए |"

यही डाक्टर एक बार गांधीजी से यह कहने की असावधानी कर बैठे कि अगर सारे मरीज सिर्फ चारपाई पर आराम करने लगें, तो अच्छे हो जायँ।

गांधीजी ने चेतावनी दी-"यह बात कोई सुन न ले, वरना आप अपने तमाम मरीजों से हाथ धो बैठेंगे !"

जेल से रिहा होने पर गांधीजी स्वास्थ्य-लाभ के लिए जुहू चले गए और वहाँ शांतिकुमार मुरारजी के बंगले में रहे। यहाँ चित्तरंजनदास तथा मोतीलाल नेहरु उनसे उस स्थिति पर चर्चा करने आए, जो गांधीजी की जेल-यात्रा के बाईस महीनों में पैदा हो गई थी। |

पहली बात तो यह हुई कि हिन्दू-मुस्लिम मैत्री की जिस चट्टान पर गांधीजी एक संयुक्त, स्वतंत्र भारत की इमारत खड़ी करना चाहते थे, वह दोनों जातियों के आपसी वैर-भाव के

भयंकर ज्वार में डूब गई थी | खिलाफत आंदोलन मर चूका था | इसे ब्रिटेन ने नहीं मारा था, बल्कि इसको मारनेवाला था कमालपाशा (अतातुर्क) | कमाल ने अपने अधिकांश भारतीय सहधर्मियों से अधिक बुद्धिमत्ता दिखाकर एक धर्म-निरपेक्ष प्रजातंत्र स्थापित कर दिया, अरबी लिपि की जगह लातीनी लिपि चला दी, फेज टोपी[1] और दूसरे सरजेबों पर पाबंदी लगा दी और खलीफा को गद्दी से उतारकर नवंबर 1922 में उसे एक अंग्रेजी फौजी जहाज में माल्टा भाग जाने दिया |

दूसरी बात यह हुई कि असहयोग आंदोलन ठंडा पड़ गया। मोतीलाल नेहरु, चित्तरंजनदास और उनके बहुत-से साथी म्युनिसिपल, प्रांतीय और राष्ट्रीय विधान मंडलों में वापस जाने के पक्ष में हो गए।

अपने कार्यक्रम को पूरा करने के लिए दास और नेहरू (मोतीलाल) ने 1922 के अंत में 'स्वराज्य पार्टी' की स्थापना की, जिसका तात्कालिक लक्ष्य था साम्राज्य के भीतर औपनिवेशिक साम्राज्य की प्राप्ति।

गांधीजी अभी तक असहयोगी थे, अभी तक सविनय अवज्ञा के हामी और इस सरकार में अविश्वास करनेवाले थे। इसलिए वह अदालतों, स्कूलों, सरकारी पदों और उपाधियों के बहिष्कार पर जोर देते थे। इस बहिष्कार में जबरदस्त व्यक्तिगत त्याग की आवश्यकता थी, जिसे बहुत कम लोग सह सकते थे। दूसरी ओर स्वराज्य पार्टी की नीति आकर्षक थी | इसलिए गांधीजी कुछ वर्षों के लिए राजनीति से अलग हट गए।

राजनीति से अलहदगी के इस समय में गांधीजी का उद्देश्य था भारतवासियों में मानव-भ्रातृत्व की भावना का पोषण करना। चारों ओर निगाह डालने पर उन्हें यह स्पष्ट हो गया कि देश के सामने तुरंत हल करने का प्रश्न हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न है | इसलिए 18 सितंबर 1924 को गांधीजी ने हिन्दू-मुस्लिम एकता के निमित्त इक्कीस दिन का उपवास शुरू कर दिया।

लगातार हिन्दू-मुस्लिम दंगों के समाचारों का सिलसिला और लड़ाई-झगड़ों, वैमनस्य तथा निराशा का वातावरण गांधीजी के शरीर और मन पर बोझ डाल रहे थे | वह जानते थे कि इक्कीस दिन का उपवास घातक हो सकता है। वह मरना नहीं चाहते थे। अभी तक बहुत-से काम अधूरे पड़े थे। वह जीवन में आनंद अनुभव करते थे। आत्महत्या उन्हें धार्मिक और शारीरिक दृष्टि से अरुचिकर थी। उपवास मृत्यु के साथ अभिसार नहीं था । यातना उनके लिए आनंददायक नहीं थी। उपवास सर्वोच्च हित-सार्वभौम मानव-भ्रातृत्व-के प्रति कर्तव्य की प्रेरणा थी।

गांधीजी की नजर हमेशा लक्ष्य पर रहती थी और जब उन्हें लक्ष्य दिखाई नहीं पड़ता था, तो वह अपनी नजर उस स्थान पर रखते थे, जहाँ उन्हें लक्ष्य प्रकट होता हुआ मालूम पड़ता था। वह नाटकीय ढंग का महत्त्व भी समझते थे। इसलिए उन्होंने अपना उपवास मौलाना मुहम्मदअली के घर में आरंभ किया।

यह उपवास नेकी का एक जोखिम-भरा प्रयोग था | इसमें एक व्यक्ति के जीवन की बाजी थी और दाँव था राष्ट्र की आजादी | अगर भारतवासी भाइयों की तरह एक हो जाएँ, तो कोई भी विदेशी अधिक समय तक उन पर प्रभुत्व नहीं रख सकता।

उपवास के दूसरे दिन गांधीजी ने यंग इंडिया के लिए एक पृष्ठ का लेख विविधता में एकता पर लिखा।

बीसवें दिन उन्होंने एक प्रार्थना लिखाई :

"मैं शांति की दुनिया में लड़ाई-झगड़े की दुनिया में प्रवेश करनेवाला हूँ। जितना ही अधिक मैं इस पर विचार करता हूँ, उतना ही अधिक असहाय महसूस करता हूँ।...मैं जानता हूँ कि मैं कुछ नहीं कर सकता। ईश्वर सब कुछ कर सकता है। हे भगवान्! मुझे अपना निमित्त बना और अपनी इच्छा के अनुसार मेरा उपयोग कर। आदमी की क्या बिसात है! नेपोलियन ने इतने हाथ-पैर फैलाए और अंत में सेन्ट हेलना के कारावास में बंदी हुआ। शक्तिशाली

कैसर ने यूरोप पर राज्य करना चाहा और मामूली आदमी रह गया | भगवान् की ऐसी ही मरजी थी | इन दृष्टांतों पर हम विचार करें और विनम्र बनें।"

ऐंड्यूज ने लिखा है-"इक्कीसवें दिन सुबह चार बजे से पहले हमको प्रातःकालीन प्रार्थना के लिए बुलाया गया | चंद्रमा नहीं था और रात बहुत अँधेरी थी। पूर्व से ठंडी बयार चल रही थी। बापू गहरे रंग का गरम दुशाला ओढ़े हुए थे। मैंने पूछा-"अच्छी नींद आई ?" उन्होंने जवाब दिया-'हाँ बहुत अच्छी ।' तुरंत ही यह देखकर हर्ष हुआ कि उनकी आवाज कल सुबह से कमजोर होने के बजाय दृढ़ थी।

"करीब दस बजे," एंड्रय्ज लिखते हैं-"महात्माजी ने मुझे बुलाया और कहा, 'क्या तुम्हें मेरे प्रिय ईसाई भजन के शब्द याद हैं ?'

"मैंने कहा-'हाँ याद हैं। क्या अभी आपको गाकर सुनाऊँ ?'

"उन्होंने जवाब दिया-'अभी नहीं। परंतु मेरा विचार है कि जब मैं अपना उपवास तोडूँ, तब हम धार्मिक एकता व्यक्त करनेवाली छोटी-सी रस्म अदा करें | मैं चाहता हूँ कि इमामसाहब कुरान का सूरे-फतिहा पढ़ें। फिर मैं चाहता हूँ कि आप ईसाई भजन गाएँ |... और अंत में मैं चाहता हूँ कि विनोबा उपनिषद् का पाठ करें और बालकृष्ण वैष्णव-जन का भजन गाएँ।"

आखिर दोपहर का समय आ पहुँचा, जबकि उपवास समाप्त होनेवाल था | डाक्टर लोग गांधीजी के कमरे में गए | अली-बंधु, मौलाना अबुल कलाम आजाद, मोतीलाल नेहरू, चित्तरंजनदास और बहुत-से दूसरे लोग बिस्तर के पास जमीन पर बैठे थे। उपवास तोड़ने से पहले गांधीजी बोले और उन्होंने सबसे अनुरोध किया कि एकता की खातिर जरूरत पड़े, तो अपनी जान भी निछावर कर दें। मुस्लिम नेताओं ने अपना वचन दोहराया । फिर भजन गाए गए | डा० अंसारी नारंगी का रस लाए और गांधीजी ने उसे पी लिया। इस प्रकार उपवास समाप्त हुआ।

---

1. फुंदनेदार लाल तुर्की टोपी।

9 / धन और गहने

1924 के उत्तरार्ध में संसार में युद्धोत्तर सामान्य स्थिति और शांति उत्पन्न होती जा रही थी।

भारत भी आराम कर रहा था और फूट तथा निष्क्रियता के मजे ले रहा था | युद्ध-विराम और अमृतसर के बाद के समय का जोश ठंडा पड़ गया था। विश्वास और संघर्ष की भावना का स्थान शंका और निराशा ने ले लिया था। शायद गांधीजी की अहिंसा ने उग्र राष्ट्रीयता का उत्साह मंद कर दिया था। उनका इक्कीस दिन का उपवांस असफल हो गया था। इसने बहुतों को प्रभावित किया था और कुछ लोगों का रुख भी बदल दिया था, परंतु हिन्दू-मुस्लिम तनाव वैसा का-वैसा बना हुआ था।

गांधीजी इस समय को ब्रिटेन से लड़ने के लिए उपयुक्त नहीं समझते थे | यह समय घर के किले की मरम्मत करने का था। उनका कार्यक्रम था—आनेवाले राजनैतिक अवसरों के लिए नैतिक तैयारी, ठोस रूप में हिन्दू-मुस्लिम एकता, अस्पृश्यता निवारण और खादी का प्रचार। |

बुद्धिजीवी लोग अभी तक उनकी बातों के कायल नहीं हुए थे। गांधीजी का कहना था कि शिक्षित भारतवासी दलों में विभक्त होते जा रहे हैं। "उनका तरीका मेरा तरीका नहीं है।" उन्होंने चेतावनी दी कि अगर वे उनकी खादी-नीति का समर्थन नहीं करेंगे, तो "शिक्षित भारत उस एकमात्र प्रत्यक्ष तथा वास्तविक बंधन से कटकर अलग हो जायगा, जो उसे जनता के साथ बाँधे हुए है।"

शिक्षित वर्ग को कायल करने में असमर्थ होने पर गांधीजी ने कहा था –"मैं शिक्षित भारतवासियों द्वारा कांग्रेस की तरक्की और रहनुमाई के रास्ते में रोड़ा नहीं बनना चाहता और मैं पसंद करूँगा कि मेरे जैसे आदमी की अपेक्षा, जिसने अपना भाग्य पूरी तरह जनता के साथ जोड़ दिया है और जिसका शिक्षित भारत के सामूहिक मानस के साथ मौलिक मतभेद है, वे लोग ही यह काम करते रहें ।"

एक अमरीकी पादरी ने एक बार गांधीजी से पूछा कि उन्हें सबसे ज्यादा परेशान करनेवाली क्या चीज है ? उन्होंने जवाब दिया-"शिक्षित वर्ग के हृदय की कठोरता |"

वह काबुल करते थे कि वह बुद्धिजीवी लोगों पर फिर भी असर डालना चाहते थे, "परंतु कांग्रेस का नेतृत्व करके नहीं, बल्कि उनके हृदयों में धीरे-धीरे प्रवेश करके |" कांग्रेस के राजनैतिक नेतृत्व में खींचे जाने पर उन्हें खेद था। अब वह उससे हट रहे थे।

1924 में जेल से छूटने के बाद जब उन्होंने अपना यह इरादा जाहिर किया, तो भारत का वायुमंडल विरोध की ऊँची आवाजों से भर गया। इसके उत्तर में उन्होंने कहा-"मैं पसंद नहीं करता, न कभी मैंने पसंद किया है कि हर बात के लिए मुझ पर निर्भर रहा जाय। राष्ट्रीय काम-काज को चलाने का यह बिलकुल निकृष्ट तरीका है। कांग्रेस एक आदमी का तमाशा नहीं बननी चाहिए, जैसाकि उसके बन जाने का खतरा है, चाहे वह एक आदमी कितना ही भला और महान क्यों न हो।"

इसके बावजूद उन्हें 1925 के कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता के लिए राजी कर लिया गया | उनके मित्रों ने दलील दी कि उनकी अलहदगी से कांग्रेस के दो टुकड़े हो जाएँगे- एक ओर उनके रचनात्मक कार्यक्रम को माननेवाले, दूसरी ओर स्वराज्य पार्टी, जो कौन्सिलों में राजनैतिक कार्य की हामी थी। उन्होंने इसकी कीमत वसूल की, कांग्रेस के सदस्यों के लिए खादी पहनने की कड़ी शर्त लगाकर।

किसी ने कहा कि राजनीति से हट जाने पर उन्हें अपना नैतिक प्रभुत्व खोना पड़ेगा। इसका बिलकुल स्पष्ट प्रत्युत्तर था-"नैतिक प्रभुत्व उससे चिपके रहने के प्रयत्न से कभी नहीं बना रह सकता | वह तो बिना चाहे आता है और बिना प्रयत्न के बना रहता है।"

सच तो यह है कि उनका नैतिक प्रभुत्व बढ़ता जा रहा था, बिना इसका लिहाज किए कि वह क्या करते थे और क्या नहीं करते थे। भारत की धरती और भारतीय मनोवृत्ति उसका पोषण करती थी | 1925 के सारे वर्ष उन्होंने भारत के एक सिरे से दूसरे सिरे तक यात्रा की |

जहाँ-कहीं वह जाते, भीड़-की-भीड़ उन्हें घेर लेती | उन्हें देवता मानना शुरू हो गया था | एक स्थान पर उन्हें बतलाया गया कि सारी गोंड जाति उनकी पूजा करने लगी थी |

बहुत लोग उन्हें बुद्ध और कृष्ण की तरह अवतार मानने लगे। दूर-दूर से लोग उनके दर्शनों के लिए आने लगे।

ढाका में सत्तर वर्ष का एक बूढ़ा उनके सामने लाया गया। वह गांधीजी की तसवीर गले में लटकाए हुए था और रो रहा था। गांधीजी के पास आते ही वह उनके पाँवों में गिर पड़ा और लकवे की पुरानी बीमारी का इलाज करने के लिए उन्हें धन्यवाद देने लगा। उस बेचारे ने कहा-"जब सारे उपाय बेकार हो गए, तो मैंने गांधीजी का नाम जपना शुरू कर दिया और एक दिन मैं बिलकुल चंगा हो गया ।"

गांधीजी ने उसे झिड़की दी-"तुमको मैंने नहीं, बल्कि भगवान् ने चंगा किया है। मेहरबानी करके मेरी तसवीर तो गले में से उतार दो।"

पढ़े-लिखे लोग भी इससे बरी नहीं थे। एक बार जिस गाड़ी में गांधीजी यात्रा कर रहे थे, वह झटके के साथ रुकी | किसी ने जंजीर खींच दी थी। पता लगा कोई वकील साहब सिर के बल गाड़ी से गिर गए थे। जब उन्हें उठाया गया, तो उनके कहीं चोट नहीं लगी थी। चोट न लगने का कारण उन्होंने यह बतलाया कि वह गांधीजी के साथ यात्रा कर रहे थे। गांधीजी ने हँसकर कहा-"तब तो आपको गाड़ी से गिरना नहीं चाहिए था |" परंतु यह मजाक उस भक्त की समझ में नहीं आया |

जब स्त्रियाँ घूँघट निकाले हुए गांधीजी के सामने आतीं, तो वह कहते –"अपने भाई से क्या पर्दा ?" और वे तुरंत घूँघट हटा लेतीं।

धन इकट्ठा करने के मामले में गांधीजी न तो किसी को बख्शते थे और न कोई उन्हें इन्कार कर सकता था। स्त्रियों के गहने उतरवाने में उन्हें खास मजा आता था। एक बार मेरे एक अमरीकी मित्र ने उनका चित्र लाने को कहा, जिस पर उनके हाथ से कुछ लिखा भी हो। मुझे आश्रम में एक चित्र मिल गया। मैंने गांधीजी से अनुरोध किया कि वह उस पर हस्ताक्षर

कर दें। "कर दूँगा, अगर तुम हरिजन-कोष के लिए पच्चीस रुपए दो, तो |" उन्होंने मुसकराते हुए कहा।

मैंने कहा-"दस दूँगा।" उन्होंने हस्ताक्षर कर दिए।

गांधीजी के कुछ मित्र उन पर खादी को जरूरत से ज्यादा महत्त्व देंने का दोष लगाते थे। उनका कहना था कि यह मशीन का युग है और गांधीजी की सारी शक्ति बुद्धिमानी तथा साधुता भी समय को पीछे ले जाने में सफल नहीं हो सकती |

बहुत-से पढ़े-लिखे लोग खादी की खिल्लियाँ उड़ाते थे। वे इसे मोटी और खुरदरी कहते थे। ।

गांधीजी विचार-शक्ति और शारीरिक शक्ति को जोड़ना चाहते थे, शहर और गाँव को एक करना चाहते थे, अमीर और गरीब को परस्पर बाँधना चाहते थे |

इस काम ने गांधीजी को बिलकुल थका दिया। एक-एक दिन में सभाओं के लिए तीन-चार जगह रुकना, रात में दूसरी जगह ठहरना, भारी पत्र-व्यवहार—जिसे वह कभी नहीं टालते थे, अनगिनत व्यक्तिगत मुलाकातें, जिनमें पुरुष और स्त्रियाँ बड़ी-से-बड़ी राजनैतिक समस्याओं पर तथा छोटी-से-छोटी व्यक्तिगत कठिनाइयों पर उनकी सलाह चाहते थे-इन सबने उन्हें कमजोर कर दिया | इसलिए नवंबर 1925 में उन्होंने सात दिन का उपवास कर डाला।

भारत उनके लिए चिन्तित हो उठा। उपवास क्यों ? गांधीजी ने बतलाया-"जनता को मेरे उपवासों की उपेक्षा करनी होगी। ये तो मेरे जीवन के अंग हैं। अगर मैं आँखों के बिना काम चला सकूँ, तो उपवासों के बिना भी रह सकता हूँ। बाह्य-जगत के लिए आँखों का जो उपयोग है, वही उपयोग अंतर्जगत के लिए उपवासों का है। शायद मैं बिलकुल गलत काम कर रहा हूँ। उस हालत में दुनिया मेरी चिता पर यह वाक्य लिख सकेगी-'ओ बेवकूफ ! तू इसी लायक था' |"

गांधीजी के उपवास के फलस्वरूप उपवासों के बारे में उनके विचार जानने के लिए अनुरोधों की बाढ़ आ गई। इनका उत्तर उन्होंने यंग इंडिया में एक लेख के द्वारा दिया। उन्होंने लिखा : "अपने डाक्टर-मित्रों से क्षमा माँगते हुए, परंतु अपने तथा अपने साथी-संगियों के संपूर्ण अनुभव के आधार पर मैं बिना संकोच कहता हूँ कि उपवास करो, 1. यदि आपको कब्ज हो, 2. यदि आपमें खून की कमी हो, 3. यदि आपको बुखार आता हो, 4. यदि आपको बदहज्मी हो, 5. यदि आपके सिर में दर्द हो, 6. यदि आपको वात रोग हो, 7. यदि आपको संधिवात (गठिया) हो, 8. यदि आप झुंझलाते और क्रोध करते हों, 9. यदि आपका चित्त विषादमय हो, 10. यदि आपको हर्षातिरेक हो। फिर आपको न तो नुस्खों की जरूरत होगी, न बाजारू दवाइयों की ।" उनका हर रोग के लिए एक ही पेटेंट नुस्खा था- उपवास | उन्होंने लिखा : "जब भूख लगे, तभी खाओ और वह भी तब, जब तुम अपने खाने के लिए परिश्रम कर चुके हो |"

लेख में उपवास के लिए नौ नियम भी दिए गए : "1. शुरू से ही अपनी शारीरिक और मानसिक शक्ति का संचय करो, 2. उपवास के दिनों में भोजन का विचार ही करना छोड़ दो, 3. जितना भी ठंडा पानी पी सकते हो, पियो, 4. रोज गरम पानी से शरीर को अंगोछो, 5. नियमित रूप से एनिमा लो, 6. खुली हवा में जितना अधिक सो सकते हो, सोओ, 7. सुबह की ठंडी हवा में स्नान करो, 8. उपवास के बारे में सोचना बिलकुल बंद कर दो, 9. तुम्हारा उपवास चाहे जिस अभिप्राय से हो, इस अमूल्य समय में सृष्टिकर्त्ता का ध्यान करो, और आपको ऐसे नए अनुभव होंगे, जिनकी आपको स्वप्न में भी आशा नहीं हुई होगी।"

गांधीजी की कांग्रेस-अध्यक्षता का वर्ष अब समाप्त हो गया था और दिसंबर 1925 में कानपुर में उन्होंने अपनी गद्दी श्रीमती सरोजनी नायडू को सौंप दी | तब उन्होंने एक वर्ष के 'राजनैतिक मौन' का व्रत लिया।

गांधीजी ने देखा कि राजनैतिक भारत छिन्न-भिन्न तथा साहसहीन हो रहा है। अत: मौन के लिए यह अच्छा समय था।

10 / मौन का वर्ष

मौन-वर्ष में बावन मौन-सोमवार थे, जब गांधीजी बिलकुल नहीं बोलते थे। मौन-सोमवार के दिन वह मुलाकातियों की बातें सुनते और कभी-कभी कागज का एक टुकड़ा फाड़कर उस पर पेन्सिल से कुछ जवाब लिख देते थे।

1942 में मैंने गांधीजी से उनके मौन का अभिप्राय पूछा।

उन्होंने बतलाया-"यह तब हुआ, जब मैं टुकड़े-टुकड़े हो रहा था, मैं कठोर परिश्रम कर रहा था, सख्त गरमी में रेलगाड़ियों में सफर करता था, अनेक सभाओं में लगातार बोलता था, रेल में तथा अन्य स्थानों पर हजारों लोग मेरे पास आते थे | जो सवाल पूछते थे, अनुनय करते थे और मेरे साथ प्रार्थना करना चाहते थे | मैं सप्ताह में एक दिन आराम करना चाहता था। इसलिए मैंने मौन का दिन प्रारंभ किया। यह सही है कि बाद में मैंने इसे तरह-तरह के गुणों से ढक दिया और आध्यात्मिक जामा पहना दिया। परंतु वास्तव में नीयत सिर्फ यही थी कि मैं एक दिन की छुट्टी चाहता था |"

परंतु बावन सोमवारों के सिवा यह 'मौन' वर्ष किसी भी अर्थ में मौन नहीं था | उन्होंने यात्राएँ नहीं कीं, सार्वजनिक सभाओं में भाषण नहीं दिए, परंतु वह बातचीत करते थे, लिखते थे, मुलाकातियों से मिलते थे और भारत तथा दूसरे देशों के हजारों व्यक्तियों से पत्र-व्यवहार करते रहते थे।

गांधीजी के रुख में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण परिवर्तन दिखाई देने लगा था। उन्हें शक होने लगा था कि ब्रिटेन की नीति हिन्दू-मुस्लिम एकता-विरोधी है। सरकार मुसलमानों के साथ पक्षपात करती हुई मालूम देती थी।

गांधीजी का खयाल था कि हिन्दू-मुस्लिम-एकता से भारत को स्वराज्य प्राप्त हो जायगा। अब उन्होंने महसूस किया कि जब तक अंग्रेजों का 'तीसरा दल' यहाँ मौजूद है, तब तक हिन्दू-मुस्लिम मेल-जोल लगभग असंभव है।

गांधीजी का नुस्खा था कि बहुसंख्यक हिन्दू अल्पसंख्यक मुसलमानों के साथ अच्छा बर्ताव करें और दोनों अहिंसा का पालन करें। हिन्दू लोग उग्र रूप में उन पर मुस्लिमपरती का दोषारोपण करने लगे।

परंतु इस वर्ष का सबसे प्रचंड विवाद कुत्तों के बारे में हुआ। कई महीनों तक यह तूफान गांधीजी के सिर पर मंडराता रहा।

अहमदाबाद के मिल-मालिक अंबालाल साराभाई ने अपनी मिल के अहाते में चक्कर लगानेवाले साठ आवारा कुत्तों को पकड़वाकर मरवा डाला।

कुत्तों को मरवाने के बाद साराभाई घबरा गए और उन्होंने अपनी व्यथा गांधीजी के सामने रख दी। गांधीजी ने कहा-"इसके सिवा और चारा ही क्या था ?"

अहमदाबाद की जीव-दया-समिति ने जब इस बात-चीत का हाल सुना, तो वह गांधीजी के सिर हो गई। एक क्रोध-भरे पत्र में उसने गांधीजी को लिखा-"जब हिन्दू धर्म किसी भी जीव की हत्या पाप मानता है, तो क्या का इसलिए बावले कुत्तों को मारना ठीक समझते हैं कि वे आदमियों को काट खाएँगे और उनके काटने से दूसरे कत्ते भी बावले हो जाएँगे ?"

गांधीजी ने इसे यंग इंडिया में प्रकाशित कर दिया और इसके उत्तर में डेढ़ पृष्ट का लेख छापा-"हम जैसे अपूर्ण और भूलें करनेवाले मनुजों के सामने कुत्तों को मारने के अलावा दूसरा कोई मार्ग ही नहीं है। कभी-कभी हमारे सामने उस आदमी को मारने का अनिवार्य कर्तव्य आ जाता है, जो लोगों को मारता हुआ पाया जाय ।"

इस लेख पर रोष-भरे पत्रों की बाढ़ आ गई | इतना ही नहीं, लोग आ-आकर गांधीजी को गालियाँ सुनाने लगे। परंतु गांधीजी अपनी बात पर अड़े रहे। यंग इंडिया के दूसरे अंक में उन्होंने फिर इसी प्रकार लिखा।

कुत्तों के बारे में डाक आना जारी रहा। यंग इंडिया के तीसरे अंक में गांधीजी ने इस मसले पर तीन पृष्ठ लिख डाले। उन्होंने बतलाया कि कुछ विरोधी आलोचकों ने तो शिष्टता की मर्यादा का अतिक्रमण किया है।

उन्होंने लिखा-"प्राण-हरण भी कर्तव्य हो सकता है। मान लीजिए कि कोई आदमी बदहवास होकर तलवार हाथ में लिए बेतहाशा दौड़ता फिर रहा है, जो सामने आए, उसे मार डालता है और उसको जिन्दा पकड़ने की किसी की हिम्मत नहीं होती । इस दीवाने को यमपुरी पहुँचानेवाला समाज की कृतज्ञता का पात्र होगा।"

'मौन-वर्ष' में कुत्ता-विवाद ने उत्तेजना का रिकार्ड कायम कर दिया, परंतु एक बछड़े ने भी तूफान ढा दिया। आश्रम का एक बछड़ा बीमार हो गया। गांधीजी ने उसका उपचार किया और जब उसकी वेदना देखी, तो निश्चय किया कि उसे मार डालना ही उचित है। गांधीजी के सामने डाक्टर ने बछड़े को इंजेक्शन लगाया, जिससे वह मर गया। इसके विरोध में प्रचंडता-पूर्ण पत्रों का ताँता लग गया। गांधीजी दृढ़ता के साथ कहते रहे कि उन्होंने ठीक किया।

1926 के 'मौन-वर्ष' में गांधीजी की कलम या पेन्सिल से जो बहुत-से लेख निकले, उनमें उन्होंने गर्भ-निरोध के कृत्रिम उपायों का लगातार विरोध किया | वह इन्हें पश्चिमी बुराई कहते थे | परंतु वह संतति-नियंत्रण के विरोधी नहीं थे। उन्होंने हमेशा इसकी हिमायत की | परंतु वह आत्म-निग्रह-शरीर पर मन के नियंत्रण-द्वारा संतति-निग्रह के हिमायती थे।

विदेशों में गांधीजी की ख्याति फैल रही थी | फ्रांसीसी लेखक रोम्याँ रोला ने उनके बारे में एक पुस्तक लिखी। जगह-जगह से, खासकर अमरीका से, उनके पास निमंत्रण आए कि वहाँ आएँ। उन्होंने सबको इन्कार कर दिया। उन्होंने बतलाया-"मेरा कारण बहुत सीधा-सादा है। मुझमें अभी इतना आत्म-विश्वास नहीं है कि मेरा अमरीका जाना उचित हो। मुझे संदेह नहीं है कि अहिंसा का आंदोलन चिरस्थायी हो गया है। इसकी अंतिम सफलता के बारे में मुझे किसी तरह का संदेह नहीं है। परंतु अहिंसा की प्रभावकारी शक्ति का मैं प्रत्यक्ष प्रदर्शन नहीं दे सकता। इसलिए मैं महसूस करता हूँ कि तबतक मुझे सीमित भारतीय मंच से ही प्रचार करना चाहिए |"

व्यक्तिगत अथवा राजनैतिक दृष्टि से गांधीजी को कोई जल्दी नहीं थी और वह एक साल तक चुप बैठे रहे। 1926 में राजनीति से इस छुट्टी में उन्हें मानों मजा आ रहा था। इससे उनके शरीर को आराम लेने का और उनकी आत्मा को इधर-उधर घूमने का अवसर मिल गया था।

उन्होंने मित्र बनाए उस्तरे की धार जैसे पैने दिमागवाले वकील राजगोपालाचारी, महादेव देसाई, जो उनके सचिव और शिष्य हुए और चार्ली एंड्रयूज, जिन्हें वह 'गुड सैमेरिटन' (सबका भला चाहनेवाला) कहते थे। उनका कहना था-"यह मेरे लिए सगे भाई से भी बढ़कर है। जितना गहरा लगाव मुझे एंड्रयूज से है, उतना और किसी से है, यह मैं नहीं समझता|" हिन्दू संत को एंड्रयूज से बढ़कर कोई संत नहीं मिला। ईसाई पादरी को गांधीजी से बढ़कर कोई ईसाई नहीं मिला| शायद यह भारतीय और यह अंग्रेज इसलिए भाई-भाई थे कि वे सच्चे अर्थों में धार्मिक थे। शायद धर्म ने उन्हें इसलिए साथ जोड़ दिया था कि राष्ट्रीयता उन्हें अलग नहीं करती थी। जहाँ राष्ट्रीयता लोगों को अलग-अलग नहीं करती, वहाँ धर्म उन्हें भाई बना देता है। ।

11 / थककर चूर

जब गांधीजी मौन के वर्ष को पार करके निकले, तो उनके विचारों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। उनका कार्यक्रम अब भी वही था-हिन्दू-मुस्लिम एकता, अस्पृश्यता- निवारण और खादी-प्रचार।

दिसंबर 1926 में साबरमती से रवाना होकर गांधीजी एक-के-बाद-एक सभाओं में प्रचार करते हुए कांग्रेस-अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए गोहाटी पहुँचे। रास्ते में उन्हें एक दुःखदायी घटना का समाचार मिला, जिसने भारत को दहला दिया था | अब्दुलरशीद नामक एक नौजवान मुसलमान स्वामी श्रद्धानंद से मिलने गया और उनसे धार्मिक समस्याओं पर चर्चा करने की इच्छा प्रकट की | स्वामीजी रोग-शय्या पर पड़े थे, डाक्टर ने उन्हें पूरे आराम की सलाह दी थी। जब स्वामीजी ने अपने कमरे के बाहर नौकर तथा अड़ियल आगंतुक के बीच झगड़े की आवाज सुनी, तो उन्होंने उस आदमी को अंदर बुलवाया। भीतर आने पर स्वामीजी ने अब्दुलरशीद से कहा कि कमजोरी दूर होते ही वह उससे खुशी के साथ बातें करेंगे। उसने पीने को पानी माँगा । जब नौकर पानी लेने गया, तो अब्दुलरशीद ने रिवाल्वर निकालकर स्वामीजी के सीने में कई गोलियाँ दाग दीं और उन्हें मार डाला।

मुस्लिम समाचार पत्र स्वामीजी पर आक्रमण कर रहे थे कि वह भारत में हिन्दुओं का प्रभुत्व स्थापित करना चाहते थे। कांग्रेस में अपने एक भाषण में गांधीजी ने मुसलमानों को आश्वासन दिया कि स्वामीजी उनके शत्रु नहीं थे। उन्होंने कहा कि अब्दुलरशीद अपराधी नहीं था। अपराधी तो वे लोग थे, जो एक-दूसरे के विरुद्ध विद्वेष की भावनाएँ भड़काते थे।

कांग्रेस अधिवेशन में उग्र राष्ट्रवादियों ने पूर्ण स्वाधीनता तथा इंग्लैंड से संपूर्ण संबंध-विच्छेद के पक्ष में प्रस्ताव रखा। गांधीजी ने इसका विरोध किया। उन्होंने कहा-"ये लोग मानव-प्रकृति में तथा खुद अपने-आप में अश्रद्धा प्रकट करते हैं। ये लोग ऐसा क्यों समझते हैं कि

ब्रिटिश साम्राज्य के संचालकों में भी हृदय-परिवर्तन नहीं हो सकता ? यदि भारत अपने गौरव को महसूस करे और मजबूत हो जाय, तो इंग्लैंड जरूर बदलेगा ।"

गांधीजी ने तदनुसार राष्ट्र को भीतर से मजबूत बनाने के प्रयत्न जारी रखे, अन्यथा स्वाधीनता के पक्ष में प्रस्ताव का थोथे शब्द और बेकार संकेत के अतिरिक्त कोई अर्थ ही न होता।

इसलिए गांधीजी ने फिर देश का दौरा किया।

परंतु हिन्दू-मुस्लिम समस्या गांधीजी के प्रयत्नों को चुनौती देती रही। उन्होंने मंजूर किया- "मैं निरुपाय हो गया हूँ। मैं इससे हाथ धो बैठा हूँ, परंतु मैं ईश्वर में विश्वास करनेवाला हूँ।"

कलकत्ता से गांधीजी बिहार होते हुए महाराष्ट्र पहुँचे। पूना में विद्यार्थियों ने उनसे अंग्रेजी में भाषण देने की माँग की | गांधीजी ने अंग्रेजी में बोलना शुरू किया, लेकिन थोड़ी देर बाद हिन्दुस्तानी में बोलने लगे, क्योंकि वह इसे राष्ट्रभाषा बनाना चाहते थे। वहाँ से वह बंबई आए, जहाँ लोगों ने उनकी खूब आवभगत की और खूब रुपया दिया। यहाँ से वह फिर बंगलौर की गाड़ी पकड़ने के लिए पूना गए।

पूना स्टेशन पर गांधीजी ने इतनी कमजोरी महसूस की कि उन्हें उठाकर बंगलौर की गाड़ी में बिठाया गया | उनकी आँखों के आगे अँधेरा छा गया और वह बड़ी मुश्किल से एक जरूरी पुर्जा लिख सके | रात की नींद ने उन्हें ताजा कर दिया और दूसरे दिन कोल्हापुर में उन्होंने सात सभाओं में भाषण दिए, परंतु आखिरी सभा में वह थकावट से चूर होकर गिर पड़े।

किए भी वह काम करते ही रहे। दूसरे दिन उनकी तबीयत इतनी गिर गई कि उनमें भाषण देने की शक्ति नहीं रही | परंतु वह अपने मेजबान के घर की बरसाती पर बैठ गए और भीड़ उनके सामने से होकर निकलने लगी। बेलगाँव में भी वह क सभा में तो गए, परंतु बोले नहीं। अंत में एक डाक्टर ने उन्हें समझाया कि उनकी हालत चिन्ताजनक है और उन्हें आराम करना चाहिए | तब उन्हें एक पहाड़ी नगर में ले जाया गया; जहाँ समुद्र की हवा खूब आती थी।

अपने मित्र तथा चिकित्सक डा० जीवराज मेहता के आग्रह पर गांधीजी दो महीने आराम करने के लिए राजी हो गए।

1927 के अप्रैल महीने में गांधीजी मैसूर में स्वास्थ्य-लाभ करते रहे। रियासत के प्रधानमंत्री उनसे मिलने आए और बातचीत के दौरान में उन्होंने गांधीजी को आश्वासन दिया कि यदि मैसूर के सरकारी कर्मचारी खादी पहनें, तो उन्हें कोई ऐतराज नहीं होगा।

बाद के वर्षों में गांधीजी के चिकित्सक डा० विधानचंद्र राय तथा बंबई के डा० मंचेरशाह गिल्डर ने बतलाया कि मार्च 1927 में गांधीजी को दिल का हल्का-सा दौरा हुआ था। बाद में शरीर पर इसका कोई बुरा प्रभाव नहीं मालूम दिया। डा० गिल्डर, जो 1932 के बाद गांधीजी के हृदय-विशेषज्ञ बन गए थे, बतलाते हैं कि गांधीजी का हृदय उनकी आयु के औसत आदमी के हृदय से अधिक बलवान था | उनकी (डा० गिल्डर की) जानकारी में गांधीजी का रक्तचाप कभी बढ़ा हुआ नहीं पाया गया, सिवा उन मौकों के, जब वह किसी महत्त्वपूर्ण निश्चय पर पहुँचने में लगे हुए होते थे | एक बार जब गांधीजी सोने लगे, तो उनका रक्तचाप बढ़ा हुआ था, परंतु सुबह सामान्य था, क्योंकि रात-भर में उन्होंने एक निर्णयात्मक प्रश्न पर अपना मत स्थिर कर लिया था। डा० गिल्डर का कहना है कि झुंझलाहट पैदा करनेवाले व्यक्तियों की उपस्थिति या सार्वजनिक आक्रमण, या अपने काम के बारे में चिन्ता, गांधीजी के रक्तचाप पर कभी असर नहीं डालती थी; रक्तचाप को बढ़ानेवाला वह मंथन होता था, जो किसी निश्चय से पूर्व उनके मस्तिष्क में चलता था।

नए वाइसराय लार्ड अरविन अप्रैल 1926 में रीडिंग का स्थान लेने के लिए आ चुके थे।

कुछ क्षेत्रों में वाइसराय के पद पर एक धर्मपरायण व्यक्ति की नियुक्ति, एक धर्मपरायण देश पर, जिसका विरोधी नेता एक महात्मा था, पंचवर्षीय शासन के लिए शुभ शकुन मानी गई।

परंतु उन्नीस महीनों तक अरविन ने न तो गांधीजी को बुलाया और न इस सबसे अधिक प्रभावशाली भारतीय से भारत की स्थिति पर चर्चा करने की कोई इच्छा प्रकट की | 26 अक्तूबर 1927 को मंगलौर में गांधीजी के पास संदेश पहुँचा कि वाइसराय 5 नवंबर को उनसे मिलना चाहते हैं।

महात्माजी ने तुरंत अपना दौरा स्थगित कर दिया और दिल्ली की यात्रा की | पूर्व-निश्चित समय पर उन्हें वाइसराय के सामने उपस्थित किया गया। भीतर जाते समय वह अकेले ही थे। वाइसराय ने विधान मंडल के अध्यक्ष विट्ठलभाई पटेल, 1927 के कांग्रेस-अध्यक्ष श्रीनिवास आयंगर तथा 1928 के निर्वाचित कांग्रेस-अध्यक्ष डा. अंसारी को भी बुलाया था।

जब ये लोग बैठ गए, तो वाइसराय ने इन्हें एक पर्चा दिया, जिसमें एक सरकारी ब्रिटिश कमीशन के भावी आगमन की घोषणा थी | इस कमीशन के नेता सर जॉन साइमन थे तथा इसका उद्देश्य भारतीय स्थिति पर रिपोर्ट देना और राजनैतिक सुधारों की सिफारिश करना था।

इबारत पढ़कर गांधीजी ने ऊपर देखा और प्रतीक्षा की | वाइसराय कूछ नहीं बोले |

गांधीजी ने पूछा-"क्या हमारी मुलाकात का सिर्फ यही मतलब है ?"

"जी, हाँ ।" वाइसराय ने उत्तर दिया।

बस मुलाकात यहीं खत्म हो गई। गांधीजी चुपचाप दक्षिण भारत लौट गए।

गांधीजी का वाइसराय से सामना होने के बाद अन्य भारतीय नेताओं को भी साइमन कमीशन के भावी आगमन की सूचना इसी ढंग से दी गई | किसी के साथ भी कोई चर्चा या ब्यौरेवार बात नहीं हुई | अरविन ने आशा प्रकट की कि भारतवासी इस कमीशन के सामने गवाहियाँ दें और सुझाव पेश करें।

साइमन कमीशन बर्कनहैड[1] के दिमाग की अधकचरी उपज थी।

साइमन कमीशन के समाचार ने भारत को स्तंभित कर दिया। यह कमीशन भारत के भाग्य का फैसला करनेवाला था। परंतु इसके सदस्यों में एक भी भारतीय नहीं था।

3 फरवरी 1928 को जब साइमन कमीशन ने बंबई में पदार्पण किया, तो काले झंडों तथा 'साइमन वापस जाओ' के नारों से उसका स्वागत किया गया | जबतक कमीशन भारत में रहा, उसके सदस्यों के कानों में यह नारा गूँजता रहा।

साइमन ने समझौते की कोशिश की | अरविन ने प्रलोभन दिए और मिन्नतें कीं, परंतु प्रतिनिधि की हैसियत रखनेवाले एक भी भारतीय ने उनसे नहीं मिलना चाहा। कमीशन ने ईमानदारी से मेहनत की और तथ्यों तथा आँकड़ों का होशियारी से संपादित एक पोथा तैयार किया | ब्रिटिश शासन पर यह एक विद्वतापूर्ण मर्सिया था।

---

1. लार्ड बर्कनहैड उस समय भारत के लिए ब्रिटिश सरकार के राज्य-सचिव थे।

12 / सत्याग्रह की तैयारी

गांधीजी लड़ाई में बहुत धीरे-धीरे उतरते थे। अधिकतर विद्रोहियों के विपरीत वह अपने विपक्षी से युद्ध-सामग्री प्राप्त नहीं करते थे। अंग्रेजों ने तो उन्हें उनके विशिष्ट स्व-निर्मित हथियार 'सविनय अवज्ञा' के उपयोग का अवसर दिया था। फरवरी 1922 में चौरीचौरा में भीड़ द्वारा पुलिस के सिपाहियों की निर्मम हत्या ने उन्हें बारडोली का सत्याग्रह स्थगित करने को प्रेरित किया था, परंतु वह भूले नहीं | उन्होंने छः वर्ष प्रतीक्षा की और 12 फरवरी 1928 को उसी स्थान, बारडोली में, सत्याग्रह का शंख बजाया |

गांधीजी ने इसका संचालन खुद नहीं किया। वह तो दूर से निगहबानी करते रहे, उसके बारे में लंबे-लंबे लेख लिखते रहे और व्यापक रूप से निर्देशनऔर प्रेरणा देते रहे। वास्तविक नेता थे वल्लभभाई पटेल और उनके सहायक थे अब्बास तैयबजी |

पटेल के नेतृत्व में गाँववालों ने टैक्स देने बंद कर दिए। कलैक्टर ने उनकी भैंसे जब्त कर लीं। किसानों को खेतों से खदेड़ दिया गया, रसोईघरों पर धावे बोले गए और टैक्स के बदले में बरतन-भांडे कुर्क कर लिए गए | किसान-लोग अहिंसा का पालन करते रहे।

12 जून को बारडोली के सम्मान में सारे भारत में हड़ताल मनाई गई।

पटेल की गिरफ्तारी की किसी समय भी आशंका थी | इसलिए 2 अगस्त को गांधीजी बारडोली जा पहुँचे। 6 अगस्त को सरकार ने घुटने टेक दिए। उसने वादा किया कि सब कैदी छोड़ दिए जाएँगे, कुर्क की हुई सब जमीनें वापस कर दी जाएँगी, कुर्क किए जानवर या उनकी कीमतें लौटा दी जाएँगी और मूल बात यह, कि बढ़े हुए टैक्स मंसूख कर दिए जाएँगे।

गांधीजी ने दिखा दिया कि उनका हथियार कारगर सिद्ध हुआ।

क्या वह इसका विशाल पैमाने पर उपयोग करना चाहेंगे ?

भारत में उथल-पुथल मच रही थी । 3 फरवरी 1928 से, जब साइमन कमीशन ने बंबई में कदम रखा था, भारत ने उसका बहिष्कार कर दिया था। गांधीजी का बहिष्कार इतना पूर्ण था कि उन्होंने कमीशन का कभी नाम तक नहीं लिया | उनके लिए उसका अस्तित्व ही नहीं था। परंतु दूसरे लोगों ने उसके विरुद्ध प्रदर्शन किए | लाहौर में एक विशाल साइमन-विरोधी सभा में पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय पर पुलिस की लाठी पड़ी और कुछ ही दिन बाद उनकी मृत्यु हो गई। इसी समय के लगभग लखनऊ में साइमन-विरोधी सभा में जवाहरलाल नेहरू पर भी लाठियाँ पड़ीं | दिसंबर 1922 में लाहौर के सहायक पुलिस सुपरिन्टेंडेंट सांडर्स की हत्या कर दी गई | भगतसिंह, जिस पर इस हत्या का आरोप था, फरार हो गया और उसे तुरंत ही एक वीर का दर्जा प्राप्त हो गया।

बंगाल में तूफानी चिड़िया सुभाषचंद्र बोस, जिनकी विचार-धारा थी-"मुझे खून दो और मैं तुमसे आजादी का वादा करता हूँ" बहुत लोकप्रिय हो गए और उतावले नवयुवकों का एक बड़ा दल उनके पीछे हो गया। गांधीजी इस नाजुक वातावरण को पहचान गए। उनके मुँह से एक शब्द निकलने की देर थी कि देश-भर में हजार बारडोलियाँ उठ खड़ी होतीं । परंतु चतुर युद्ध-नायक की तरह गांधीजी लड़ाई के लिए उपयुक्त समय और स्थान हमेशा सावधानी से चुनते थे।

अनिश्चितता की इस मानसिक स्थिति में गांधीजी दिसंबर 1928 में कलकत्ता में होनेवाले कांग्रेस-अधिवेशन के लिए चल पड़े।

कांग्रेस अधिवेशन में सीधी कार्रवाई की माँग की गई। लेकिन गांधीजी जानते थे कि संगठन क्या चीज है और वास्तविकता क्या है। कांग्रेस युद्ध की बात करती थी | क्या यह सेना कारगर थी ? गांधीजी कांग्रेस की 'कायापलट' करना चाहते थे ।

परंतु कांग्रेस अपना प्रतिवाद नहीं चाहती थी | सावधानी उसके कार्यक्रम में ही नहीं थी | नवयुवकों का नेतृत्व करनेवाले सुभाषचंद्र बोस और जवाहरलाल नेहरू चाहते थे कि तुरंत स्वाधीनता की घोषणा कर दी जाय और उसके बाद स्वाधीनता का युद्ध छेड़ दिया जाय।

गांधीजी ने सलाह दी कि ब्रिटिश सरकार को दो वर्ष की चेतावनी दी जाय | दबाव पड़ने पर उन्होंने इसे कम करके एक वर्ष कर दिया। यदि 31 दिसंबर 1929 तक भारत को औपनिवेशिक दर्जे के अंतर्गत आजादी न मिली, तो "मैं अपने आपको 'इंडिपेंडेंसवाला' घोषित कर दूँगा।"

1929 का वर्ष नाजुक और निर्णायक बनने जा रहा था।

8 अप्रैल को भगतसिंह ने लेजिस्लेटिव असेम्बली भवन में जाकर सदस्यों के बीच दो बम फेंके और फिर पिस्तौल से गोलियाँ दागना शुरू कर दिया | सर जान साइमन ने गैलरी में बैठे हुए इस कांड को देखा | यह भारत में उनका अंतिम बड़ा अनुभव था। उसी महीने कमीशन इंग्लैंड लौट गया।

मई 1929 में इंग्लैंड के राष्ट्रीय चुनावों में मजदूर दल को अल्पमत प्राप्त हुआ, परंतु चूँकि इस दल के सदस्यों की संख्या सबसे अधिक थी, इसलिए उसीने पद-ग्रहण किया और रैमजे मैकडॉनल्ड प्रधान मंत्री बने। जून में लार्ड अरविन नई सरकार से, और खासकर भारत के नए राज्य-सचिव मि. वेजवुड बेन से, सलाह-मशविरा करने इंग्लैंड गए।

1930 की पहली जनवरी अब दूर नहीं थी।

लार्ड अरविन मजदूर सरकार के सदस्यों आदि से कई महीने चर्चाएँ करके अक्तूबर में वापस आ गए | वाइसराय ने देखा कि भारत की परिस्थिति 'खतरे की हालत के किनारे पर' है| 1930 की महान चुनौती के लिए पूरी तैयारी कर ली गई।

तदनुसार अक्तूबर 1929 की अंतिम तारीख को लार्ड अरविन ने 'अपना अत्यंत महत्त्वपूर्ण बयान' दिया, जिसमें गोलमेज परिषद् बुलाए जाने की बात थी।

कुछ दिन बाद गांधीजी दिल्ली में डा० अंसारी, श्रीमती ऐनी बेसेन्ट, मोतीलाल नेहरू, सर तेजबहादुर सप्रू, पंडित मालवीय, श्रीनिवास शास्त्री आदि से मिले और एक 'नेताओं का

घोषणा-पत्र' प्रकाशित किया गया | वाइसराय की घोषणा के प्रति इनकी प्रतिक्रिया अनुकूल थी।

गांधीजी तथा वयोवृद्ध राजनीतिज्ञों के इस मैत्रीपूर्ण रुख ने तूफान खड़ा कर दिया, खासकर जवाहरलाल नेहरू तथा सुभाषचंद्र बोस की ओर से। परंतु इससे विचलित न होकर तथा इस भरोसे के साथ कि राष्ट्र अंग्रेजों से शांतिपूर्ण समझौता स्वीकार कर लेगा, गांधीजी तथा उनके साथियों ने अपनी खोजबीन जारी रखी। उन्होंने 23 दिसंबर को तीसरे पहर वाइसराय से मिलने का समय निश्चित कर लिया।

यह मुलाकात ढाई घंटे चली | गांधीजी ने पूछा कि क्या वाइसराय महोदय ऐसी गोलमेज परिषद् का वादा कर सकते हैं, जो भारत को संपूर्ण और तुरंत औपनिवेशिक दर्जा देनेवाला मसविदा तैयार करे, जिसमें साम्राज्य से विलग होने का अधिकार भी सम्मिलित हो ?

अरविन ने उत्तर दिया कि कोई खास रुख अख्तियार करने के लिए वह परिषद् के निर्णय की पूर्व-कल्पना करने में या उसे बाँधने में बिलकुल असमर्थ है।

ये घटनाएँ दिसंबर के अंत में, लाहौर में, जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में होनेवाले ऐतिहासिक कांग्रेस-अधिवेशन की भूमिका बनीं ।

और ठीक उसी क्षण जब 1929 का वर्ष समाप्त हुआ और 1930 का वर्ष प्रारंभ हुआ, कांग्रेस ने गांधीजी को अपना सूत्रधार बनाकर आजादी का झंडा फहरा दिया और पूर्ण स्वाधीनता तथा संबंध-विच्छेद की घोषणा करनेवाला प्रस्ताव पास कर दिया।

सत्याग्रह कब, कहाँ और किस मुद्दे से किया जाय, इसका निर्णय गांधीजी पर छोड़ दिया गया।

13 / समुद्र-तट की रंगभूमि

गांधीजी व्यक्तियों के सुधारक थे। इसलिए उन्हें उन साधनों की चिन्ता थी, जिनके द्वारा भारत की मुक्ति प्राप्त हो सके। यदि साधनों ने व्यक्ति को भ्रष्ट कर दिया तो लाभ की अपेक्षा हानि अधिक होगी।

नव वर्ष की साँझ के हृदयस्पर्शी समारोह के बाद के सप्ताहों में गांधीजी सत्याग्रह के ऐसे रूप की तलाश में रहे, जिसमें हिंसा की गुंजाइश न हो।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर, जो उन दिनों साबरमती के आस-पास थे, 18 जनवरी को गांधीजी से मिलने आए। उन्होंने पूछा कि 1930 में गांधीजी देश को क्या देनेवाले हैं। गांधीजी ने उत्तर दिया-"मैं रात-दिन व्यग्रतापूर्वक सोच रहा हूँ, परंतु मुझे घोर अंधकार में प्रकाश की कोई किरण दिखाई नहीं देती |"

छः सप्ताह तक गांधीजी अंतरात्मा की आवाज सुनने की राह देखते रहे।

अंत में शायद उन्होंने यह आवाज सुन ली, जिसका अर्थ यही हो सकता था कि वह एक निश्चय पर पहुँच गए हैं, क्योंकि यंग इंडिया का 27 फरवरी का अंक गांधीजी के मेरी गिरफ्तारी के बाद शीर्षक संपादकीय लेख से शुरू हुआ और फिर उसमें नमक-कानून के अत्याचारों को बहुत जगह दी गई | अगले अंक में नमक-कानून के अंतर्गत दी जानेवाली सजाओं का जिक्र किया गया। 2 मार्च 1930 को गांधीजी ने वाइसराय को एक लंबा पत्र लिखा, जिसमें नोटिस दिया गया कि नौ दिन बाद सत्याग्रह शुरू हो जायगा।

किसी सरकार के सर्वोच्च अधिकारी को इससे अधिक निराला पत्र आज तक नहीं मिला था :

"प्रिय मित्र,

"सत्याग्रह शुरू करने से पूर्व और जिस खतरे से मैं इतना डर रहा हूँ, उसे उठाने से पूर्व, मैं आपसे बात करना और कोई रास्ता निकालना चाहता हूँ।

"मेरी निजी निष्ठा बिलकुल स्पष्ट है । जान-बूझकर मैं किसी भी प्राणी को चोट नहीं पहुँचा सकता, आदमियों को तो पहुँचा ही कैसे सकता हूँ, चाहे वे मुझे या मेरे लोगों को कितना ही भारी नुकसान क्यों न पहुँचाए? इसलिए यह मानते हुए भी, कि ब्रिटिश शासन एक अभिशाप है, मैं किसी भी अंग्रेज को या उसके उचित हित को हानि पहुँचाने का इरादा नहीं करता।

"और ब्रिटिश शासन को मैं अभिशाप क्यों मानता हूँ?

"अपनी उत्तरोत्तर शोषण की पद्धति और बरबाद करनेवाले सैनिक तथा सिविल शासन के खर्चे ने, जिसे यह देश कदापि नहीं उठा सकता, यहाँ के करोड़ों मूक व्यक्तियों को चूस डाला है।

"राजनैतिक रूप से उसने हमें गुलाम बना दिया है। उसने हमारी संस्कृति की जड़ खोखली कर दी है और हम लोगों को शस्त्र न रखने देने के निर्दय निषेध की नीति के कारण आध्यात्मिक रूप से भी हमें तेजहीन कर दिया है।

"मुझे भय है कि निकट भविष्य में भारत को स्वायत्त शासन देने की कोई इच्छा नहीं है।"

"यह नितांत स्पष्ट है कि जिम्मेदार ब्रिटिश राजनीतिज्ञ ब्रिटिश-नीति में ऐसा कोई परिवर्तन करने का विचार नहीं करते, जिससे भारत में ब्रिटेन के व्यापार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े |...यदि शोषण की प्रक्रिया का अंत करने के लिए कुछ नहीं किया गया, तो बड़ी तेजी से भारत रक्तरंजित हो जायगा।

"मैं आपके सामने कुछ मुख्य बातें उपस्थित करता हूँ।

"सारी मालगुजारी का बहुत बड़ा भाग भूमि से प्राप्त हो जाता है। उस पर जो भयंकर दबाव है, उसमें स्वतंत्र भारत में पर्याप्त परिवर्तन होना चाहिए। सारी मालगुजारी पद्धति में ऐसा सुधार होना चाहिए कि उससे किसानों का मुख्य रूप से हित साधन भला हो | लेकिन ब्रिटिश पद्धति तो ऐसी बनाई गई प्रतीत होती है कि उससे किसान के प्राण ही निकाल लिए

गए हैं। अपने को जीवित रखने के लिए उसे जिस नमक का प्रयोग करना पड़ता है, उस तक पर इस ढंग से कर लगा है कि उसका सबसे अधिक बोझ उसी पर पड़ता है| कानून सबको एक लाठी से हाँकता है। गरीब आदमी के लिए यह कर और भी भारी दीख पड़ता है, जब यह ध्यान आता है कि यह ऐसी चीज है, जिसे गरीब आदमी अमीर से अधिक खाता है।‑आबकारी की आमदनी भी गरीबों से ही होती है। वह उनके स्वास्थ्य और नैतिकता की बुनियाद को ही खोखला कर डालती है।

"ऊपर जिस अन्याय का उल्लेख किया गया है, वह उस विदेशी शासन को चलाने के लिए किया जाता है, जो स्पष्टत: संसार का सबसे मँहगा शासन है। अपने वेतन को ही लीजिए | वह प्रतिमास 21,000 रुपए से ऊपर पड़ता है, अप्रत्यक्ष भत्ते आदि अलग | आपको 700 रुपए प्रति दिन से अधिक मिलता है, जबकि भारत की औसत आमदनी दो आने प्रति दिन से भी कम है। इस प्रकार आप भारत की औसत आमदनी से पाँच हजार गुने से भी कहीं अधिक ले रहे हैं| ब्रिटिश प्रधान मंत्री ब्रिटिश की औसत आमदनी का सिर्फ नब्बे गुना लेता है। मैं घुटने टेककर आपसे विनय करता हूँ कि आप इस विषय पर विचार करें। यह निजी दृष्टांत मैंने एक दुःखद सत्य को आपके गले उतारने की खातिर लिया है। मनुष्य के रूप में आपके प्रति मेरे मन में इतना मान है कि मैं आपकी भावनाओं को चोट पहुँचाने की इच्छा नहीं कर सकता | मैं जानता हूँ, जितना वेतन आप पाते हैं, उतने की आपको आवश्यकता नहीं है। शायद आपका समूचा वेतन दान में जाता है। लेकिन जिस नियम द्वारा ऐसी व्यवस्था होती है, उसे तत्काल खत्म कर देना चाहिए | वाइसराय के वेतन के बारे में जो सत्य है, वही सारे आम शासन के बारे में है | ब्रिटिश सरकार की सुसंगठित हिंसा को सुव्यवस्थित अहिंसा ही रोक सकती है|"

"यह अहिंसा सविनय-अवज्ञा के रूप में प्रकट होगी, जो फिलहाल सत्याग्रह आश्रम के वासियों तक ही सीमित होगी, परंतु अंत में उसमें वे लोग भी आ सकेंगे जो सम्मिलित होना चाहेंगे |‑

"मेरी इच्छा अहिंसा द्वारा ब्रिटिश लोगों में हृदय-परिवर्तन करने और इस प्रकार उन्हें यह दिखाने की है कि भारत को उन्होंने कितना नुकसान पहुँचाया है। मैं आपके देशवासियों को हानि नहीं पहुँचाना चाहता-मैं तो उनकी सेवा ही करना चाहत हूँ जैसेकि अपने देश की करना चाहता हूँ।...

"यदि भारत के लोग मेरा साथ दें, जैसीकि मुझे आशा है कि देंगे, तो वे जो कष्ट सहन करेंगे, उससे पत्थर-जैसा हृदय भी पिघल जाएगा। हाँ, यदि ब्रिटिश राष्ट्र इससे पहले ही पीछे हट जाय, तो बात दूसरी है।

"सविनय-अवज्ञा की योजना द्वारा उन बुराइयों का निराकरण होगा, जिनका मैंने ऊपर उल्लेख किया है | मैं बड़े आदर-भाव से आपको आमंत्रण देता हूँ कि आप उन बुराइयों को तत्काल दूर करने के लिए मार्ग प्रशस्त करें और इस प्रकार सामान व्यक्तियों के सच्चे सम्मेलन के लिए रास्ता साफ करें। यदि आप इन बुराइयों को दूर करने के लिए कोई उपाय नहीं निकाल सकते और यदि मेरे इस पत्र का आपके हृदय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, तो इस महीने के ग्यारहवें दिन मैं आश्रम के उतने संगी-साथियों के साथ, जितने कि मैं ले सकूँगा, नमक-कानून की धारा को तोड़ने के लिए निकल पड़ूँगा |... मैं जानता हूँ कि आप मुझे गिरफ्तार करके मेरी योजना को विफल कर सकते हैं। मुझे आशा है कि अनुशासित ढंग पर हजारों लोग मेरे बाद इस काम को जारी रखने के लिए तैयार होंगे।...

"यदि आप इस मामले की मुझसे चर्चा करना चाहें और तब तक के लिए इस पत्र के प्रकाशन को स्थगित करना चाहें, तो तार दे दीजिए | तार पाते ही मैं खुशी से रोक दूँगा |...

"यह पत्र मैंने किसी भी प्रकार धमकी देने के लिए नहीं लिखा, बल्कि एक निष्क्रिय प्रतिरोध करनेवाले के सामान्य तथा पवित्र कर्तव्य के रूप में लिखा है। इसलिए मैं इसे एक ऐसे युवक अंग्रेज-मित्र के हाथ भेज रहा हूँ, जो भारतीय हित में विश्वास करता है।

आपका सच्चा मित्र

मो. क. गांधी"

इस पत्र को वाइसराय के पास ले जानेवाले एक अंग्रेज शांतिवादी (क्वेकर) रेजिनाल्ड रेनाल्ड्स थे। उन्होंने वाइसराय भवन में जाकर यह पत्र वाइसराय को दिया, जो उसे लेने के लिए मेरठ का पोलो मैच छोड़कर तत्काल लौट आए थे।

अरविन ने उत्तर न देना ही पसंद किया | उनके सचिव ने कुछ शब्दों में प्राप्ति-स्वीकार करते हुए लिख भेजा-"हिज एक्सेलेन्सी को यह जानकर खेद हुआ कि आप ऐसी कार्य-प्रणाली पर विचार कर रहे हैं, जिसमें कानून का उल्लंघन और सार्वजनिक शांति को खतरा स्पष्ट रूप से अवश्यंभावी है।"

इस कानून और व्यवस्था के पुर्जे ने, जिसमें न्याय और नीति का मामला सुलझाने की अस्वीकृति दी गई थी, गांधीजी के मुँह से ये शब्द निकलवाए—"मैंने घुटने टेककर रोटी माँगी और बदले में मुझे पत्थर मिला।" अरविन ने गांधीजी से मिलने से इन्कार कर दिया। उन्हें गिरफ्तार भी नहीं कराया। गांधीजी ने कहा-"सरकार बड़ी हैरान और परेशान है |" विद्रोही को न पकड़ना खतरे की बात थी और पकड़ते, तो उसमें भी खतरा था।

11 मार्च को सारा देश जोश और कौतूहल से उमड़ रहा था।

गांधीजी को प्रतीत हुआ कि जीवन का यह सबसे अच्छा अवसर है।

12 मार्च को प्रार्थना करके गांधीजी तथा आश्रम के अठहत्तर सदस्यों ने साबरमती से डांडी के लिए प्रस्थान किया | गांधीजी के हाथ में एक इंच मोटी और 54 इंच लंबी लाठी थी, जिसके एक ओर लोहा लगा था। धूल-भरे रास्तों और गाँवों में होकर गांधीजी और उनके 78 अनुयायियों ने 24 दिन में 200 मील रास्ता पार किया | गांधीजी ने कहा-"हम लोग भगवान् के नाम पर कूच कर रहे हैं।"

जब 5 अप्रैल को गांधीजी डांडी पहुँचे, तो आश्रमवासियों का यह छोटा-सा दल बढ़ते-बढ़ते कई हजार की अहिंसक सेना बन गया।

5 अप्रैल की रात-भर आश्रमवासियों ने प्रार्थना की और सुबह सब लोग गांधीजी के साथ समुद्र तट पर गए। गांधीजी ने समुद्र में गोता लगाया, किनारे पर लौटे और लहरों का छोड़ा

हुआ कुछ नमक उठाया | इस प्रकार गांधीजी ने ब्रिटिश सरकार के उस कानून को तोड़ दिया, जिसके अनुसार सरकारी ठेके से न लिया हुआ नमक रखना गुनाह था।

एक शक्तिशाली सरकार को सार्वजनिक रूप से चुनौती देते हुए चुटकी-भर नमक उठाना और मुजरिम बन जाना-इसके लिए एक महान कलाकार की सूझबूझ, शान और प्रदर्शनात्मक बुद्धि की आवश्यकता थी।

नमक उठाने के बाद गांधीजी वहाँ से हट गए। इससे भारत-भर को इशारा मिल गया।

इसके बाद तो बिना हथियारों का बलवा हो गया। भारत के लंबे समुद्र-तट पर का हर एक ग्रामवासी नमक बनाने के लिए तसला लेकर समुद्र में उतर पड़ा | पुलिस ने सामूहिक रूप से गिरफ्तारियाँ शुरू कर दीं | पुलिस ने बल-प्रयोग भी शुरू कर दिया। सत्याग्रही लोग गिरफ्तारी का प्रतिरोध नहीं करते थे; परंतु अपने बनाए हुए नमक की जब्ती का प्रतिरोध करते थे।

गाँवों में लाखों लोग अपना नमक बनाने लगे। नमक-सत्याग्रह सारे देश में फैल गया। लगभग एक लाख राजनैतिक अपराधी जेलों में ठूँस दिए गए |

गांधीजी ने डांडी के समुद्र-तट पर नमक बनाया | उसके एक महीने बाद सारा भारत क्षुब्ध होकर विद्रोह की भावना से उबल रहा था। परंतु चटगाँव के सिवा भारत में कहीं भी हिंसा नहीं हुई और कांग्रेस की ओर से तो कहीं हिंसा हुई ही नहीं |

4 मई को गांधीजी का शिविर कराडी में था। उसी रात को पौन बजे, जब सब सोए हुए थे, सूरत के अंग्रेज जिला मजिस्ट्रेट ने तीस हथियारबंद सिपाहियों और दो अफसरों के साथ बाड़े में धावा बोल दिया। अंग्रेज अफसर ने गांधीजी के चेहरे पर टार्च की रोशनी डाली | गांधीजी जाग उठे और मजिस्ट्रेट से बोले-"क्या आप मुझे चाहते हैं ?"

मजिस्ट्रेट ने औपचारिक रूप से पूछा :

"क्या आप मोहनदास करमचंद गांधी हैं?"

“जी हाँ ।”

“मैं आपको गिरफ्तार करने आया हूँ।”

“कृपया मुझे नित्य-कर्म के लिए कुछ समय दीजिए |”

मजिस्ट्रेट ने मान लिया।

मंजन करते-करते गांधीजी ने कहा-“मजिस्ट्रेट साहब, क्या मैं जान सकता हूँ कि मुझे किस अपराध में गिरफ्तार किया जा रहा है ? क्या दफा 124 मैं ?”

“जी नहीं, दफा 124 में नहीं। मेरे पास लिखित हुक्मनामा है।”

गांधीजी ने पूछा-“क्या आप उसे पढ़कर सुनाने की कृपा करेंगे ?”

मजिस्ट्रेट ने पढ़ा-“चूँकि गवर्नर-जनरल-इन-कौन्सिल मोहनदास करमचंद गांधी की कार्रवाइयों को खतरा समझते हैं, इसलिए उनका आदेश है कि उक्त मोहनदास करमचंद गांधी को 1827 के रेगुलेशन 35 के मातहत प्रतिबंध में रखा जाय और जब तक सरकार की मर्जी हो तबतक वह कैद भुगते और तुरंत यरवदा सेन्ट्रल जेल पहुँचाया जाय।”

गांधीजी ने पंडित खरे से भजन गाने को कहा | भजन के दौरान में गांधीजी ने सिर झुका लिया और प्रार्थना की | फिर वह मजिस्ट्रेट के पास गए और वह उन्हें तैयार खड़ी हुई गाड़ी में ले गया।

गांधीजी पर न तो मुकदमा चला, न सजा दी गई और न जेल की अवधि ही निश्चित की गई।

जेल में दाखिल होने पर अधिकारियों ने गांधीजी को नापा। वह 5 फुट 5 इंच ऊँचे थे। शायद कभी उन्हें फिर तलाश करने की जरूरत पड़े, इसलिए उन्होंने उनके शरीर पर किसी चिह्न की खोज की | दाहिनी जाँघ पर घाव का निशान था, नीचे के दाहिने पलक पर तिल था और बाईं कोहनी के नीचे फली के आकार का एक निशान।

गांधीजी को जेल में रहना प्रिय था। अपनी गिरफ्तारी के एक सप्ताह बाद उन्होंने मीराबहन को लिखा-“मैं यहाँ खूब खुश हूँ और नींद की कमी पूरी कर रहा हूँ।"

अपने मौनवार को उन्होंने आश्रम के छोटे बच्चों के नाम एक पत्र भेजा-

"छोटी चिड़ियाँ, मामूली चिड़ियाँ, बिना पंखों के नहीं उड़ सकतीं | हाँ, पंख हों तो सब उड़ सकती हैं। लेकिन बिना पंखोंवाले तुम लोग उड़ना सीख लोगे, तो तुम्हारी सारी मुसीबतें सचमुच दूर हो जाएँगी। और मैं तुम्हें उड़ना सिखाऊँगा।

"देखो, मेरे पंख नहीं हैं, लेकिन मन से मैं उड़कर रोज तुम्हारे पास पहुँच जाता हूँ। देखो, वह रही छोटी विमला, यह रहा हरी और यह है धरमकुमार। और मन से तुम भी उड़कर मेरे पास आ सकते हो!"

"मुझे बताओ कि तुम में से कौन-कौन प्रभुभाई की शाम की प्रार्थना में ठीक से प्रार्थना नहीं करते?

"तुम सब अपनी सही करके मुझे चिट्ठी भेजो | जो सही न कर सकें, वे क्रास (x) लगा दें।

-बापू के आशीर्वाद"

गिरफ्तारी के कुछ ही समय पहले गांधीजी ने वाइसराय के नाम एक पत्र का मसविदा तैयार किया था जिसमें लिखा था कि "यदि ईश्वर की इच्छा हुई," तो उनका इरादा कुछ साथियों को लेकर धरासना के नमक-भंडार पर धावा करने का है। ईश्वर को यह मंजूर नहीं था, परंतु गांधीजी के साथी इस योजना पर अमल करने के लिए चल पड़े। श्रीमती सरोजिनी नायडू के नेतृत्व में पच्चीस-सौ स्वयंसेवक उस स्थान पर जा पहुँचे।

यूनाइटेड प्रेस का विख्यात संवाददाता वेब मिलर वहाँ मौजूद था और उसने वहाँ का आँखों-देखा हाल लिखा है-"नमक की विशाल क्यारियों के चारों ओर खाइयाँ खोद दी गई थीं और काँटेदार तारों की बाड़ लगा दी गई थी। मणिलाल गांधी के नेतृत्व में गांधीजी की सेना बिलकुल खामोशी के साथ आगे बढ़ी और बाड़े से लगभग सौ गज की दूरी पर रुक गई | भीड़ में से एक छाँटा हुआ दस्ता आगे चला और खाइयों को पार करके काँटेदार तारों की बाड़ के पास पहुँचा। पुलिस- अफसरों ने उन्हें पीछे हटने का हुक्म दिया, परंतु वे

बढ़ते ही चले गए। हुक्म मिलते ही बीसियों सिपाही बढ़ते हुए लोगों पर एकदम टूट पड़े और उनके सिरों पर लोहे का मूँठ लगी लाठियाँ बरसाने लगे। किसी भी सत्याग्रही ने चोटें बचाने के लिए हाथ तक न उठाया |...न कोई लड़ाई की, न खींच-तान | सत्याग्रही केवल आगे बढ़े चले जाते थे-जबतक कि लाठियों की मार से गिर न जाएँ |"

एक अंग्रेज अफसर सरोजिनी नायडू के पास पहुँचा और बोला-"आपको गिरफ्तार किया जाता है।" मणीलाल को भी गिरफ्तार कर लिया गया।

अंग्रेज लोग भारतवासियों को डंडों और बंदूक के कुंदों से मार रहे थे | भारतवासी न तो गिड़गिड़ाते थे, न शिकायत करते थे, न पीछे हटते थे। इस चीज ने इंग्लैंड को बलहीन और भारत को अजेय बना दिया।

14 / विद्रोही के साथ मंत्रणा

इंग्लैंड के कितने ही मजदूरदली मंत्री और उनके समर्थक भारत की स्वाधीनता के हामी थे। गांधीजी और हजारों भारतीय राष्ट्रवादियों को जेल में रखना मजदूर-दल को लजानेवाली बात थी | लार्ड अरविन के लिए तो गांधीजी का कारावास परेशानी से अधिक था। इससे उनका शासन ही ठप हो गया था। ।

मैकडॉनल्ड (ब्रिटिश प्रधान-मंत्री) और अरविन के लिए यह स्थिति राजनैति दृष्टि से असहनीय थी | जेल में बैठे हुए गांधीजी उनके लिए उतनी ही परेशानी के हेतु थे, जितने सत्याग्रह-यात्रा पर जाते हुए या समुद्र-तट पर या आश्रम में।

अपनी उलझन और भारत में बढ़ते हुए विद्रोह को महसूस करके अधिकारियों ने महात्माजी की गिरफ्तारी के दो ही सप्ताह बाद, 19 और 20 मई को लंदन के मजदूरदली-पत्र डेली हेरल्ड के संवाददाता, खूबसूरत और लाल दाढ़ीवाले जार्ज स्लोकम को जेल में गांधीजी से मिलने की अनुमति दी। गांधीजी ने स्लोकम को वह शर्तें बतलाईं, जिन पर वह ब्रिटिश सरकार से समझौता करने के लिए तैयार हो सकते थे | जुलाई में वाइसराय की मर्जी से उदारदली नेता सर तेजबहादुर सप्रू व श्री जयकर मंत्रणा के लिए जेल में गांधीजी के पास गए | गांधीजी ने कह दिया कि कांग्रेस-कार्यसमिति से परामर्श किए बिना वह उनके सुझावों का जवाब नहीं दे सकते। तदनुसार मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू और सैयद महमूद को संयुक्त प्रांत की जेल से स्पेशल ट्रेन द्वारा गांधीजी के पास पूना-जेल पहुँचा गया, जहाँ श्रीमती नायडू और वल्लभभाई पटेल भी कैद थे।

दो दिन (14-15 अगस्त) की चर्चाओं के बाद नेताओं ने सार्वजनिक घोषणा की कि उनके तथा ब्रिटिश सरकार की स्थिति के बीच 'न पटनेवाली खाई' है।

12 नवंबर 1930 को लंदन में पहली गोलमेज परिषद् शुरू हुई | कांग्रेस का कोई प्रतिनिधि इसमें शामिल नहीं हुआ।

26 जनवरी 1931 को स्वाधीनता-दिवस पर अरविन ने गांधीजी, जवाहरलाल नेहरू तथा बीस से अधिक अन्य कांग्रेसी नेताओं को बिना शर्त रिहा कर दिया। इस सद्भावना-सूचक संकेत के सम्मान में गांधीजी ने वाइसराय को मुलाकात के लिए पत्र लिखा।

अरविन तथा गांधीजी की पहली मुलाकात 17 फरवरी को तीसरे पहर 2.30 बजे शुरू हुई और शाम के 6.10 बजे तक चली।

गांधीजी और अरविन 18 फरवरी को तीन घंटे तक और 19 को आधा घंटे तक फिर मिले | इस बीच अरविन अपने अधिकारियों को, छः हजार मील दूर लंदन, तार खटखटा रहे थे और गांधीजी नई दिल्ली में कांग्रेस-कार्यसमिति के सदस्यों के साथ लंबी बैठकें कर रहे थे। (मोतीलाल नेहरू का 6 फरवरी को देहांत हो चुका था)। दोनों दलों के बीच इधर-से-उधर दौड़ते हुए सप्रू, जयकर व शास्त्री गतिरोध टालने का प्रयत्न कर रहे थे।

कठिनाइयाँ पैदा होने लगीं। सात दिन तक कोई बातचीत नहीं हुई | 1 मार्च को गांधीजी फिर अरविन से मिलने आए और दोनों आधी रात के बाद तक बातें करते रहे। गांधीजी रात को 2 बजे पैदल ही अपने निवास-स्थान पर पहुँचे।

अंत में बहुत-से आपसी वाद-विवाद के बाद 5 मार्च को सुबह गांधी-अरविन समझौते पर हस्ताक्षर हो गए | दो राष्ट्रों के राजनीतिज्ञों ने एक इकरारनामे पर, एक सुलहनामे पर, एक स्वीकृत मसविदे पर, हस्ताक्षर कर दिए, जिसका हर वाक्य, हर शर्त, कड़ी सौदेबाजी से ठोक-पीटकर तैयार की गई थी | ब्रिटिश प्रवक्ताओं ने दावा किया कि इस लड़ाई में अरविन की जीत हुई और इस दावे के पक्ष में काफी कहा जा सकता था। परंतु महात्माजी जितनी दूर की बातों पर विचार करते थे, उसके लिहाज से भारत और इंग्लैंड के बीच सिद्धांत रूप से जो बराबरी का दर्जा कायम या था, वह उस व्यावहारिक रियासत से अधिक महत्त्वपूर्ण था, जिसे वह इस अनिच्छुक साम्राज्य से ऐंठ सकते थे।

समझौते पर हस्ताक्षर होने के तुरंत ही बाद सरकार पर उसे भंग करने के आरोप लगाए गए और इस बार गांधीजी को नए वाइसराय लार्ड विलिंगडन से फिर मंत्रणाएँ करनी पड़ीं।

मामला तय होने के बाद कराची के कांग्रेस-अधिवेशन ने, जो सुभाषचंद्र बोस के कथनानुसार-"महात्माजी की लोकप्रियता तथा प्रतिष्ठा का सर्वोच्च शिखर था", गांधीजी को दूसरी गोलमेज परिषद् के लिए अपना एक-मात्र प्रतिनिधि चुना।

गांधीजी 12 सितंबर को लंदन पहुँचे और 5 दिसंबर तक इंग्लैंड में रहे | वह लंदम के ईस्ट एंड (पूर्वी छोर) में किंग्स्ले हाल नामक भवन में कुमारी मयुरिअल लेस्टर के मेहमान होकर ठहरे।

मित्रों ने उनसे कहा कि यदि वह किसी होटल में ठहरें, तो उन्हें काम के लिए तथा आराम के लिए कई घंटे बच सकते हैं, परंतु गांधीजी ने कहा कि उन्हें अपनी ही तरह के गरीब लोगों के बीच रहने में आनंद मिलता है।

सुबह के समय गांधीजी किंग्स्ले हॉल के चारों ओर की गलियों में घूमते थे, जिनमें निम्न वर्ग के लोग रहते थे। काम पर जानेवाले नर-नारी मुस्कराहट के साथ उनका अभिवादन करते थे और कुछ लोग उनसे बातचीत भी करने लगते थे | बच्चे दौड़कर आते और उनका हाथ पकड़ लेते।

समाचार-पत्रों के लिए गांधीजी अद्भुत सामग्री थे और पत्रकार लोग उनकी हरएक गतिविधि के समाचार देते थे। जार्ज स्लोकोंव ने गांधीजी की उदारता के बारे में एक कहानी लिखी और उदाहरण के तौर पर बतलाया कि जब इंग्लैंड के युवराज भारत गए थे, तब गांधीजी उनके चरणों में गिर गए। अगली बार स्लोकोंव से मुलाकात होने पर गांधीजी मुस्कराए और बोले-"मि. स्लोकम, यह बात तो आपकी कल्पना को भी लजाती है। मैं भारत के गरीब-से-गरीब अछूत के आगे घुटने नवा दूँगा और उसके चरणों की धूल ले लूँगा, परंतु मैं युवराज तो क्या, बादशाह तक के पाँवों में नही गिरूँगा, केवल इस कारण से कि वह धृष्टतापूर्ण पराक्रम का प्रतिनिधि है |"

बादशाह जार्ज पंचम तथा रानी मेरी के साथ चाय-पान के लिए गांधीजी बकिंघम महल गए। इस घटना से पूर्व सारे इंग्लैंड में यह उत्सुकता रही कि वह क्या पहनकर जाएँगे। वह

धोती, चप्पल, दुशाला और अपनी लटकती हुई घड़ी पहनकर गए। बाद में उनसे किसी ने पूछा कि वह काफी कपड़े पहनकर गए थे या नहीं? उन्होंने उत्तर दिया-"बादशाह इतने कपड़े पहने हुए थे, जो हम दोनों के लिए काफी थे।"

इंग्लैंड के युद्धकालीन प्रधान मंत्री डेविड लॉयड जार्ज ने गांधीजी को चर्ट में अपने फार्म पर बुलाया। उनकी तीन घंटे बातें हुईं। 1938 में जब मैं लॉयड जार्ज से मिलने चर्ट गया, तो उन्होंनें गांधीजी की मुलाकात का जिक्र किया। उन्होंने बताया कि नौकरों ने वह काम किया, जो आजतक कोई भी मेहमान उन्हें करने के लिए प्रेरित नहीं कर सका था-वे सब-के-सब इस संत से मिलने के लिए बाहर निकल आए।

चार वर्ष बाद मैंने गांधीजी को बतलाया कि लॉयड जार्ज ने उनकी मुलाकात के बारे में मुझसे बात की थी। गांधीजी ने उत्सुकता से पूछा-"अच्छा, उन्होंने क्या कहा था ?"

उन्होंने कहा कि आप उनके कोच पर बैठ गए और ज्योंही आप बैठे कि एक काली बिल्ली, जिसे उन लोगों ने पहले कभी नहीं देखा था, खिड़की में से आकर आपकी गोद में बैठ गई|"

गांधीजी ने याद करके कहा-"यह ठीक है।"

"लॉयड जार्ज ने यह भी कहा कि जब आप चले गए, तो बिल्ली भी गायब हो गई |"

गांधीजी ने कहा-"यह बात मुझे मालूम नहीं |"

मैंने फिर कहा-"लॉयड जार्ज ने बताया कि जब मिस स्लेड चर्ट में उनसे मिलने आईं, तो वही बिल्ली फिर आ गई ।"

"यह बात भी मुझे मालूम नहीं," गांधीजी ने कहा।

चार्ली चैपलिन ने गांधीजी से मिलना चाहा | गांधीजी ने कभी उनका नाम नहीं सुना था, उन्होंने कभी चल-चित्र नहीं देखा था। जब उन्हें चार्ली चैपलिन के बारे में बतलाया गया; तो उन्होंने इन्कार कर दिया। परंतु जब उन्हें यह बताया गया कि चार्ली चैपलिन का जन्म एक गरीब घर में हुआ था, तो उन्होंने डा० कटियाल के घर पर उनसे मुलाकात की। चार्ली

चैपलिन का सबसे पहला सवाल यह था कि मशीन के बारे में उनका क्या मत है | संभव है कि इस प्रश्न के उत्तर से ही इस अभिनेता को बाद में अपनी एक फिल्म बनाने की प्रेरणा मिली हो ।'

जार्ज बर्नार्ड शा ने भी गांधीजी से मिलने का सम्मान प्राप्त किया। शा ने असाधारण नम्रता के साथ गांधीजी से हाथ मिलाया और अपने-आपको महात्मा माइनर (छोटा महात्मा) बतलाया | शा के विनोद में गांधीजी को खूब मजा आया।

गांधीजी लार्ड अरविन, जनरल स्मट्स, कैंटरबरी के आर्कबिशप, हैरल्स लास्की, सी.पी. स्काट, आर्थर हैंडरसन आदि सैकड़ों लोगों से मिले। चर्चिल ने उनसे मिलने से इन्कार कर दिया।

गांधीजी मैडम मेरिया मांटेसरी के ट्रेनिंग कॉलेज में गए, जहाँ अपने भाषण में उन्होंने कहा- "मुझे पूरा विश्वास है कि बच्चा जन्म से शरारती नहीं होता। जब बच्चा बढ़ रहा हो, उस समय माता-पिता यदि अपना आचरण अच्छा रखें, तो बच्चा स्वभाव से ही सत्य और प्रेम का नियम पालन करेगा। सैकड़ों-मैं कहनेवाला था, हजारों-बच्चों के अपने अनुभव के आधार मैं जानता हूँ कि मान-अपमान की भावना उनमें आप-हमसे अधिक होती है ।...ईसा मसीह ने एक बहुत ही तथ्यपूर्ण बात कही कि ज्ञान बच्चों के मुँह से निकलता है। मैं इस बात में विश्वास करता

हूँ |..."

गांधीजी दो बार ऑक्सफोर्ड गए और उनकी ये यात्राएँ स्मरणीय हैं । पहली बार वह बैलिओल के मास्टर, प्रोफैसर लिंडसे के यहाँ ठहरे। दूसरी बार वह डा० एडवर्ड टॉमसन के घर पर ठहरे। यहाँ उनकी बातचीत एक मंडली के साथ हुई, जिनमें प्रोफैसर लिंडसे, गिल्बर्ट मरे, प्रोफेसर एस. कूपलैंड, सर माइकेल सैडलर, पी. सी. लियॉन तथा अन्य सुलझे हुए दिमागवाले व्यक्ति थे।

इस दिमागी झड़प का जिक्र करते हुए टॉमसन ने लिखा है-"तीन घंटे तक उन्हें छाना गया और उनसे जिरह की गई |-यह काफी थका देनेवाली परीक्षा थी, परंतु वह एक क्षण के लिए भी विचलित या निरुत्तर नहीं हुए। मेरे हृदय में पूर्ण विश्वास जम गया कि परम आत्म-संयम और अनुद्विग्नता के मामले में संसार ने सुकरात के समय से आजतक इनकी टक्कर का पैदा नहीं किया | और एक-दो बार जब मैंने अपने-आपको उन लोगों की जगह रखा, जिन्हें इस अजेय स्थिरता और अविचलता का सामना करना पड़ा, तो अपने खयाल से मैं समझ गया कि एथेंसवासियों ने उस शहीद-तार्किक को जहर क्यों पिलाया था |"

इंग्लैंड में चौरासी दिन के निवास में गांधीजी के जितने सार्वजनिक और खानगी, सरकारी और गैर-सरकारी वक्तव्य हुए, उन सबमें उन्होंने सबसे ऊपर यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया कि भारत की स्वाधीनता से उनका क्या तात्पर्य था |

अपने आकर्षण, सरलता, मानवता और मिलनसारी से गांधीजी सबको मित्र बना लेते थे। उन्होंने इंग्लैंड के ईसाइयों का हृदय जीत लिया और वे उन्हें बड़े भाई और बंधु की तरह मानने लगे। बहुत-से लोग उन्हें 'दुरूह' समझते थे, और वे निस्संदेह दुरूह हो भी सकते थे | परंतु वह प्रचंड-से-प्रचंड व्यक्ति की शत्रुता को भी नरम कर देते थे। वह तो शेर की माँद में घुस गए और वह लंकाशायर में जा पहुँचे, जहाँ विदेशी कपड़े के विरुद्ध और खादी के पक्ष में उनके आंदोलन ने बेकारी और लाभों में घाटे पैदा कर दिए थे। एक सभा में एक आदमी ने कहा-"मैं एक बेकार हूँ, परंतु यदि मैं भारत में होता, तो मैं भी वही कहता जो गांधी कहता है।"

गांधीजी की रक्षा के लिए सरकार ने स्काटलैंड यार्ड के दो जासूस—सार्जेंट इवान्स और सार्जेंट रोजर्स-तैनात किए | ये दोनों 'इस छोटे-से आदमी' पर फिदा हो गए। गांधीजी तो उन्हें न दूर-दूर रखते थे, न उनकी उपेक्षा करते थे। वह उनसे बातें करते थे और उनके घरों पर भी गए | इंग्लैंड से रवाना होने से पहले उन्होंने इच्छा प्रकट की कि इन जासूसों को उनके साथ ब्रिंदिसी (इटली) तक भेजा जाय | नौकरशाही ने उनकी इस निराली प्रार्थना का कारण पूछा।

गांधीजी ने उत्तर दिया-"क्योंकि वे मेरे परिवार के अंग हैं।"

व्याख्यानों, भाषणों, वाद-विवादों, समाचार-पत्रों के लिए मुलाकातों, यात्राओं, अनगिनती व्यक्तिगत कार्यक्रमों और ढेर-के-ढेर पत्रों के उत्तरों के बीच वह उस सरकारी काम में भी भाग लेते थे, जिसके कारण वे लंदन आए थे, अर्थात् गोलमेज परिषद् | सरकारी तथा गैर-सरकारी गतिविधियों में वह दिन-रात के इक्कीस घंटे व्यस्त रहते थे | सुरक्षित डायरियों से पता लगता है कि कभी-कभी वह सुबह 2 बजे सोते थे, 3.45 पर प्रार्थना के लिए उठ जाते थे, 5 से 6 तक फिर आराम करते थे और इसके बाद दूसरी सुबह को 1 या 2 बजे तक उन्हें दम लेने को फुरसत नहीं मिलती थी | इस कार्यक्रम ने उन्हें थका डाला। वह अपने शरीर को सहनशक्ति की हद से आगे हाँकने में मजा लेते थे। नतीजा यह हुआ कि गोलमेज परिषद् को वह बढ़िया चीज नहीं मिली, जो वह दे सकते थे। फिर भी परिषद् में भाग लेनेवालों ने उनके मुँह से कुछ निराली और अनोखी बातें सुनीं।

गोलमेज परिषद् बुरी तरह असफल रही। भारत के धार्मिक भेदों को गहरा करके इसने भविष्य पर अशुभ और दुःखदाई असर डाला |

परिषद् ने एक अल्पसंख्यक समिति नियुक्त की, जिसमें छः अंग्रेज, तेरह मुसलमान, दस हिन्दू, दो अछूत, दो मजदूर प्रतिनिधि, दो सिख, एक पारसी, दो भारतीय ईसाई, एक ऐंग्लो-इंडियन, दो भारत-प्रवासी अंग्रेज और चार महिलाएँ रखे गए। केवल महिलाओं ने पृथक निर्वाचन की माँग नहीं की। समिति के तेरह मुसलमानों में से केवल एक राष्ट्रीय मुसलमान था, जो राजनीति में भारतीय और धर्म में पैगंबर का अनुयायी था। बाकी बारह धर्म को राज्य के साथ मिलाते थे और अपने धार्मिक समुदाय के हितों को समूचे भारत के कल्याण से ऊपर रखते थे।

परिषद् के मुख्य अधिवेशन में भाषण देते हुए श्री फजलुलहक ने कहा था—"मैं नहीं समझता कि सर आस्टिन चेम्बरलेन को कभी डा० मुंजे तथा मुझ जैसे मनुष्य-जाति के दो बेमेल नमूनों से पाला पड़ा हो, जो अलग-अलग धर्मों को मानते हैं और अलग-अलग ईश्वरों की पूजा करते हैं।"

"एक ही ईश्वर!" एक सदस्य बीच में बोल उठे।

श्री फजलुलहक ने इस पर आपत्ति जताते हुए कहा-"नहीं, एक ही ईश्वर नहीं हो सकता। मेरा खुदा पृथक निर्वाचन चाहता है।"

मुसलमान प्रतिनिधि ईश्वर के भी टुकड़े कर रहा था। परंतु गांधीजी न तो ईश्वर के टुकड़े करना चाहते थे, न भारत के | उन्होंने परिषद् से कह दिया कि वह पृथक निर्वाचन के बिलकुल विरोधी हैं। उन्होंने कहा कि स्वाधीन भारत में भारतीय सब भारतीयों को भारतीय की तरह मत देंगे। भारतीय राष्ट्रीयता का गुण और बाहरवालों के लिए उसकी प्रेरणा यह नहीं थे कि वह नए राष्ट्रीय व्यवधान पैदा करे-यह तो पहले ही से बहुत थे-बल्कि यह कि इंग्लैंड और संसार को साम्राज्यवाद के भयानक प्रभाव से मुक्त करे और भारत में धर्म को राजनीति से अलग कर दे | इसके विपरीत अंग्रेजों की व्यवस्था में गोलमेज परिषद् ने पुराने अलगावकारी प्रभावों को बढ़ाया और नए पैदा करने का प्रयत्न किया।

परम-धर्मनिष्ठ हिन्दू महात्मा गांधी के लिए धर्म, नस्ल, जाति, वर्ण या अन्य किसी आधार पर किसी के विरुद्ध भेद-भाव रखना असंभव था। अछूतों के समानाधिकार के लिए और उस नई पीढ़ी को शिक्षित करने के लिए, जो हिन्दू या मुसलमान या पारसी या ईसाई न होकर भारतीय थी, गांधीजी की देन जागतिक महत्त्व रखती है।

1 दिसंबर 1931 को गोलमेज परिषद् के मुख्य अधिवेशन में उसके सभापति जेम्स रेमज़े मैकडॉनल्ड, इंग्लैंड के प्रधान-मंत्री, ने गांधीजी का हवाला देते हुए उन्हें हिन्दू कहा।

"हिन्दू नहीं!" गांधीजी ने पुकारा।

अपने भगवान् के लिए गांधीजी हिन्दू थे। ब्रिटिश प्रधान मंत्री के लिए तथा राजनीति में वह भारतीय थे। लेकिन गोलमेज परिषद् में ऐसे भारतीय गिने-चुने थे और भारत में तो और भी कम।

---

1. चार्ली चैपलिन की मशहूर फिल्म 'मॉडर्न टाइम्स' में मशीनों का मज़ाक उड़ाया गया है|

15 / वापसी

गांधीजी ने संसार के लगभग सारे स्वतंत्र देशों के व्यक्तियों और समुदायों से क्षमा-याचना की | भारत में काम होने के कारण वह उनके निमंत्रण स्वीकार नहीं कर सकते थे। घर लौटते हुए वह एक दिन के लिए पेरिस ठहरे। एक सिनेमा भवन में मेज पर बैठकर उन्होंने एक बड़ी सभा में भाषण दिया। इसके बाद वह रेल से स्वीजरलैण्ड गए, जहाँ वह लेमान झील के पूर्वी छोर पर विलेन्यूवे में रोम्याँ रोलाँ के साथ पाँच दिन रहे।

रोम्याँ रोलाँ, जिनका जीन क्रिस्तोफ बीसवीं सदी की एक महान साहित्यिक कृति है, काउंट लियो टाल्सटाय से प्रभावित हो चुके थे। रोलाँ ने टाल्सटाय और गांधीजी के बीच विवेकपूर्ण तुलना की | 1924 में उन्होंने कहा था-"गांधीजी के लिए हर चीज प्रकृत है-नातिशय, सादा और शुद्ध-और उनके सारे संघर्ष धार्मिक सौमयत्व से पूत हैं। दूसरी ओर टाल्सटाय के लिए हर वस्तु अभिमान के विरुद्ध अभिमानपूर्ण विद्रोह है, घृणा के विरुद्ध घृणा है और वासना के विरुद्ध वासना है | टाल्सटाय में हर वस्तु हिंसात्मक है, यहाँ तक कि उनका अहिंसा का सिद्धांत भी |"

टाल्सटाय को तूफान ने झकझोर दिया था, गांधीजी शांत और धीर थे। गांधीजी अपनी पत्नी से या किसी भी चीज से दूर भागनेवाले नहीं थे। जिस हाट में गांधीजी बैठे हुए थे, उसमें करोड़ों मनुष्य अपने-अपने सौदों और ठेलों और चिन्ताओं और विचारों को लिए इधर-उधर जाते-आते थे, परंतु गांधीजी अविचल भाव बैठे थे और उनमें तथा उनके चारों ओर निस्तब्धता थी | हाथीदाँत की मीनार में या कैलास की ऊँचाई पर गांधीजी का दम घुट जाता है।

रोलाँ और गांधीजी 1931 से पहले कभी नहीं मिले थे। रोलाँ को गांधीजी का परिचय रवीन्द्रनाथ और एंड्रयूज की बातों से प्राप्त हुआ था। उन्होंने गांधीजी की रचनाएँ भी पढ़ी थीं। रवीन्द्र की भाँति रोलाँ भी गायक थे। रामकृष्ण परमहंस पर भी उन्होंने एक पुस्तक लिखी थी।

रोलाँ गांधीजी को संत मानते थे। सन् 1924 में उन्होंने गांधीजी के जीवन-चरित लिखा था- “गांधीजी तो बहुत ऊँचे संत हैं, बड़े ही पवित्र और उन वासनाओं से मुक्त, जो मनुष्य में सुप्त पड़ी रहती हैं।”

5 दिसंबर को गांधीजी के पहुँचने से पूर्व उनकी यात्रा के संबंध में रोलाँ के पास हजारों पत्र आ गए थे। एक इटली निवासी गांधीजी से यह जानना चाहता था कि अगली राष्ट्रीय लाटरी में कौन से नंबर के टिकट पर इनाम आयगा, स्वीजरलैण्ड के कुछ संगीतज्ञों ने गांधीजी को खिड़की के नीचे रोज रात को संगीत सुनाने का प्रस्ताव भेजा था, लेमान के दूध-विक्रेताओं के मंडल ने ‘भारत के बादशाह' को दूध-मक्खन आदि देने की इच्छा प्रकट की थी। पत्रकारों ने प्रश्नावलियाँ भेजीं और रोलाँ के देहाती आवास के आस-पास अड्डा जमा लिया, फोटोग्राफरों ने मकान पर घेरा डाल दिया, पुलिस ने रिपोर्ट दी कि भारतीय आगंतुक को देखने की आशा में यात्री लोग तमाम होटलों में भर गए हैं।

बासठ वर्ष के गांधीजी और पैंसठ वर्ष के रोलाँ पुराने मित्रों की भाँति मिले और दोनों ने एक-दूसरे के साथ पारस्परिक आदर का सहृदयतापूर्ण व्यवहार किया। गांधीजी मिस स्लेड, महादेव देसाई, प्यारेलाल नैयर तथा देवदास के साथ शाम को पहुँचे, जब ठंड पड़ रही थीं और मेंह बरस रहा था। दूसरा दिन सोमवार गांधीजी का मौन-दिवस था और रोलाँ ने 1900 से तबतक की यूरोप की दुःखपूर्ण नैतिक तथा सामाजिक अवस्था पर नब्बे मिनट तक व्याख्यान दिया। गांधीजी सुनते रहे और पेन्सिल से कुछ प्रश्न लिखते रहे।

मंगलवार को गांधीजी की रोम-यात्रा के बारे में चर्चा हुई । वह मुसोलिनी तथा अन्य इटालियन नेताओं के साथ पोप से भी मिलना चाहते थे। रोलाँ ने उन्हें चेतावनी दी कि फासिस्त शासन उनकी उपस्थिति का अपने दुष्ट अभिप्राय के लिए उपयोग करेगा। गांधीजी ने कहा कि अगर वे लोग उनके चारों ओर घेरा डालेंगे, तो वह उसे तोड़कर बाहर निकल जाएँगे। रोलाँ ने सुझाया कि वह कुछ शर्तों के साथ वहाँ जाएँ। गांधीजी ने उत्तर दिया कि पहले ही से ऐसी व्यवस्था करना उनकी आस्था के विरुद्ध है। रोलाँ अपनी बात पर जोर देते रहे। तब गांधीजी ने कहा-“अच्छा, बतलाइए कि रोम में ठहरने की मेरी योजना

पर आपकी अंतिम राय क्या है?" रोलाँ ने सलाह दी कि उन्हें किन्हीं स्वतंत्र व्यक्तियों के यहाँ ठहरना चाहिए | गांधीजी ने वादा किया और इस वादे पर अमल भी किया।

रोलाँ ने यूरोप के बारे में अपनी कही हुई बातों पर गांधीजी के विचार जानने चाहे। गांधीजी ने अंग्रेजी में जवाब दिया, जिसका फ्रांसीसी भाषा में रोलाँ की बहन ने अनुवाद किया। उन्होंने कहा-"इतिहास से मैंने बहुत कम सीखा है। मेरी पद्धति अनुभवात्मक है। मेरे सारे परिणामों का आधार व्यक्तिगत अनुभव है।" उन्होंने स्वीकार किया कि यह खतरनाक और गलत रास्ते पर ले जानेवाला हो सकता है, परंतु मुझे खुद अपने मतों में आस्था रखना आवश्यक है। मेरा सारा भरोसा अहिंसा में है। यह यूरोप को भी बचा सकती है। इंग्लैंड में कुछ मित्रों ने उन्हें उनकी अहिंसात्मक पद्धति की कमजोरियाँ बताने की कोशिश की, परंतु उन्होंने कह दिया कि "मैं तो इसी में विश्वास करता रहूँगा, भले ही सारा संसार इस पर शंका करता रहे |"

अगले दो दिन गांधीजी ने लोजाँ में और जेनेवा में बिताए। दोनों जगह उन्होंने भाषण दिए और नास्तिकों ने तथा अन्य लोगों ने घंटों उनसे जिरह की । गांधीजी ने पूर्ण शांति के साथ उन्हें उत्तर दिए और रोलाँ ने लिखा है-"उनके चेहरे पर जरा भी शिकन नहीं पड़ी ।"

10 दिसंबर को दोनों की बातचीत फिर चली | रोलाँ ने जेनेवा में गांधीजी के कहे हुए इन शब्दों की याद दिलाई कि "सत्य ईश्वर है"। कला में सत्य की समस्या से अपने संघर्ष का जिक्र करते हुए रोलाँ ने कहा-"अगर यह सही है कि 'सत्य ईश्वर है', तो मुझे लगता है कि इसमें ईश्वर के साथ एक महत्त्वपूर्ण गुण—आनंद-की कमी है, क्योंकि मैं आनंदविहीन किसी ईश्वर को नहीं मानता |"

गांधीजी ने उत्तर दिया-"मैं कला और सत्य के बीच कोई भेद नहीं मानता | मैं इस उक्ति से सहमत नहीं हूँ कि 'कला कला के लिए' है। मेरी मान्यता है कि समस्त कलाओं का आधार सत्य होना चाहिए। यदि सुंदर वस्तुएँ सत्य को व्यक्त करने के बजाय असत्य को व्यक्त करें, तो मैं उन्हें त्याग दूँगा। मैं इस गुर को मानता हूँ कि 'कला आनंद प्रदान करती है और

श्रेष्ठ होती है', परंतु यह भी अपनी बताई हुई शर्त के साथ। कला में सत्य की अभिव्यक्ति के लिए मैं बाह्य वस्तुओं का सही चित्रण आवश्यक नहीं समझता। केवल सजीव वस्तुएँ आत्मा को सजीव आनंद उपलब्ध कराती हैं और आत्मा को ऊँचा उठाती हैं। "

रोलाँ असहमत तो नहीं हुए, परंतु उन्होंने सत्य की तथा ईश्वर की खोज में प्रयत्न पर जोर दिया। उन्होंने अपनी अलमारी से एक पुस्तक निकाली और गेटे के कुछ उद्धरण सुनाए। रोलाँ ने बाद में स्वीकार किया कि उनका खयाल था कि गांधीजी के ईश्वर को मनुष्य के दुःख में आनंद मिलता है।

उन्होंने अगले महायुद्ध के खतरे पर भी बातें कीं। गांधीजी ने अपना मत बतलाते हुए कहा-“यदि कोई राष्ट्र हिंसा का जवाब हिंसा से दिए बिना आत्मसमर्पण की वीरता दिखाए, तो यह सबसे अधिक प्रभावशाली पाठ होगा, परंतु इसके लिए चरम-आस्था की आवश्यकता है |”

आखिरी दिन, 11 दिसंबर को, रोलाँ ने गांधीजी से उन सवालों को लेने की प्रार्थना की, जो पेरिस की दि प्रोलिटेरियन रिवोल्यूशन (सर्वहारा क्रांति) नामक पत्रिका के संपादक पीयरी मोनाते ने भेजे थे। एक सवाल के जवाब में गांधीजी ने दृढ़ता से कहा कि यदि मजदूर-वर्ग पूरी तरह संगठित हो जाय, तो वह मालिकों से अपनी शर्तें मनवा सकता है-“संसार में मजदूर-वर्ग ही एकमात्र शक्ति है |” परंतु रोलाँ ने बीच में बोलते हुए कहा कि पूँजीपति वर्ग श्रमिकों में फूट डाल सकता है, हड़ताल तोड़नेवाले मजदूर हो सकते हैं। तब मजदूर-वर्ग को जागृत अल्पसंख्यक सर्वहारा वर्ग का एकाधिपत्य स्थापित करके मजदूर-वर्ग की जनता को अपने हित में संयुक्त होने के लिए बाध्य कर देना चाहिए।

गांधीजी ने निश्चयपूर्वक जवाब दिया-“मैं इसके बिलकुल विरुद्ध हूँ |” रोलाँ ने इस विषय को छोड़ दिया और अन्य विषय उठाए। उन्होंने पूछा-"आप ईश्वर को क्या मानते हैं ? क्या वह आध्यात्मिक व्यक्तित्व है, अथवा संसार पर शासन करनेवाला बल ?”

गांधीजी ने उत्तर दिया-"ईश्वर कोई व्यक्ति नहीं है ।·ईश्वर तो एक शाश्वत सिद्धांत है | इसलिए मैं कहता हूँ कि 'सत्य ईश्वर है' |·"सत्य की आवश्यकता में तो नास्तिक भी शंका नहीं करते |"

इटली की सरकार चाहती थी कि गांधीजी उसके मेहमान हों और इसके लिए उसने तैयारियाँ भी कर ली थीं । परंतु गांधीजी ने नम्रता के साथ इन्कार कर दिया और वह रोलाँ के मित्र जनरल मॉरिस के यहाँ ठहरे। रोम पहुँचते ही गांधीजी ड्यूचे (मुसोलिनी) से मिले । एक सरकारी विज्ञप्ति में बताया गया कि यह मुलाकात बीस मिनट तक हुई | गांधीजी के साथियों का खयाल है कि मुलाकात में दस ही मिनट लगे थे। गांधीजी मुसोलिनी के साथ कोई मानसिक संपर्क न स्थापित कर सके | बाद में गांधीजी ने कहा था-"उसकी बिल्ली जैसी आँखें हैं, जो हर दिशा में फिरती रहती थीं, मानो बराबर घूमती रहती हों | उसकी आँखों के रोब के सामने आगंतुक इस प्रकार पस्त हो जाता था, जैसेकि डर का मारा हुआ चूहा दौड़कर सीधा बिल्ली के मुँह में चला जाता है।

"मैं तो इस तरह हक्का-बक्का होनेवाला नहीं था," गांधीजी ने बतलाया-"लेकिन मैने देखा कि उसने अपने आस-पास वस्तुओं को इस तरह सजा रखा था कि कोई भी आगंतुक भय से आतंकित हो जाय | उसके पास पहुँचने के लिए जिन रास्तों से गुजरना होता है, उनमें तलवारें तथा अन्य हथियार बहुतायत से जड़े हुए हैं।" गांधीजी ने देखा कि मुसोलिनी के दफ्तर में भी हथियार टँगे हुए थे, परंतु उन्होंने यह भी कहा कि वह अपने शरीर पर कोई हथियार धारण नहीं करता ।

पोप गांधीजी से नहीं मिला। गांधीजी के दल के कुछ लोगों का खयाल था कि 'पवित्र पिता' ने शायद इस ड्यूचे (मुसोलिनी) की इच्छाओं का पालन किया, परंतु ये बातें उन्हें मालूम नहीं। कुछ लोगों का अनुमान था कि यह मुलाकात केवल मुसोलिनी और वैटिकन (पोप का राज्य) के संबंधों के कारण नहीं, बल्कि आंगल-इटालियन संबंधों के कारण भी नहीं हो पाई | आखिर गांधीजी तो एक ब्रिटिश-विरोधी विद्रोही थे !

वैटिकन का पुस्तकालय गांधीजी के लिए आकर्षण की वस्तु था और सेन्ट पीटर के गिरजे में उन्होंने दो घंटे खुशी के साथ बिताए। सिस्तीन गिरजे में वह सूली पर चढ़े हुए ईसा के सामने खड़े होकर रो पड़े | महादेव देसाई से उन्होंने कहा-"इसे देखकर आँखों में आँसू आए बिना नहीं रहते |"

रोम्याँ रोलाँ ने कला की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया था । गांधीज ने गर्व के साथ कहा-"मैं नहीं समझता कि यूरोपीय कला भारतीय कला से श्रेष्ठ है |" एक मित्र को उन्होंने लिखा था-"इन दोनों कलाओं का विकास अलग-अलग शैलियों पर हुआ है। भारतीय कला का आधार पूर्णतया कल्पना पर है। यूरोपीय कला प्रकृति की नकल करती है। इसलिए वह आसानी से तो समझ में आ जाती है, परंतु वह हमारा ध्यान पृथ्वी की ओर फेरती है। इसके विपरीत भारतीय कला समझ में आने पर हमारे विचारों को स्वर्ग की ओर ले जाती है।"

गांधीजी के लिए कला का आध्यात्मिक होना आवश्यक था। उनका कहना था-"सच्चा सौन्दर्य हृदय की शुद्धता में है।"

यंग इंडिया में गांधीजी ने लिखा था-"मैं जानता हूँ कि बहुत-से लोग अपने को कलाकार कहते हैं और उन्हें कलाकार माना भी जाता है, परंतु उनकी कृतियों में आत्मा की उन्नतोमुखी तरंग तथा तड़प का लेशमात्र भी नहीं होता ।...सच्ची कला आत्मा की अभिव्यक्ति होती है।...सच्ची कला आत्मा को उसके अंतस्तल का अनुभव प्राप्त कराने में सहायक होनी चाहिए। अपने मामले में मैं देखता हूँ कि अपने आत्मानुभव में मुझे बाह्य रूपों की बिलकुल आवश्यकता नहीं है। इसलिए मैं दावा कर सकता हूँ कि वस्तुतः मेरे जीवन में पर्याप्त कला है, भले ही आपको मेरे आस-पास ऐसी वस्तुएँ न मिलें, जिन्हें आप कला-कृतियाँ कहते हैं। मेरे कमरे की दीवारें चाहे नंगी हों और मैं छत को भी हटा दूँ, ताकि मैं सौन्दर्य के असीम विस्तार में ऊपर फैले हुए ताराच्छादित आकाश को देखा करूँ |...क्या अच्छे नख-शिखवाली स्त्री सुंदर ही मानी जानी चाहिए ?...हमने सुना है कि सुकरात अपने समय का सबसे अधिक सत्यनिष्ठ व्यक्ति था, परंतु उसका चेहरा यूनान में सबसे

अधिक कुरूप बतलाया जाता था। मेरे विचार में वह सुंदर था, क्योंकि वह सत्य को पाने के लिए छटपटाता रहता था।...प्राप्त करने के लिए सबसे पहली वस्तु सत्य है और तब सुंदरता तथा भलाई स्वयं ही आपको प्राप्त हो जाएगी |...सच्ची कला केवल रूप का ही विचार नहीं करती, बल्कि उसके परे जो कुछ है, उसका भी विचार करती है | एक कला मारनेवाली है तो एक कला जीवनदायिनी है। सच्ची कला रचयिता के आनंद, संतुष्टि तथा पवित्रता का प्रमाण होनी चाहिए |"

रोम छोड़ने से पहले गांधीजी ने टाल्सटाय की पुत्री को तलाश किया। जब वह उसके कमरे में बैठे हुए कात रहे थे, तब इटली के बादशाह की पुत्री राजकुमारी मेरिया एक बाँदी के साथ आई और महात्माजी के लिए अंजीरों की एक टोकरी लाई | ये अंजीर इटली की महारानी ने भिजवाए थे।

गांधीजी की उपस्थिति का किसी ने भी फासिस्त-समर्थक उद्देश्य के लिए दुरूपयोग नहीं किया, यद्यपि गियोर्नेल द इतालिया ने एक ऐसी मुलाकात का वर्णन छापा, जो न तो उन्होंने कभी दी थी और न उस मुलाकात करनेवाले संवाददाता से वह कभी मिले थे।

गांधीजी इटली में कुल मिलाकर अड़तालीस घंटे रहे। ब्रिंदिसी में उन्होंने स्काटलैंड यार्ड के अपने संरक्षकों से बिदा ली, परंतु प्रोफेसर एडमंड प्रिवट और उनकी पत्नी से नहीं |

प्रोफेसर और उनकी पत्नी रोम्याँ रोलाँ के मित्र थे और विलेन्यूवे से इटली के सीमांत तक गांधीजी के साथ आए थे। जिस समय वे बिदा होने लगे, उन्होंने कहा कि किसी दिन वे भारत की यात्रा करना चाहते हैं | गांधीजी ने पूछा कि वे उन्हीं के साथ भारत क्यों नहीं चलते ? उन्होंने उत्तर दिया कि इसके लिए उनके पास खर्च नहीं है।

गांधीजी ने कहा-"आप शायद पहले और दूसरे दर्जे की बात सोचते हैं। परंतु हम तो जहाज के डेक पर यात्रा करने के लिए केवल दस पौंड प्रति व्यक्ति देते हैं। एक बार भारत पहुँचने पर कितने ही भारतीय मित्र अपने घरों के द्वार आपके लिए खोल देंगे ।"

प्रिवट-दंपति ने अपनी जेब के तथा बटुए के दाम गिने और भारत जाने का निश्चय कर लिया | 14 दिसंबर को ये लोग गांधीजी के दल के साथ ब्रिंदिसी से पिल्स्ना नामक जहाज पर सवार हुए। दो सप्ताह बाद सब लोग बंबई पहुँच गए।

28 दिसंबर की सुबह एक विशाल जनसमूह ने गांधीजी का हर्षध्वनि के साथ स्वागत किया। उन्होंने कहा-"मैं खाली हाथ लौटा हूँ, परंतु मैंने अपने देश की इज्जत पर बट्टा नहीं लगने दिया |" गोलमेज परिषद् में भारत के साथ जो बीती थी, उसका गांधीजी के शब्दों में यह सार था, परंतु परिस्थिति उनके अनुमान से भी ज्यादा निराशाजनक थी।

16 / अग्नि-परीक्षा

इस तरह का शाही स्वागत जहाज के डेक पर यात्रा करनेवाले किसी मुसाफिर को आज तक नहीं मिला था | सुभाषचंद्र बोस ने ताने के साथ कहा था-"स्वागत में जिस उत्साह, सौहार्द और स्नेह का प्रदर्शन हुआ, उससे यह धारणा होती थी कि महात्माजी स्वराज्य अपनी हथेली पर लेकर आए हैं।" गांधीजी अपनी ईमानदारी को लेकर लौटे थे, वह उस अर्द्ध-नग्न फकीर की भूमिका से नीचे नहीं उतरे थे, जिसने बलशाली ब्रिटिश साम्राज्य के साथ बराबरी के स्तर पर मंत्रणा की थी। यह चीज आजादी से पहले एक ही दर्जा नीचे थी, क्योंकि यह भारत की भावना की मुक्ति को व्यक्त करती थी | डांडी-यात्रा के बाद से, और विशेषकर गांधी-अरविन समझौते के बाद से, भारत अपने को आजाद महसूस करने लगा था। गांधीजी ने इस भावना को बढ़ाया और भारतवासी उनके कृतज्ञ थे। इसके अलावा उनके महात्माजी समुद्र-पार के ठंडे संसार से सही-सलामत लौट आए थे।

गांधीजी, अरविन तथा ब्रिटिश-मजदूर सरकार के प्रयत्नों से भारत को 1930-31 में आंशिक स्वाधीनता प्राप्त हो गई थी। परंतु अरविन जा चुके थे और अक्तूबर 1931 में रैम्जे मैकडॉनल्ड की मजदूर-सरकार के स्थान पर मैकडॉनल्ड के ही नेतृत्व में दूसरा मंत्रिमंडल बन गया था, जिसमें अनुदार दल की प्रधानता थी। सर सैम्युअल होर, जो गांधीजी के शब्दों में, एक ईमानदार तथा निष्कपट अंग्रेज थे और एक ईमानदार तथा निष्कपट अनुदार-दली थे, भारत के राज्य-सचिव हुए।

नई ब्रिटिश सरकार ने भारत की आजादी की भावना पर आक्रमण शुरू कर दिया।

जिस समय गांधीजी ने 28 दिसंबर को बंबई बंदर पर कदम रखा, उसी घड़ी उनके कानों में पूर्ण विवरण डाल दिया गया। विकट परिस्थिति की पूरी तसवीर शाम तक उनके सामने आ गई और इसे उन्होंने विशाल आजाद मैदान में एकत्र दो लाख श्रोताओं तक पहुँचा दिया।

जवाहरलाल नेहरू तथा संयुक्त प्रांतीय कांग्रेस के अध्यक्ष तसद्दुक शेरवानी महात्माजी से मिलने बंबई आते समय दो दिन पहले ही गिरफ्तार कर लिए गए थे। संयुक्त प्रांत में, उत्तर-पश्चिम सीमाप्रांत में और बंगाल में व्यापक लगान-बंदी आंदोलन का मुकाबला करने के लिए संकटकालीन आर्डिनेन्स जारी कर दिए गए थे। इनके अधीन सेना को मकानों पर कब्जा करने का, बैंकों में जमा रुपया कुर्क करने का, धन-माल जब्त करने का, संदेहास्पद लोगों को बिना वारंट गिरफ्तार करने का, अदालती कार्रवाई मंसूख करने का, जमानत और हैवियस कार्पस (बंदी प्रत्यक्षीकरण) से इन्कार करने का, अखबारों का डाक से भेजा जाना रोकने का, राजनैतिक संगठनों को तोड़ने का और धरना तथा बहिष्कार निषेध करने का अधिकार दे दिया गया था।

बंबई की सभा में भाषण देते हुए गांधीजी ने कहा-“जहाज से उतरने पर ये सब बातें मुझे मालूम हुईं | मैं समझता हूँ कि ये सब हमारे ईसाई वाइसराय की ओर से बड़े दिन के उपहार हैं।"

उसी शाम को उन्होंने मैजस्टिक होटल में 'वेलफेयर ऑफ इंडिया लीग' की सभा में कहा-“यूरोप-इंग्लैंड के अपने तीन महीने के प्रवास में मुझे ऐसा एक भी अनुभव नहीं हुआ, जिससे मुझे लगता कि आखिर पूर्व-पूर्व है और पश्चिम- पश्चिम है। इसके विपरीत मुझे पहले से भी अधिक विश्वास हो गया है कि मानव-प्रकृति, चाहे वह किसी भी जलवायु में पनपती हो, बहुत करके एक-सी है और यदि आप भरोसा तथा स्नेह लेकर लोगों के पास जाएँ, तो आपको बदले में दस गुना भरोसा और स्नेह मिलेगा |”

बंबई पहुँचने के दूसरे दिन गांधीजी ने वाइसराय को तार भेजा, जिसमें उन्होंने आर्डिनेन्स पर खेद प्रकट किया और मुलाकात का प्रस्ताव रखा। वर्ष के अंतिम दिन वाइसराय के सचिव का जवाब आया कि सरकार के विरुद्ध कांग्रेस की प्रवृत्तियों के कारण आर्डिनेन्स न्यायोचित है। सचिव ने लिखा-“वाइसराय आपसे मिलने को तैयार हैं और आपको यह सलाह देने को तैयार हैं कि आप अपने प्रभाव का समुचित उपयोग किस प्रकार कर सकते हैं। परंतु हिज़ एक्सेलेन्सी इस बात पर जोर देना अपना कर्तव्य समझते हैं कि जो कदम

भारत सरकार ने ब्रिटिश सरकार की पूरी सहमति से उठाए हैं, उनके बारे में चर्चा करने के लिए वह तैयार नहीं है।"

गांधीजी ने अपने प्रत्युत्तर में कांग्रेस की पैरवी की और सूचना दी कि उन्हें सविनय- अवज्ञा-आंदोलन शुरू करना पड़ सकता है। वाइसराय के सचिव ने 2 जनवरी 1932 को तत्काल उत्तर भेजा, जिसमें लिखा था-"हिज़ एक्सेलेन्सी और सरकार यह विश्वास नहीं कर सकती कि आप या कांग्रेस कार्य-समिति सोचते हों कि हिज़ एक्सेलेन्सी किसी लाभ की आशा से आपको ऐसी मुलाकात के लिए निमंत्रित कर सकते हैं, जिसके पीछे सविनय-अवज्ञा फिर से शुरू करने की धमकी हो।-और भारत सरकार आपके तार में अभिप्रेत इस स्थिति को भी स्वीकार नहीं कर सकती कि सरकार ने जो कार्रवाइयाँ की हैं, उनकी आवश्यकता के बारे में उसकी नीति आपके निर्णय पर निर्भर होनी चाहिए |"

गांधीजी ने उसी दिन जवाब भेज दिया । उन्होंने कोई धमकी नहीं दी थी, केवल मत प्रकट किया था। इसके अतिरिक्त उन्होंने दिल्ली समझौते से पहले, जबकि सविनय-अवज्ञा आंदोलन चालू था, अरविन से मंत्रणा की थी | उनका यह विचार कभी नहीं था कि सरकार को उनके निर्णय पर निर्भर रहना चाहिए। "परंतु', उन्होंने तार में लिखा-"मैं यह अवश्य निवेदन करूँगा कि कोई भी लोकप्रिय और वैधानिक सरकार सार्वजनिक संस्थाओं और उनके प्रतिनिधियों के सुझावों का हमेशा स्वागत करेगी और उन पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करेगी |"

3 जनवरी को गांधीजी ने राष्ट्र को सूचना दी कि "सरकार ने मेरे लिए किवाड़ बंद कर दिए हैं |" दूसरे दिन सरकार ने उनके सामने लोहे के किवाड़ लगा दिए। उन्हें फिर गिरफ्तार कर लिया। वह यरवडा जेल में फिर इंग्लैंड के बादशाह के मेहमान हो गए | कुछ ही सप्ताह पहले वह बकिंघम महल में बादशाह और महारानी के मेहमान बन चुके थे।

कांग्रेस पर सरकार का भीषण प्रहार हुआ। सारी कांग्रेसी संस्थाएँ बंद कर दी गईं और लगभग सभी नेता जेल में डाल दिए गए। जनवरी में 14,800 आदमी राजनैतिक कारणों

से जेल गए, फरवरी में 17,800 | विन्स्टन चर्चिल ने घोषणा की कि दमन के उपाय 1857 के गदर के समय से अधिक तीव्र थे।

जेल में गांधीजी का अपना विशेष स्थान था | सन् 1930 में इसी यरवडा जेल में चीफ वार्डन उनके पास आया और पूछने लगा कि हर सप्ताह आप कितने पत्र भेजेंगे और कितने बाहर से आनेवाले स्वीकार करेंगे ?

“मुझे एक भी पत्र लेने की दरकार नहीं है।” गांधीजी ने जवाब दिया।

“कितने पत्र आप लिखना चाहते हैं?” वार्डन ने पूछा।

“एक भी नहीं |” गांधीजी ने कहा।

उन्हें पत्र लिखने और पत्र-व्यवहार करने की पूरी छूट दी गई।

जेल के सुपरिटेंडेंट मेजर मार्टिन उनके लिए फर्नीचर, चीनी के बरतन तथा अन्य सामान लेकर आए। गांधीजी ने विरोध-सूचक स्वर में कहा-“यह सब आप किसके लिए लाए हैं ? कृपया इन्हें वापस ले जाइए |"

मेजर मार्टिन ने कहा कि केन्द्रीय अधिकारियों ने उन्हें अनुमति दी है कि ऐसे सम्माननीय मेहमान पर कम-से-कम तीन सौ रुपया मासिक खर्च करें।”

“यह तो सब बहुत ठीक है,” गांधीजी ने प्रकट किया-“परंतु यह रुपया भारत के खजाने से आता है और मैं अपने देश का बोझ नहीं बढ़ाना चाहता । मैं समझता हूँ कि मेरा खाने का खर्च पैंतीस रुपए महीने से अधिक नहीं होगा |” इस पर विशेष सामान हटा लिया गया।

यरवडा में क्वीन नाम के एक अफसर ने गांधीजी से गुजराती पढ़ाने को कहा और रोज पढ़ने आने लगा। एक दिन सबेरे जब क्विन नहीं आया, तो गांधीजी ने पता लगाया। मालूम हुआ कि वह अफसर जेल में फांसी लगाने में व्यस्त था। गांधीजी ने कहा-“मुझे ऐसा लगता है कि मैं बीमार पड़नेवाला हूँ।”

वल्लभभाई पटेल भी गिरफ्तार करके यरवडा पहुँचा दिए गए। मार्च में महादेव देसाई को भी दूसरी जेल से बदलकर यरवडा भेज दिया गया, क्योंकि गांधीजी उन्हें साथ रखना चाहते थे।

गांधीजी ध्यान से अखबार पढ़ते थे, अपने कपड़े खुद धोते थे, कातते थे, रात को तारों का अध्ययन करते थे और खूब किताबें पढ़ते थे। उन्होंने एक छोटी-सी पुस्तक को भी अंतिम रूप दिया, जिसका अधिकांश उन्होंने 1930 में यरवडा में, साबरमती-आश्रम को पत्रों के रूप में लिखा था। इसका नाम उन्होंने यरवडा मंदिर से रखा।[1]

जिन दिनों गांधीजी अपने 'जेल-मंदिर' में ईश्वर तथा सदाचार पर अपने इन सरल पत्रों का संपादन कर रहे थे, उसी समय भारत अपने आधुनिक इतिहास के सबसे अधिक तनावपूर्ण पखवाड़े की ओर अग्रसर हो रहा था।

यह गांधीजी का जीवन बचाने के प्रश्न पर केन्द्रित था।

राजजगोपालाचारी ने लिखा था-"सितंबर 1932 की वेदना का समरूप तलाश करने के लिए हमको तेईस शताब्दियाँ पीछे एथेन्स जाना होगा, जब सुकरात के मित्र कारागार में उसे घेरे बैठे थे और मृत्यु से बचने के लिए उस पर जोर डाल रहे थे। अफलातून ने इन प्रश्नोत्तरों को लिखित रूप दिया है। सुकरात इस सुझाव पर मुस्कराया और उसने आत्मा की अमरता पर प्रवचन दिया ।"

'सितंबर 1932 की वेदना' गांधीजी के लिए इस वर्ष के शुरू में ही प्रारंभ हो गई थी | समाचारपत्रों से उन्हें पता लगा था कि भारत के लिए प्रस्तावित नए ब्रिटिश संविधान में न केवल पहले की भाँति हिन्दुओं तथा मुसलमानों को पृथक निर्वाचन का अधिकार दिया जाएगा, बल्कि अछूतों अथवा दलित जातियों को भी। अतएव उन्होंने भारत-सचिव सर सैम्युअल होर को 11 मार्च 1932 के एक पत्र में लिखा- "दलित जातियों के लिए पृथक निर्वाचन उनके लिए तथा हिन्दू जाति के लिए हानिकारक है।...जहाँ तक हिन्दू-जाति का संबंध है, पृथक निर्वाचन उसका अंगोच्छेद और विच्छेद ही करेगा ।...नैतिक तथा धार्मिक

मुद्दे की तुलना में राजनैतिक पहलू, महत्त्वपूर्ण होते हुए भी, नगण्य बनकर रह जाता है। इसलिए यदि सरकार अछूतों के लिए पृथक निर्वाचन को जन्म देने का निश्चय करती है, तो मुझे आमरण उपवास करना पड़ेगा।" गांधीजी जानते थे कि इससे सरकार, जिसके वह कैदी थे, असमंजस में पड़ जायगी | "परंतु जो कदम उठाने का मैं विचार कर रहा हूँ, वह मेरे लिए एक उपाय नहीं है, वह तो मेरे अस्तित्व का अंग है |"

भारत-सचिव ने 13 अप्रैल को उत्तर दिया कि अभी तक कोई निर्णय नहीं किया गया और निर्णय से पूर्व उनके विचार पर गौर किया जाएगा।

17 अगस्त 1932 तक कोई नई घटना नहीं हुई। परंतु इस तारीख को प्रधान-मंत्री रैम्जे मैकडॉनल्ड ने पृथक निर्वाचन के पक्ष में ब्रिटेन के निर्णय की घोषणा कर दी।

दूसरे दिन गांधीजी ने रैम्जे मैकडॉनल्ड को लिखा-"आपके निर्णय का मुझे अपने प्राणों की बाजी लगाकर विरोध करना पड़ेगा। इसका एकमात्र तरीका यही है कि मैं सोडा और नमक के साथ या खाली पानी के सिवा किसी भी प्रकार का भोजन न लेकर आमरण अनशन की घोषणा कर दूँ। यह अनशन 20 सितंबर की दोपहर को प्रारंभ होगा।"

सितंबर 1932 की 8 तारीख को भेजे गए लंबे पत्र के उत्तर में प्रधान मंत्री मैकडॉनल्ड ने गांधीजी के पत्र पर बहुत आश्चर्य और अत्यंत हार्दिक खेद प्रकट किया | उन्होंने सरकार के निर्णय के पक्ष में दलीलें दीं और दलितों के लिए पृथक निर्वाचन-पद्धति की व्याख्या की | सुरक्षित स्थानों के वैकल्पिक तरीके को अस्वीकार करते हुए उन्होंने बतलाया कि इस तरीके से दलितों के प्रतिनिधि सवर्णों के बहुमत से चुने जाएँगे। अत: वे सवर्ण हिन्दुओं के इशारों पर नाचनेवाले होंगे। इसलिए उनकी राय में गांधीजी का उपवास करने का इरादा भ्रमपूर्ण और सरकार का निर्णय अपरिवर्त नशील |

इस पत्र का गांधीजी ने 9 सितंबर को जो उत्तर दिया, वह उनकी विशिष्टता लिए हुआ था।

"बहस में न पड़ते हुए मैं दृढ़तापूर्वक कह देना चाहता हूँ कि मेरे लिए यह मामला शुद्ध धार्मिक है ।...आप कितने ही सहानुभूतिपूर्ण क्यों न हों, परंतु संबंधित दलों के लिए मार्मिक

और धार्मिक महत्त्व रखनेवाले मामले में आप सही निर्णय पर नहीं पहुँच सकते ।...क्या आप जानते हैं कि यदि आपका निर्णय कायम रहे और संविधान अमल में आ जाय, तो आप हिन्दू सुधारकों के कार्य के अद्भुत विकास को कुंठित कर देंगे, जिन्होंने जीवन की हर दिशा में अपने दलित भाइयों के लिए उत्सर्ग किया है?"

इसके बाद लंदन के साथ पत्र-व्यवहार समाप्त हो गया।

इस तरह परेशान होनेवालों में मैकडॉनल्ड अकेले ही नहीं थे। अनेक भारतवासी और कुछ हिन्दू भी हैरान हो गए। गांधीजी के उपास का समाचार जवाहरलाह नेहरू ने जेल में सुना। अपनी आत्मकथा में उन्होंने लिखा है-"मुझे गुस्सा आया उनपर, एक राजनैतिक मुद्दे के बारे में उनकी धार्मिक और भावनामय पकड़ पर और इसके संबंध में बार-बार ईश्वर का नाम लेने पर। दो दिन तक मैं अँधेरे में भटकता रहा। परंतु फिर मुझे एक अजीब अनुभव हुआ। मैं एक अच्छे-खासे भावोद्रेक में से गुजरा और इसके बाद मैंने कुछ शांति महसूस की और भविष्य मुझे इतना अंधकारमय नहीं लगा | उपयुक्त मौके पर सही बात कहने का बापू का निराला ढब है| हो सकता है कि उनका यह कार्य, जो मेरी दृष्टि में असंभव है, महान परिणामें की ओर ले जाय। इसके बाद देश-भर में जबरदस्त हलचल की खबरें मिलीं।...सोचा कि यरवडा जेल में बैठा हुआ यह नन्हा-सा आदमी कितना बड़ा जादूगर है और लोगों के दिलों को प्रभावित करनेवाली डोरियाँ खींचना यह कितनी अच्छी तरह जानता है।"

गांधीजी ने कहा कि उनका उपवास दलित जातियों के लिए किसी भी रूप में पृथक निर्वाचन के विरुद्ध है। यह खतरा दूर होते ही उपवास समाप्त हो जाएगा | वह ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध उपवास नहीं कर रहे थे, क्योंकि उसने कह दिया था कि यदि हिन्दू तथा हरिजन किसी अन्य और पारस्परिक संतोषजनक मतदान व्यवस्था पर राजी हो जाएँ, तो उसे स्वीकार कर लिया जाएगा। गांधीजी ने बतला दिया था कि उनके उपवास का उद्देश्य सही धार्मिक कृत्य के लिए हिन्दुओं की अंतरात्मा को प्रेरित करना है।

13 सितंबर को गांधीजी ने घोषित किया कि उनका आमरण उपवास 20 सितंबर को प्रारंभ होगा। अब भारत के सामने एक ऐसी चीज आई, जो संसार ने आजतक नहीं देखी थी।

13 तारीख को राजनैतिक तथा धार्मिक नेताओं में हलचल पैदा हो गई। विधान-सभा में अछूतों के एक प्रवक्ता श्री एम.सी. राजा ने गांधीजी की स्थिति का पूरी तरह समर्थन किया। सर तेजबहादुर सप्रू ने सरकार से गांधीजी को रिहा कर देने की प्रार्थना की; मद्रास के मुस्लिम नेता याकूब हसन ने हरिजनों से अनुरोध किया कि वे पृथक निर्वाचन अस्वीकार कर दें; राजेन्द्रप्रसाद ने सुझाव दिया कि हिन्दू लोग हरिजनों के लिए अपने मंदिर, कुएँ, पाठशालाएँ तथा सार्वजनिक सड़कें खोलकर गांधीजी के जीवन की रक्षा करें; पंडित मालवीय ने 19 तारीख को नेताओं का एक सम्मेलन बुलाया; राजगोपालाचारी ने कहा कि 20 तारीख को सारा देश प्रार्थना करे तथा उपवास रखे।

कई शिष्टमंडलों ने जेल में गांधीजी से मिलने की अनुमति माँगी | सरकार ने जेल के दरवाजे खोल दिए और गांधीजी से परामर्श करने की खुली इजाजत दे दी। परामर्शकारों तथा गांधीजी के बीच मध्यस्थ का काम करने के लिए देवदास गांधी आ पहुँचे | पत्रकारों को भी गांधीजी तक पहुँचने में कोई रुकावट नहीं थी।

इस अर्से में गांधीजी ने भारत तथा विदेशों में अनेक मित्रों को लंबे-लंबे पत्र लिखे। मीराबहन को भेजे गए पत्र में उन्होंने लिखा-“इससे बचने का कोई रास्ता नहीं था। मेरे लिए यह एक विशिष्ट लाभ तथा कर्तव्य दोनों है। ऐसा अवसर किसी को एक पीढ़ी में या अनेक पीढ़ियों में कदाचित ही प्राप्त होता है |”

20 तारीख को गांधीजी सुबह 2.30 बजे उठ गए और उन्होंने रवीन्द्रनाथ ठाकुर को पत्र लिखा, क्योंकि वह ठाकुर की स्वीकृति लेने के लिए अत्यंत उत्सुक थे। महात्माजी ने लिखा-"अभी मंगलवार की सुबह के तीन बजे हैं। दोपहर को मैं अग्निमय द्वार में प्रवेश करूँगा। मैं चाहूँगा कि आप इस प्रयत्न को आशीर्वाद दे सकें। आप सच्चे मित्र हैं, क्योंकि आप स्पष्टवादी मित्र हैं और अपने विचारों को अक्सर मुख से प्रकट कर देते हैं। यदि आपका

हृदय मेरे कार्य की निन्दा करे, तो भी मैं आपकी आलोचना को बहुमूल्य समझूँगा, यद्यपि अब यह मेरे उपवास के दौरान में ही संभव है | यदि मुझे लगे कि मैं गलती पर हूँ, तो मैं इतना अभिमानी नहीं हूँ कि अपनी भूल को खुले आम स्वीकार न करूँ, चाहे इस आत्म-स्वीकृति की कितनी ही कीमत क्यों न चुकानी पड़े। यदि आपका हृदय मेरे कार्य को पसंद करे, तो मैं आपका आशीर्वाद चाहता हूँ | इससे मुझे सहारा मिलेगा |"

गांधीजी ने यह पत्र डाक में डलवाया ही था कि उन्हें ठाकुर का तार मिला-"भारत की एकता तथा सामाजिक अविच्छिन्नता की खातिर बहुमूल्य जीवन का बलिदान श्रेयस्कर है। मैं हृदय से आशा करता हूँ कि हम लोग इस राष्ट्रीय वज्रपात को चरम-सीमा तक पहुँचने देने की निर्ममता नहीं दिखाएँगे। हमारे व्यथित हृदय आपकी लोकोत्तर तपस्या को श्रद्धा तथा प्रेम के साथ निहारते रहेंगे |"

गांधीजी ने इस प्रेमपूर्ण तथा भव्य तार के लिए ठाकुर को धन्यवाद दिया और लिखा-"जिस तूफान के बीच मैं प्रवेश कर रहा हूँ, उसमें मुझे यह सहारा देगा !"

उसी दिन 12.30 बजे गांधीजी ने आखिरी बार भोजन किया। इसमें नीबू का रस, शहद और गर्म पानी था। करोड़ों भारतवासियों ने 24 घंटे का उपवास किया। देश-भर में प्रार्थनाएँ की गईं।

उस दिन रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने शांतिनिकेतन के विद्यार्थियों को भाषण देते हुए कहा-"आज भारत के ऊपर ऐसी छाया अंधकार डाल रही है, जैसी राहु-ग्रसित सूर्य डालता है। सारे देश की जनता चिन्ता की तीक्ष्ण वेदना से संतप्त है, जिसकी विश्व-व्यापकता में सांत्वना का महान गौरव है। महात्माजी, जिन्होंने अपने उत्सर्गमय जीवन से भारत को वास्तव में अपना बना लिया है, अपने चरम बलिदान का व्रत प्रारंभ कर रहे हैं।"

महात्माजी के उपवास की व्याख्या करते हुए ठाकुर ने कहा-"प्रत्येक देश का अपना आंतरिक भूगोल होता है, जहाँ उसकी आत्मा निवास करती है और जहाँ भौतिक बल एक इंच भी नहीं जीत सकता |...महात्माजी ने जो प्रायश्चित अपने सिर पर लिया है, वह कर्मकांड

नहीं है, बल्कि सारे भारत को तथा सारे संसार के लिए एक संदेश है | हमने देखा है कि महात्माजी जो कदम उठाने पर मजबूर हुए हैं, उससे अंग्रेज लोग चकरा गए हैं। वे स्वीकार करते हैं कि इसे वे समझ नहीं पा रहे। मैं समझता हूँ कि उनके न समझने का मुख्य कारण यह है कि महात्माजी की भाषा उनकी भाषा से मूलतः भिन्न है | भारतीय समाज का अंग-विच्छेद रोकने के लिए गांधीजी एक व्यक्ति की, स्वयं अपनी, बलि दे रहे हैं। यह अहिंसा की भाषा है। क्या इसीलिए पश्चिम इसका अर्थ नहीं लगा सकता ?"

ठाकुर को इस उपवास में गांधीजी को खो देने की संभावना नजर आ रही थी। केवल इसी विचार से राष्ट्र की रीढ़ में सनसनी दौड़ गई थी | यदि महात्माजी को बचाने के लिए कुछ नहीं किया गया, तो प्रत्येक हिन्दू महात्माजी का हत्यारा होगा।

जेल के शांत अहाते में गांधीजी आम के पेड़ की छाया में लोहे की सफेद चारपाई पर लेटे हुए थे। पटेल और महादेव देसाई उनके पास बैठे थे। गांधीजी की शुश्रूषा करने के लिए तथा उन्हें अतिशय शरीर-श्रम से बचाने के लिए श्रीमती नायडू को यरवडा जेल में जनाने वार्ड से बदलकर भेज दिया गया थी। एक स्टूल पर कुछ पुस्तकें, लिखने के कागज, पानी, नमक तथा सोडा की बोतलें रखी हुई थीं।

बाहर परामर्शकार लोग मृत्यु के साथ दौड़ लगा रहे थे। 20 सितंबर को हिन्दू नेतागण बंबई के बिड़ला भवन में एकत्र हुए। इनमें सप्रू, सर चुन्नीलाल मेहता, राजगोपालाचारी, घनश्यामदास बिड़ला, राजेन्द्रप्रसाद, जयकर, सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास आदि थे। अछूतों के प्रतिनिधि डा० सोलंकी तथा डॉ० अंबेडकर भी थे।

गांधीजी सदा से हिन्दुओं तथा हरिजनों के लिए संयुक्त निर्वाचन चाहते आए थे | वह हरिजनों के लिए सुरक्षित स्थानों के भी विरोधी थे, क्योंकि इससे दोनों जातियों के बीच की दरार और भी चौड़ी हो जाएगी । परंतु 19 तारीख को गांधीजी ने एक शिष्टमंडल को बतलाया कि सुरक्षित स्थानों की बात से वह सहमत हो गए हैं |

परंतु अंबेडकर ने आनाकानी की-विधान-सभाओं में सुरक्षित स्थानों पर बैठनेवाले हरिजन-सदस्य हिन्दुओं तथा हरिजनों द्वारा संयुक्त रूप से चुने जाएँगे, अत: हिन्दुओं के विरुद्ध हरिजनों की शिकायतें प्रकट करने में उन्हें बहुत हिचकिचाहट होगी | यदि कोई हरिजन हिन्दुओं पर अत्यधिक दोषारोपण करने लगे, तो संभव था कि अगले चुनावों में हिन्दू लोग उसे हरा दें और किसी अधिक नमनशील हरिजन को चुन दें।

इस न्यायोचित आपत्ति का निपटारा करने के लिए सप्रू ने एक चतुरतापूर्ण योजना निकाली, जिसे उन्होंने 20 सितंबर को सम्मेलन में पेश किया।

इस योजना पर अंबेडकर के विचारों की हिन्दू लोग चिन्ता के साथ प्रतीक्षा करने लगे | अंबेडकर ने इसकी बारीकी से परीक्षा की और मित्रों से सलाह ली | घंटे बीतते जा रहे थे। अंत में उन्होंने योजना स्वीकार कर ली, परंतु साथ ही कहा कि सप्रू योजना सहित अपने विचारों को संनिहित करने के लिए वह अपना अलग सूत्र तैयार करेंगे।

इससे उत्साहित होकर, परंतु फिर भी अंबेडकर की ओर से शंकाशील रहकर, हिन्दू नेता अब गांधीजी के बारे में सोचने लगे; क्या वह सप्रू की नई बात स्वीकार करेंगे ? सप्रू, जयकर, राजगोपालाचारी, देवदास, बिड़ला और राजेन्द्रप्रसाद रात की गाड़ी से रवाना हुए और सुबह पूना पहुँच गए। सुबह 7 बजे वह जेल के दफ्तर में गए | गांधीजी, जो चौबीस से कुछ कम घंटों तक निराहार रहने के कारण कमजोर हो गए थे, हँसते हुए दफ्तर में आए और मेज के बीच में स्थान ग्रहण करते हुए प्रसन्न-मुद्रा से बोले-"मैं सभापति हूँ ।"

सप्रू ने अपनी योजना बतलाई। दूसरों ने उसकी व्याख्या की। गांधीजी ने कुछ अवाल पूछे | उन्होंने निश्चयात्मक उत्तर नहीं दिया। आधा घंटा बीत गया। अंत में गांधीजी ने कहा-"मैं आपकी योजना पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने को तैयार हूँ,--परंतु मैं चाहता हूँ कि सारी तसवीर लिखित रूप में मेरे सामने आ जाय |" साथ ही उन्होंने अंबेडकर और राजा से मिलने की इच्छा प्रकट की।

अंबेडकर और राजा को अत्यावश्यक निमंत्रण भेजे गए। 22 तारीख की सुबह आंधीजी ने योजना के प्रति नापसंदी जाहिर की |वह हरिजनों के बीच कोई भेदभाव नहीं चाहते थे। न वह यह चाहते थे कि विधान-सभाओं के हरिजन-सदस्य हिन्दुओं के किसी राजनैतिक एहसान से दबें।

परामर्शकार लोग अत्यंत हर्षित हुए। गांधीजी अंबेडकर को उससे भी ज्यादा दे रहे थे, जो अंबेडकर ने मान लिया था।

उस दिन तीसरे पहर के बाद अंबेडकर गांधीजी के सिरहाने पहुँचे। अधिकतर बातें उन्होंने ही कीं । वह महात्माजी का जीवन बचाने में सहायता देने को तैयार थे, परंतु कहने लगे- "मैं अपना मुआवजा चाहता हूँ।"

जब अंबेडकर ने ये शब्द कहे, तो गांधीजी कष्ट से सहारा लगाकर बैठ गए और कई मिनट तक बोलते रहे। उन्होंने सप्रू-योजना की एक-एक बात पर चर्चा की। इस प्रयास से थककर गांधीजी तकिए के सहारे लेट गए।

अंबेडकर ने सोचा था कि मरणोन्मुख महात्माजी के सामने अपनी स्थिति से पीछे हटने के लिए उनपर दबाव डाला जाएगा। परंतु अब गांधीजी ने हरिजन-हितैषिता में तो हरिजन-अंबेडकर को भी मात दे दी।

अंबेडकर ने गांधीजी के संशोधन का स्वागत किया।

उसी दिन श्रीमती गांधी आ गईं, उन्हें साबरमती जेल से बदलकर यरवडा भेजा गया था। ज्योंही वह धीरे-धीरे गांधीजी की ओर बढ़ीं, उन्होंने असहमतिसूचक गरदन हिलाई और कहा-"फिर वही किस्सा !" गांधीजी मुस्कराए। बा की उपस्थिति से उनका हृदय प्रसन्न हो गया।

उपवास के चौथे दिन, शुक्रवार 23 सितंबर को, गांधीजी के हृदय-विशेषज्ञ डा० गिल्डर तथा डा० पटेल बंबई से आए । जेल के डाक्टरों से सलाह करके उन्होंने निदान दिया कि

गांधीजी की हालत खतरनाक है। रक्तचाप भयंकर रूप से बढ़ गया था। किसी भी समय मृत्यु हो सकती थी।

उसी दिन अंबेडकर ने हिन्दू नेताओं से लंबी बातचीत की और मुआवजे की अपनी नई माँगें पेश कीं। मैकडॉनल्ड के फैसले में प्रांतीय विधान-सभाओं में दलित वर्ग को 71 स्थान दिए गए थे। अंबेडकर ने 197 माँगे | इसके अलावा यह सवाल भी था कि सुरक्षित स्थानों को रद्द करने का निश्चय करने के लिए हरिजन-मतदाताओं का जनमत कब लिया जाय। गांधीजी चाहते थे कि हरिजन स्थानों के लिए प्रारंभिक चुनाव पाँच वर्ष में समाप्त कर दिए जाएँ। अंबेडकर पंद्रह वर्ष पर अड़े हुए थे। उनका विश्वास नहीं था कि पाँच वर्ष में अस्पृश्यता का लोप हो जाएगा।

पाँचवें दिन, शनिवार, 24 सितंबर को, अंबेडकर ने हिन्दू नेताओं से फिर बातचीत शुरू की | सुबह वितंडाबाद के पश्चात् वह दोपहर को गांधीजी से मिलने गए | अंबेडकर तथा हिन्दू नेताओं के बीच यह तय हुआ कि दलित जातियों के लिए 147 सुरक्षित स्थान रखे जाएँ | इस समझौते को गांधीजी ने स्वीकार कर लिया। अब अंबेडकर प्रारंभिक चुनाव दस वर्ष बाद हटाने के लिए तैयार हो गए। गांधीजी ने पाँच का आग्रह किया। उन्होंने कहा-"या तो पाँच साल रहेंगे या मेरी जिन्दगी नहीं रहेगी।' अंबेडकर ने इन्कार कर दिया।

अंबेडकर अपने हरिजन साथियों के पास लौट गए। बाद में उन्होंने हिन्दू नेताओं को सूचना दी कि वह पाँच वर्ष में प्रारंभिक चुनावों का अंत स्वीकार नहीं करेंगे। यह समय दस वर्ष से कम नहीं हो सकता।

तब राजगोपालाचारी ने वह काम किया कि जिसने शायद गांधीजी का जीवन बचा लिया | गांधीजी से पूछे बिना ही उन्होंने अंबेडकर को इस बात पर राजी कर लिया कि प्रारंभिक चुनावों को हटाने का प्रश्न आगे चर्चा के बाद तय किया जाय। इससे शायद जनमत लेना आवश्यक न रहे।

राजगोपालाचारी जेल दौड़े गए और गांधीजी को उन्होंने यह नई व्यवस्था बतलाई |

"इसे दुबारा कहो|" गांधीजी ने कहा।

राजगोपालाचारी ने अपनी बात दोहराई।

"बहुत बढ़िया |" गांधीजी धीरे-से बोले। शायद वह राजगोपालाचारी की बात को ठीक-ठीक नहीं समझ पाए, उन्हें मूर्च्छा-सी आ रही थी, परंतु वह राजी हो गए।

उस शनिवार को भारतीय-इतिहास के यरवडा-समझौते का मसविदा तैयार किया गया और गांधीजी के सिवा सब हिन्दू तथा हरिजन परामर्शकारों ने उस पर हस्ताक्षर कर दिए।

रविवार को बंबई में परामर्शकारों के पूरे सम्मेलन ने उस पर छाप लगा दी।

परंतु यह समझौता वास्तविक समझौता नहीं था और गांधीजी तब तक अपना उपवास तोड़ने के लिए तैयार नहीं थे, जब तक कि ब्रिटिश सरकार इसे मैकडॉनल्ड के फैसले के स्थान पर स्वीकार करने को राजी न हो| इसका पूरा सार तार द्वारा लंदन भेज दिया गया था, जहाँ चार्ल्स एंड्रयूज, पोलक तथा गांधीजी के अन्य मित्र सरकार से जल्दी कार्रवाई कराने के लिए दौड़-धूप कर रहे थे। उस दिन इतवार था, मंत्रीगण नगर से बाहर चले गए थे और मैकडॉनल्ड ससेक्स में एक मृतक-संस्कार में शामिल होने गए थे।

पूना-समझौते का समाचार सुनकर मैकडॉनल्ड वापस दौड़े आए। सर सैम्युअल होर तथा लार्ड लोथियन भी आ गए| रविवार को आधी रात तक ये लोग समझौते के पाठ पर गौर करते रहे।

गांधीजी की जीवन-शक्ति बहुत तेजी के साथ क्षीण होती जा रही थी। उन्होंने कस्तूरबा को बताया कि उनकी चारपाई के आस-पास पड़ी हुई निजी वस्तुएँ किन-किन को दी जाएँ| सोमवार को सुबह ठाकुर कलकत्ता से आए और उन्होंने अपने कुछ चुने हुए गीत महात्माजी को गाकर सुनाए| इनसे महात्माजी को कुछ शांति मिली| पूना के कुछ मित्र भी वाद्य-संगीत तथा भजन सुनाने के लिए बुलाए गए। गांधीजी ने सिर हिलाकर तथा धीरे-से मुसकरा कर उन्हें धन्यवाद दिया| वह बोल नहीं सकते थे।

कुछ घंटे बाद ब्रिटिश सरकार ने लंदन तथा नई दिल्ली में साथ घोषणा की कि उसने यरवडा-समझौता मान लिया है। अब गांधीजी अपना उपवास तोड़ सकते थे।

सोमवार की शाम को 5.15 पर ठाकुर, पटेल, महादेव देसाई, श्रीमती नायडू तथा परामर्शकारों और पत्रकारों की उपस्थिति में गांधीजी ने कस्तूरबा के हाथ से नारंगी के रस का गिलास लिया और उपवास तोड़ दिया। ठाकुर ने बंगला भजन गाए। बहुतों की आँखों में आँसू आ गए।

रविवार, 25 सितंबर को, बंबई-सम्मेलन में, जिसने यरवडा-समझौते या पूना- समझौते पर स्वीकृति की छाप लगाई, डॉ० अंबेडकर ने एक दिलचस्प भाषण दिया | गांधीजी के सद्भावनापूर्ण रुख की सराहना करते हुए अंबेडकर ने कहा-"मैं स्वीकार करता हूँ कि जब मैं उनसे मिला, तो मुझे आश्चर्य हुआ, और महान आश्चर्य हुआ कि उनके और मेरे बीच परस्पर मेल खानेवाली कितनी अधिक बातें थीं | वास्तव में जब भी कोई विवाद उनके सामने गया, तो मैं यह देखकर हैरान रह गया कि जो व्यक्ति गोलमेज परिषद में मेरे विचारों से इतना अधिक मतभेद रखता था, वह तुरंत मेरी हिमायत करने लगा, दूसरे पक्ष की नहीं | मैं महात्माजी का बड़ा कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने मुझे ऐसी स्थिति से बचा लिया, जो बहुत कठिन हो सकती थी।"

सितंबर-दिसंबर 193। को गोलमेज परिषद में गांधीजी ने हरिजनों के लिए सुरक्षित स्थानों का विरोध किया था, क्योंकि इससे हिन्दू जाति के टुकड़े हो जाते; परंतु 13 सितंबर 1932 को गांधीजी ने सुरक्षित स्थानों का प्रस्ताव एक अनिवार्य तथा अल्पकालिक बुराई के रूप में स्वीकार कर लिया।

गांधीजी ने हरिजनों के लिए स्थान सुरक्षित रखने की बात इसलिए मान ली कि वह इसे उस पृथक्करण से हजारों गुना बेहतर समझते थे, जो मैकडॉनल्ड के इच्छित पृथक निर्वाचन से उत्पन्न होता। परंतु यही बात गांधीजी गोलमेज परिषद् में या उपवास से कुछ महीने पूर्व मान लेते, तो वह शायद कट्टर हिन्दुओं को अपने साथ नहीं ले जा सकते थे।

थोड़ी देर के लिए मान लीजिए कि हिन्दू नेता उपवास से पूर्व हरिजनों के लिए सुरक्षित स्थान स्वीकार कर लेते। तब क्या उपवास फालतू चीज होता? क्या महात्माजी की यंत्रणा अनावश्यक थी?

भारत के इतिहास में गांधीजी की देन को समझने के लिए इस प्रश्न का उत्तर निर्णायक हैसियत रखता है। ठंडे तर्क और शुष्क विधिवादिता की कसौटी के अनुसार तो गांधीजी को अंबेडकर से समझौता करने के लिए उपवास करने की आवश्यकता नहीं थी। परंतु भारतीय जनता के साथ गांधीजी का संबंध तुर्क और विधिवादिता के आधार पर नहीं था । यह संबंध उच्च मनोभावनापूर्ण था। हिन्दुओं के लिए गांधीजी महात्मा थे। क्या वह उनकी हत्या कर सकते थे? उपवास प्रारंभ होते ही मसविदे, संविधान, फैसले, चुनाव आदि सबका महत्त्व जाता रहा। गांधी के प्राण बचाना जरुरी था।

गांधीजी ने प्रत्येक हिन्दू पर अपने जीवन की जिम्मेदारी डाल दी थी। 15 सितंबर को एक वक्तव्य में, जिसका व्यापक रूप से प्रचार किया गया, गांधीजी ने कहा था-"सवर्ण हिन्दुओं तथा प्रतिपक्षी दलितवर्गीय नेताओं के बीच किसी तरह का चेपा-चेपिवाला समझौता उद्देश्य सिद्ध नहीं करेगा | समझौता पुष्ट तभी होगा, जब वह वास्तविक होगा। यदि हिन्दू जनता का मानस अभी तक अस्पृश्यता को जड़-मूल से नष्ट करने के लिए तैयार नहीं है, तो उसे बिना किसी हिचकिचाहट के मेरा बलिदान कर देना चाहिए |"

इसलिए जिस समय परामर्शकार लोग मंत्रणाएँ कर रहे थे, हिन्दू समुदाय एक धार्मिक भावनामय उथल-पुथल अनुभव कर रहा था | उपवास-सप्ताह के प्रारंभ में ही हिन्दू कट्टरता के गढ़-कलकत्ता का कालीघाट मंदिर तथा काशी का राममंदिर-हरिजनों के लिए खोल दिए गए | दिल्ली में सवर्ण हिन्दुओं तथा हरिजनों ने बाजारों तथा मंदिरों में आपसी भाई-चारे का प्रदर्शन किया | बंबई में महिलाओं की एक राष्ट्रीय संस्था ने सात बड़े मंदिरों के सामने मतदान की व्यवस्था की | स्वयंसेवकों की निगरानी में मंदिरों के बाहर मतदान पेटियाँ रखी गईं और उपासकों से कहा गया कि वे अछूतों के मंदिर-प्रवेश पर मत डालें |

मतगणना 24,797 पक्ष में और 445 विपक्ष में हुई | परिणामस्वरूप ऐसे मंदिर, जिनमें किसी हरिजन ने कभी पाँव नहीं रखा था, सबके लिए खोल दिए गए।

उपवास प्रारंभ होने के एक दिन पूर्व इलाहाबाद के बारह मंदिर पहली बार हरिजनों के लिए खोल दिए गए। उपवास के पहले दिन देश के कुछ सबसे पवित्र मंदिरों ने अपने द्वार अछूतों के लिए खोल दिए | 26 सितंबर तक हर रोज, और 27 सितंबर से गांधीजी के जन्म दिन 2 अक्तूबर तक प्रतिदिन, बीसियों धार्मिक स्थानों ने हरिजन-प्रवेश पर प्रतिबंध हटा दिए। बड़ौदा, काश्मीर और कोल्हापुर की रियासतों के सब मंदिरों ने भेद-भाव मिटा दिया। समाचारपत्रों ने सैकड़ों मंदिरों के नाम प्रकाशित किए, जिन्होंने गांधीजी के उपवास के झोंके से प्रतिबंध हटा लिया था।

जवाहरलाल की कट्टरपंथी माता श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू ने कहा कि लोगों को बता दिया जाय कि उन्होंने एक अछूत के हाथ से खाना खाया है | हजारों हिन्दू स्त्रियों ने इनका अनुकरण किया | काशी के हिन्दू विश्वविद्यालय के मुख्याचार्य ध्रुव ने अनेक ब्राह्मणों-सहित सार्वजनिक रूप में चमारों और भंगियों के साथ बैठकर भोजन किया |

गाँवों तथा छोटे-छोटे नगरों में अछूतों को कुओं से पानी भरने की छूट दे दी गई |

देश-भर में सुधार, प्रायश्चित तथा आत्म-शुद्धि की लहर दौड़ गई। उपवास के छः दिनों में बहुत-से हिन्दू लोग सिनेमा, थियेटर, रेस्ट्राँ आदि में नहीं गए। विवाह तक स्थगित कर दिए गए। ।

उपवास के बिना गांधीजी तथा अंबेडकर के बीच शुष्क समझौते से राष्ट्र पर यह प्रभाव नहीं पड़ता | इससे हरिजनों की एक वैधानिक शिकायत भले ही दूर हो जाती, परंतु जहाँ तक हरिजनों के साथ हिन्दुओं के व्यक्तिगत व्यवहार का सवाल था, यह समझौता एक बेकार की चीज बना रहता। बहुत-से हिन्दुओं को तो इसका पता भी नहीं लगता। गांधीजी ने देश के मनोभावों का जो मंथन किया, उसके बाद ही राजनैतिक समझौते का महत्त्व हुआ।

उपवास से अस्पृश्यता का अभिशाप तो नहीं मिटा, परंतु इसके बाद सार्वजनिक रूप से अस्पृश्यता का समर्थन समाप्त हो गया।

यदि अस्पृश्यता के ढाँचे को तहस-नहस करने के सिवा गांधीजी अपने जीवन में और कुछ भी नहीं करते, तो भी वह एक महान समाज-सुधारक माने जाते। पीछे दृष्टि डालने पर स्थानों, प्रारंभिक चुनावों, जनमत आदि के बारे में अंबेडकर से छीना-झपटी बेकार-सी लगती है। वास्तविक सुधार धार्मिक तथा सामाजिक था, राजनैतिक नहीं।

उपवास की समाप्ति के पाँच दिन बाद गांधीजी का वजन 99 ¾ पौंड हो गया और वह घंटों तक कातने तथा काम करने लगे।

वह अभी जेल ही में थे।

गांधीजी के उपवास ने भारत के हृदय का स्पर्श किया। गांधीजी को लोगों के हृदयों से बात करने की अनिवार्य आवश्यकता जान पड़ी। मनुष्य के आंतरिक हृदय-तारों तक पहुँचने के लिए उनमें कलाकार की प्रतिभा थी। उनके उपवास मनोभावों के आदान-प्रदान के साधन थे। उपवास के समाचार सब अखबारों में छपते थे। जो पढ़ना जानते थे, वे बे-पढ़ों को बतलाते थे कि महात्माजी उपवास कर रहे हैं। शहरों ने जाना, शहरों में सामान खरीदने के लिए आनेवाले किसानों ने जाना और वे इस समाचार को गाँवों में ले गए | यात्रियों ने भी यही किया।

"महात्माजी उपवास क्यों कर रहे हैं?"

"इसलिए कि हम हिन्दू लोग अछूतों के लिए अपने मंदिर खोल दें और अछूतों के साथ अच्छा बर्ताव करें |"

गांधीजी की यंत्रणा से उनके भक्तों को पीड़ा पहुँचती थी और वे जानते थे कि पृथ्वी पर ईश्वर के इस अवतार को मारना अच्छा नहीं है। उनकी वेदना को बढ़ने देना पाप है। जिन्हें

गांधी ने हरिजन कहा है, उनके साथ अच्छा सलूक करके गांधीजी के प्राण बचाना पवित्र कार्य है।

---

1. यह पुस्तक मंगल प्रभात के नाम से 'सस्ता साहित्य मंडल' द्वारा प्रकाशित हो चुकी है | इसमें सत्य, अहिंसा आदि एकादश व्रतों पर गांधीजी के लेख हैं।

17 / राजनीति से अलग

'ऐतिहासिक उपवास' ने गांधीजी को मोटी, ऊँची दीवार तोड़कर समाज-सुधार के विशाल उपेक्षित क्षेत्र में प्रवेश करने का अवसर मिला | उनके अनेक मित्रों को दुःख हुआ; क्योंकि वह अपना मार्ग छोड़कर हरिजनों तथा किसानों के कल्याण-कार्य में पड़ गए | राजनैतिक लोग चाहते थे कि वह राजनैतिक बने रहें, परंतु गांधीजी ग्रामीणों के लिए पोषक-तत्त्वों को सर्वश्रेष्ठ राजनीति तथा हरिजनों के सुख को स्वतंत्रता का राजमार्ग समझते थे।

समाज-सुधार सदा से उनका प्रिय कार्य रहा था। 25 जनवरी 1942 के हरिजन में उन्होंने घोषणा की थी-"मैंने हमेशा यह माना है कि हर समय पार्लामेण्टरी कार्यक्रम किसी राष्ट्र की सबसे छोटी प्रवृत्ति है। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण तथा स्थायी कार्य बाहर किया जाता है।" वह चाहते थे कि व्यक्ति अधिक करे ताकि राज्य कम करे। नीचे जितना अधिक काम होगा, ऊपर से उतनी ही कम आज्ञा आरोपित होगी।

वास्तव में सरकार के विरुद्ध गांधीजी की प्रतिक्रिया इतनी तीव्र थी कि 27 अप्रैल 1940 के हरिजन में उन्होंने प्रतिज्ञा की कि स्वतंत्र भारत की सरकार में वह सम्मिलित नहीं होंगे। उन्होंने कहा कि वह सरकारी जगत के बाहर अपना हिस्सा अदा करेंगे। वह इतने धार्मिक थे कि किसी सरकार के साथ अपने-आपको अभिन्न नहीं बना सकते थे।

चूँकि गांधीजी का दर्शन यह था, इसलिए अपने समाज-सुधार-कार्य के लिए वह अनेक क्रियाशील सदस्योंवाले विशिष्ट स्वेच्छाधीन संगठनों पर निर्भर रहते थे।

फरवरी 1933 में गांधीजी ने जेल में ही 'हरिजन सेवक संघ' की स्थापना की तथा यंग इंडिया के स्थान पर हरिजन निकाला। 8 मई को उन्होंने आत्मशुद्धि के लिए तथा आश्रमवासियों को भोग के बजाय सेवा का महत्त्व समझाने के लिए तीन सप्ताह का उपवास शुरू किया। उपवास के पहले ही दिन सरकार ने उन्हें छोड़ दिया | 'ऐतिहासिक उपवास' के सात दिनों की यंत्रणा के बाद यह निश्चित प्रतीत होता था कि इक्कीस दिन का यह

अनशन उनके लिए घातक होगा और ब्रिटिश सरकार गांधीजी को जेल में नहीं मरने देना चाहती थी।

वह उपवास को सकुशल पार कर गए।

छोटा उपवास इतना भयंकर क्यों था और दूसरा, उससे तीन गुने समय का उपवास असानी से, कैसे सह लिया गया? पहले उपवास में गांधीजी बराबर मंत्रणाएँ करते रहे और अस्पृश्यता का कलंक मिटाने की इच्छा उन्हें खाती रही, साथ ही उनका शरीर भी जलता रहा। इक्कीस दिन के उपवास में शरीर तथा मस्तिष्क को आराम मिला । उनका छोटा-सा शरीर बलवान इच्छा-शक्ति का दास था।

अपनी रिहाई के लिए सरकार के प्रति मैत्री के संकेत रूप गांधीजी ने सविनय अवज्ञा-आंदोलन छः सप्ताह के लिए स्थगित कर दिया। 15 जुलाई को उन्होंने विलिंगडन को मुलाकात के लिए लिखा। वाइसराय ने इन्कार कर दिया | 1 अगस्त को गांधीजी ने यरवडा से रास जाने का विचार किया। उसी रात को उन्हें चौंतीस आश्रमवासियों के साथ गिरफ्तार कर लिया गया, परंतु तीन दिन बाद छोड़ दिया गया और पूना शहर में ही रहने का आदेश दिया गया। आधे घंटे बाद उन्होंने इस आदेश को भंग किया और उन्हें फिर गिरफ्तार कर लिया गया तथा एक वर्ष की कैद की सजा दे दी गई। 16 अगस्त को उन्होंने फिर उपवास प्रारंभ किया, 20 अगस्त को हालत खतरनाक हो जाने से उन्हें अस्पताल पहुँचाया गया और 23 तारीख को उन्हें बिना किसी शर्त के छोड़ दिया गया। मगर उन्होंने यही माना कि एक वर्ष की सजा भोग रहे हैं और घोषणा की कि 3 अगस्त 1934 से पहले वह सविनय-अवज्ञा-आंदोलन फिर से चालू नहीं करेंगे।

1933 तक गांधीजी ने अपने-आपको पूर्णतया उन संस्थाओं के हवाले कर दिया, जो उन्होंने जन-कल्याण तथा शिक्षण के लिए स्थापित की थीं। उन्होंने साबरमती आश्रम एक हरिजन संस्था को दे दिया और वर्धा में अपना मुकाम बनाया | यहीं से 7 नवंबर 1933 को उन्होंने

हरिजन-कार्य के लिए दस महीने का दौरा प्रारंभ किया। आराम के लिए बिना एक बार भी लौटे, वह भारत के प्रत्येक प्रांत में घूमे।

15 जनवरी 1934 को बिहार प्रांत के बड़े भाग में भयंकर भूचाल आया | गांधीजी अपना दौरा स्थगित कर मार्च में वहाँ जा पहुँचे। वह गाँव-गाँव में लोगों को सांत्वना, शिक्षा तथा उपदेश देते हुए नंगे पाँव घूमे | उन्होंने जनता से कहा कि यह भूचाल तुम्हारे पापों का दंड है, खासकर अस्पृश्यता के पाप का।" इस अंधविश्वास पर ठाकुर को तथा अन्य शिक्षित भारतवासियों को रोष आया। ठाकुर ने गांधीजी की भर्त्सना की। समाचार-पत्रों को दिए गए एक वक्तव्य में ठाकुर ने कहा-"भौतिक दुर्घटनाओं का अनिवार्य तथा एकमात्र मूल भौतिक तथ्यों के किसी संयोग में होता है।...यदि हम आचार-नीति के सिद्धांतों को विश्व-संबंधी प्राकृतिक घटनाओं से जोड़ने लगें, तो हमको मानना पड़ेगा कि मनुष्य की प्रकृति नैतिकता में उस दैव से श्रेष्ठ है, जो अच्छे आचरण के पाठ निष्कृष्टतम बर्ताव की मतवाली हरकतों के द्वारा सिखाता है |...हम तो इस विश्वास में अपने-आपको पूर्णतया सुरक्षित समझते है कि हमारा पाप तथा हमारी भूलें चाहे तथा जितने भीषण क्यों न हों, उनमें इतना बल नहीं है कि सृष्टि के ढाँचे को गिराकर चकनाचूर कर दें ।"

गांधीजी इससे विचलित नहीं हुए । उन्होंने उत्तर दिया-"जड़ और चेतन के बीच एक अविच्छेद गठ-बंधन है |...विश्व-संबंधी प्राकृतिक घटनाओं तथा मानव- आचरण का पारस्परिक बंधन एक जीवित विश्वास है और मुझे ईश्वर के निकट ले जाता है।" जिस समय गांधीजी ईश्वर की दुहाई देने लगते थे, तब उनसे तर्क नहीं किया जा सकता था। दीनों की सहायता करना गांधीजी अपना प्रधान अनिवार्य कर्तव्य मानते थे और चूँकि गांधीजी तथा गांधीजी का ईश्वर साझीदार थे, इसलिए महात्माजी सर्वशक्तिमान परमात्मा को अपने काम में शामिल कर लेते थे। उन्होंने लिखा था-"भूखी मरनेवाली और बेकार जनता के सामने ईश्वर जिस एकमात्र स्वीकार्य रूप में प्रकट होने का साहस कर सकता है, वह है काम और भोजन तथा मजूरी का आश्वासन |

यह विचार कि गांधीजी गरीबी का समर्थन करते थे, मिथ्या है। वह तो कुछ चुने हुए आदर्शवादियों को प्रेरित करते थे कि आत्म-त्याग के द्वारा जनता की सेवा करें | सारे राष्ट्र के लिए उनका कहना था-"किसी ने भी कभी यह विचार नहीं किया कि दुर्दमनीय दरिद्रता का परिणाम नैतिक पतन के सिवा कुछ और नहीं हो सकता है |"

गांधीजी चरम दरिद्रता और चरम संपत्ति, दोनों की निन्दा करते थे।

1933 और 1939 के बीच गांधीजी ने अपने जन-कल्याण के मार्ग में अन्य बातों को नहीं आने दिया | इसमें अनेक तूफान भी आए | 25 जून 1935 को पूना में किसी हिन्दू ने, जो शायद हरिजनों को समानता देने का विरोधी था, एक मोटरगाड़ी पर इस भ्रम में बम फेंका कि उसमें गांधीजी बैठे हुए थे। कुछ दिन बाद गांधीजी के एक समर्थक ने एक हरिजन-विरोधी के लाठी मारी । इन दोनों पापों का प्रायश्चित करने के लिए गांधीजी ने जुलाई 1934 में सात दिन का उपवास किया।

गाँवों की सभाओं में तथा हरिजन में गांधीजी कृषक-जनता को भोजन के बारे में प्रारंभिक बातें बताने लगे। वह जानते थे कि बीज का सुधार, खाद का उचित उपयोग और पशुओं की उचित देख-भाल आधारभूत राजनैतिक समस्याओं को हल कर सकते हैं।

गांधीजी ने ग्राम्य-जीवन के उन पहलुओं पर भी ध्यान दिया, जो कृषि से संबंध नहीं रखते थे। 29 अगस्त 1936 के हरिजन में उन्होंने लिखा-"हमें गाँवों को आत्म-निर्भर बनाने पर शक्ति लगानी है।"

26 जुलाई 1942 के हरिजन में गांधीजी ने आदर्श भारतीय गाँव की व्याख्या की -"यह एक संपूर्ण जनतंत्र होगा, जो अपनी जीवन-संबंधी आवश्यकताओं के लिए, जिनमें दूसरे पर निर्भरता अनिवार्य है, अन्योन्याश्रित रहेगा। इस प्रकार प्रत्येक गाँव का सबसे पहला काम होगा खुद अपना अनाज पैदा करना तथा अपने कपड़े के लिए कपास पैदा करना | उसमें गोचर-भूमि होगी तथा प्रौढ़ों और बच्चों के लिए मनोरंजन के साधन तथा खेल-कूद का मैदान होगा | गाँव में नाटक-घर, पाठशाला और सार्वजनिक भवन की व्यवस्था होगी।

बुनियादी पाठ्यक्रम पूरा होने तक शिक्षा अनिवार्य होगी | जहाँ तक संभव हो, प्रत्येक प्रवृत्ति सहकारिता के आधार पर चलाई जायगी |" गांधीजी की यह भी कल्पना थी कि प्रत्येक गाँव के घर-घर में बिजली पहुँच जाय।

गांधीजी ने एक बार कहा था - मैं ऐसे समय की कल्पना नहीं कर सकता जब कोई भी मनुष्य दूसरे से अधिक धनवान नहीं होगा । सर्वाधिक पूर्णता प्राप्त संसार में भी हम असमानता से नहीं बच सकेंगे, परंतु हम लड़ाई-झगड़े और कटुता से बच सकते हैं और बचना आवश्यक भी है। आज भी धनवानों तथा गरीबों के पूर्ण मैत्री के साथ रहने के अनेक उदाहरण मिलते हैं। ऐसे उदाहरणों को बढ़ाना चाहिए।"

गांधीजी यह काम 'अमानतदारी' के द्वारा कराना चाहते थे।

28 जुलाई 1940 को गांधीजी ने हरिजन में लिखा था-"गरीबों का शोषण कुछ लखपतियों को नष्ट करके नहीं मिटाया जा सकता, बल्कि गरीबों की अज्ञानता को दूर करके और उन्हें शोषणकर्ताओं के साथ असहयोग करना सिखाकर मिटाया जा सकता है। इससे शोषणकर्ताओं का हृदय भी बदल जायगा |"

परंतु समय बीतने पर भी तथा गांधीजी के तमाम प्रबोधनों से भी कोई अमानतदार पैदा नहीं हुए | अपनी मृत्यु से पहले गांधीजी को किसी जमीन्दार अथवा मिल मालिक द्वारा स्वेच्छापूर्वक त्याग का समाचार नहीं मिला।

अतः धीरे-धीरे गांधीजी के आर्थिक विचार बदलने लगे | वह वर्ग-सहयोग का तो समर्थन करते रहे, परंतु गरीबी मिटाने के नए उपाय खोजने लगे। आर्थिक मामलों में वह राज्य की साझेदारी के हामी बन गए। वह कहने लगे कि समानीकरण की प्रक्रिया कानून की सहायता से होनी चाहिए।

1941 में तथा दुबारा 1945 में गांधीजी ने भारतीय पूँजीपतियों को चेतावनी दी-"अहिंसक पद्धति की सरकार स्पष्ट रूप से असंभव है जबतक कि धनवानों तथा करोड़ों भूखे लोगों के बीच की चौड़ी खाई बनी रहती है ।...यदि संपत्ति तथा संपत्तिजनित अधिकार

स्वेच्छापूर्वक नहीं त्यागे गए तथा इन्हें सबके समान हित में नहीं बाँटा गया, तो एक दिन खूनी क्रांति अवश्यंभावी है।"

1942 में मैंने गांधीजी से पूछा-"स्वतंत्र भारत में क्या होगा? किसान-वर्ग की अवस्था को उन्नत बनाने के लिए आपका क्या कार्यक्रम है?"

गांधीजी ने उत्तर दिया--"किसान लोग भूमि छीन लेंगे | हमें उनसे कहना नहीं पड़ेगा कि भूमि छीन लो। वे अपने-आप छीन लेंगे।

"क्या जमीन्दारों को मुआवजा दिया जाएगा?" मैंने पूछा।

"नहीं" गांधीजी ने कहा-"आर्थिक दृष्टि से यह संभव नहीं है ।"

एक भेंट करनेवाले ने गांधीजी से कहा-"कपड़े की मिलों की संख्या बढ़ रही है।"

"यह दुर्भाग्य है," उन्होंने कहा-"अच्छा होगा कि किसानों के, जिनके पास कम काम रहता है, करोड़ों घरों में कपड़ा तैयार हो |"

भौतिक आवश्यकताओं की तथा उन्हें पूरा करनेवाली वस्तुओं की वृद्धि को गाँधीजी सुख अथवा दैवत्व का राजमार्ग नहीं मानते थे। उनका कहना था—"सच्चा अर्थशास्त्र वही है, जो सामाजिक न्याय तथा नैतिक मूल्यों का प्रतिपादन करता है। आधुनिक परिभाषा में व्यक्तित्व खोकर मशीन का पुर्जा मात्र बन जाना मनुष्य की प्रतिष्ठा को गिराना है।"

गांधीजी ने लिखा था-"व्यक्तिगत स्वंतत्रता के बिना समाज का निर्माण करना संभव नहीं है। जिस प्रकार मनुष्य अपने सींग या पूँछ नहीं उगा सकता, उसी प्रकार यदि उसमें स्वयं विचार करने की शक्ति नहीं है, तो वह मनुष्य के रूप में अपना अस्तित्व नहीं रख सकता | अतः लोकतंत्र वह अवस्था नहीं है, जिसमें लोग भेड़ों की तरह बर्ताव करे |"

गांधीजी इस धारणा से सहमत नहीं थे कि लोकतंत्र का अर्थ व्यक्तिगत स्वतंत्रता का हनन करके आर्थिक स्वतंत्रता है, अथवा बिना आर्थिक स्वतंत्रता के राजनैतिक स्वतंत्रता है।

गांधीजी के व्यक्तिवाद का अर्थ था बाह्य परिस्थितियों से अधिकाधिक स्वतंत्रता तथा आंतरिक गुणों का विकास |

1942 में, जब मैं एक सप्ताह गांधीजी का मेहमान रहा, मैंने उनकी कुटिया की दीवार पर केवल एक सजावट देखी: ईसा मसीह की एक सादा तसवीर, जिस पर लिखा था-"यह हमारी शांति है ।" मैंने गांधीजी से इसके बारे में पूछा | उन्होंने उत्तर दिया-"मैं ईसाई हूँ। ईसाई, हिन्दू, मुसलमान और यहूदी |"

यद्यपि गांधीजी एक हिन्दू सुधारक थे और हिन्दू धर्म पर बाह्य प्रभावों का स्वागत करते थे, परंतु हिन्दू रिवाजों तथा विश्वासों को छोड़ना उन्हें पसंद नहीं था। 1927 में देवदास का राजगोपालाचारी की पुत्री लक्ष्मी से प्रेम हो गया और उन्होंने उससे विवाह करना चाहा | परंतु राजगोपालाचारी ब्राह्मण थे और गांधीजी वैश्य थे, और विभिन्न जातियों के बीच विवाह-संबंध नहीं होता | युवक-युवतियों का अपने साथी पसंद करने भी ठीक नहीं था-विवाह-संबंध तो माता-पिता ठीक करते हैं। परंतु देवदास और लक्ष्मी अड़े हुए थे और अंत में दोनों के पिताओं ने इस शर्त पर विवाह की स्वीकृति देना मंजूर किया कि पाँच वर्ष अलग रहने के बाद भी दोनों विवाह की इच्छा प्रकट करें| इस प्रकार देवदास तथा लक्ष्मी ने पाँच वर्ष तक दर्दभरी प्रतीक्षा की और 16 जून 1933 को पूना में दोनों के प्रसन्न-पिताओं की उपस्थिति में ठाठ-बाट के साथ विवाह हुआ।

गांधीजी में कट्टर रूढ़िवादी तथा पूर्ण सुधारवादी मूर्त्ति-भंजक का एक बड़ा लुभावना मिश्रण था। लगता तो यह था कि अस्पृश्यता-उन्मूलन का स्वाभाविक परिणाम जाति-भेद मिट जाना था, क्योंकि जब लोग अछूतों से मिलने-जुलने लगें, तो ऊँची जातियों के बीच की दीवार ढह जानी चाहिए। परंतु कई वर्षों तक गांधीजी जाति बंधनों का समर्थन करते रहे।

बाद में इन्हीं गांधीजी ने कहा-"अंतर्जातीय सहभोजों तथा अंतर्जातीय विवाहों पर बंधन हिन्दू धर्म का अंग नहीं है। आज ये दोनों प्रतिबंध हिन्दू समाज को कमजोर बना रहे हैं।"

परंतु यह भी गांधीजी का अंतिम मत नहीं था। कट्टर परंपराओं से नाता तोड़ने के बाद वह इनसे अधिकाधिक दूर हटते गए और 5 जनवरी 1946 के हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड में उन्होंने घोषणा की-"विवाह के इच्छुक सब लड़के तथा लड़कियों से मेरा कहना है कि सेवाग्राम में उनका विवाह संपन्न नहीं हो सकता जबतक कि उनमें से एक हरिजन न हो|"

वह विभिन्न धर्मावलंबियों में परस्पर विवाह-संबंध के विरोधी थे, परंतु बाद में इसके भी पक्ष में हो गए।

बाद के वर्षो में ब्रह्मचर्य पर भी गांधीजी के विचार बदल गए| 1935 में आचार्य कृपलानी एक बंगाली लड़की से प्रेम करने लगे और उससे विवाह करना चाहा| गांधीजी ने सुचेता को बुलाया और समझाने का प्रयत्न किया| उन्होंने कहा-"वह विवाह से नष्ट हो जाएगा| सामाजिक समस्याओं पर से उसका ध्यान हट जाएगा।" गांधीजी ने सुचेता को सलाह दी कि किसी दूसरे से विवाह कर ले।

एक वर्ष बाद गांधीजी ने सुचेता को फिर बुलाया और विवाह की स्वीकृति दे दी। "मैं तुम दोनों के लिए प्रार्थना करूँगा," उन्होंने कहा।

बुराइयों के विरुद्ध लड़नेवाले के नाते गांधीजी को अपने विचारों में दृढ़ता रखनी पड़ती थी। सत्य भक्त होने के नाते उन्हें अपने विचारों को बदलने की क्षमता रखना भी आवश्यक था। कभी-कभी वह अपने मत का इतनी दृढ़ता के साथ समर्थन करते थे कि वह अच्छा नहीं लगता था, परंतु आवश्यकता पड़ने पर वह अपनी स्थित को इस कदर बदल देते थे कि उनके अनुयायी असमंजस में पड़ जाते थे। यद्यपि आमतौर पर वह अपनी स्थिरता सिद्ध करने का प्रयत्न करते थे, परंतु अपनी अस्थिरताओं को भी स्वीकार करते थे। वह चट्टान की तरह अटल भी हो सकते थे और नरमी के साथ झुकनेवाले भी| किसी समय वह कांग्रेस को अपने आदेशों पर चलाते थे, तो कभी उसकी किस्मत पर और उसकी मूर्खताओं पर छोड़ देते थे| उनके हाथ में जबरदस्त शक्ति थी, परंतु वह अक्सर काम में नहीं आती थी। अत्यंत निर्णायक मुद्दों में वह अपने विरोधियों के आगे भी झुक जाते थे, हालाँकि वह उन्हें अपनी एक उँगली के इशारे से खत्म कर सकते थे। उनमें अधिनायक की महान शक्ति थी

और लोकतंत्री का मानस था। अधिकार से उन्हें प्रसन्नता नहीं होती थी, संतुष्टि चाहनेवाला विकृत मानस उनके पास नहीं था | परिणामस्वरूप वह विश्रांति अनुभव करनेवाले व्यक्ति थे। सर्वज्ञता, अचूकपन, सर्वशक्तिमता तथा प्रतिष्ठा की छाप डालने की समस्या उन्हें कभी परेशान नहीं करती थी।

प्रत्येक नेता के सरंजाम में एक दीवार भी शामिल रहा करती है। यह दीवार ऊँची, ईंटों की बनी हुई और पहरेदारों की पलटन हो सकती है, या वह प्रश्न का उत्तर न देने तथा गूढ़ मुसकराहट के रूप में हो सकती है। इसका उद्देश्य होता है दूरी तथा भय के द्वारा श्रद्धा उत्पन्न कराना और दुर्बलताओं तथा भेदों पर पर्दा डालना | गांधीजी के चारों ओर ऐसी कोई दीवार नहीं थी | एक बार उन्होंने कहा था-"में बिना किसी संकोच के कहता हूँ कि मैंने अपने सारे जीवन में कुटिलता का सहारा कभी नहीं लिया।" उनका मानस तथा उनके भावावेग उनके शरीर से भी अधिक अनावृत थे।

गांधीजी एक शाश्वत उपदेष्टा थे। इसलिए उन्होंने अपने-आपको ऐसा बना लिया था कि सब कोई उनके पास पहुँच सकते थे। उनका यह गुण केवल पूर्ण ही नहीं था, क्रियात्मक भी था।

अगस्त 1947 में गांधीजी कलकत्ता में भारतीय इतिहास के सबसे घिनौने संकट का सामना कर रहे थे। शहर की सड़कों पर हिन्दू और मुसलमानों का खून बह रहा था | एक दिन तड़के अमिय चक्रवर्ती उनसे मिलने आए | अमिय रवीन्द्र ठाकुर के साहित्य-मंत्री थे | उनका एक प्यारा भाई बीमारी से हाल ही में मर गया था और सांत्वना पाने और अपने दुःख को गांधीजी के साथ बँटाने के लिए वह उनसे मिलना चाहते थे। वह गांधीजी के कमरे में एक कोने में दीवार के सहारे खड़े हो गए। गांधीजी लिख रहे थे। जब उन्होंने अपना सिर उठाया, तो अमिय आगे बढ़े और अपने भाई की मृत्यु का समाचार सुनाया। गांधीजी ने मैत्री-भरी बात कही और शाम की प्रार्थना सभा में बुलाया। जब अमिय शाम को आए , तो गांधीजी ने कागज का एक पुर्जा उन्हें देते हुए कहा-"यह सीधा हृदय में से निकला है, इसलिए इसका मूल्य है |" पुर्ज पर लिखा था :

"प्रिय अमिय,

"तुम्हारी जो हानि हुई है, उसका मुझे खेद है, पर वास्तव में वह हानि नहीं है। 'मृत्यु तो निद्रा और विस्मृति है।' यह एक ऐसी मधुर निद्रा है कि उससे यह देह फिर कभी नहीं उठती और स्मृतियों का मृत-भार दूर हो जाता है। जहाँ तक मैं जानता हूँ, जैसे हम आज मिलते हैं, वैसी भेंट इस दुनिया से परे नहीं होती | जब अकेली-अकेली बूँदें मिलती हैं तो उन्हें सागर का गौरव प्राप्त होता है, जिसका कि वे एक अंग होती है | अकेली तो वे इस आशा से नष्ट हो जाती हैं कि पुनः सागर से मिलेंगी। मुझे पता नहीं है कि मैं अपनी बात इतने स्पष्ट रूप से कह सका हूँ कि तुम्हें सांत्वना मिले।

सप्रेम

बापू"

लोगों के लिए यही बात बड़ी सांत्वना थी कि उन्होंने उनकी परवाह की | सारे राष्ट्र के लिए चिन्ताओं के बीच वह छोटे-से-छोटे व्यक्ति का भी ध्यान रखते थे। उनका विश्वास था कि अगर राजनीति मानव-प्राणियों के दैनिक जीवन का एक अभिन्न अंग नहीं है, तो उसका मूल्य शून्य के समान है। गांधीजी का उन्मुक्त अस्तित्व मानव जाति की भलाई पर केन्द्रित था। ग्रामीण खुराक में हरी साग-सब्जियाँ हों, इस बात की चिन्ता, शोक-संतप्त संबंधी के वेदना भरे हृदय के लिए परेशानी, किसी लड़की के लिए अपने पति का चुनाव, बीमार किसान के लिए मिट्टी की पट्टी, एक ग्रंथकार के हिज्जे, ऐसी छोटी-छोटी बातों से कोई भी ऊपर उठ नहीं पाता। इसीसे जीवन का निर्माण होता है। वादों और धार्मिक सिद्धांतों की पतली हवा में कोई नहीं रह सकता।

भारत के तथा बाहर के हजारों व्यक्तियों के साथ गांधीजी का पत्र-व्यवहार था। अधिकतर तो एक पत्र चिर व्यक्तिगत संबंध का बीज बन जाता था। प्रारंभ में लोग उनसे व्यापक राजनैतिक अथवा धार्मिक मामलों में सलाह लेते थे, परंतु बाद में निजी मामलों में भी उनकी सलाह माँगने लगते थे। वह सबके लिए मातृ-समान पिता थे।

बहुत वर्षों से गांधीजी की दैनिक औसत डाक सौ पत्रों की होती थी। इनमें से वह लगभग दस पत्रों के उत्तर तो खुद अपने हाथ से लिखते थे, कुछ के उत्तर लिखाते थे और कुछ के उत्तरों के बारे में अपने सचिवों को हिदायतें दे देते थे। ऐसा कोई भी पत्र नहीं रहता था, जिसका उत्तर न दिया जाता हो।

दिन के बचे हुए भाग में वह आगंतुकों से मिलते थे। उनसे मुलाकात तय करना मुश्किल नहीं था | दिसंबर 1935 में श्रीमती मारगरेट सैंगर, गर्भ-निरोध की समर्थक, उनसे मिलने आईं; जनवरी 1936 में जापानी लेखक योन नागूची आए; जनवरी 1938 में ब्रिटिश राजनीतिज्ञ लार्ड लोथियन तीन दिन सेवाग्राम में ठहरे | महात्माजी के इतर-भारतीय मेहमानों की सूची एक अंतर्राष्ट्रीय परिचय-ग्रंथ के समान थी। विदेशी लोग समझते थे कि गांधीजी से मिले बिना उनकी भारत-यात्रा अपूर्ण थी।

उनका खयाल ठीक था। गांधीजी मूर्त्तिमान भारत थे। वह अपने को हरिजन, मुसलमान, ईसाई, हिन्दू, किसान, बुनकर कहते थे। वह भारत के साथ एकाकार हो गए थे। जनता और अलग-अलग व्यक्तियों से घुल-मिल जाने का उनमें बड़ा गुण था। वह भारत-निवासियों को मुक्त कराकर देश को स्थायी रूप से स्वतंत्र करना चाहते थे। यह इंग्लैंड से राजनैतिक मुक्ति की अपेक्षा कहीं अधिक मुश्किल था। ऐसा कैसे हो? उन्होंने सन् 1945 में लिखा-"मैं सामाजिक क्रांति का कोई भी राजमार्ग नहीं बता सकता, सिवा इसके कि हम अपने जीवन के प्रत्येक कार्य में उसका समावेश करें |" इसलिए गांधीजी की युद्धभूमि मानव-हृदय थी। वहीं उन्होंने अपना घर बनाया । औरों की अपेक्षा वह इस बात को कहीं अच्छी तरह से जानते थे कि इतनी कम लड़ाई, लड़ी और जीती गई है। उनका कहना था कि जबतक आदमी के दैनिक व्यवहार में सामाजिक क्रांति नहीं होगी, तबतक हम देश को उस समय की अपेक्षा अधिक सुखी नहीं बना सकते जबकि हम पैदा हुए थे। सामाजिक क्रांति नए मानव को जन्म नहीं दे सकती | नए प्रकार का मानव ही सामाजिक-क्रांति को जन्म देता है।

18 / महायुद्ध का प्रारंभ

जवाहरलाल नेहरू 1936 और 1937 के लिए कांग्रेस के अध्यक्ष थे। यह एक असाधारण सम्मान तथा भारी उत्तरदायित्व भी था। परंतु उन्होंने स्वयं स्वीकार किया कि गांधीजी कांग्रेस के 'स्थायी महा-अध्यक्ष' थे। कांग्रेस गांधीजी की आज्ञा पर चलती थी। राजनीति के भीतर की बात हो या राजनीति से बाहर की, जनता तथा अधिकांश कांग्रेसी नेता उनकी मुट्ठी में होने के कारण, वह यदि चाहते, तो कांग्रेस से अपनी इच्छानुसार कार्य करवा सकते थे और उसके निर्णयों को रद्द कर सकते थे|

गांधीजी की रजामंदी मिलने पर ही कांग्रेस ने नए ब्रिटिश संविधान के अधीन 1937 के पूर्व भाग में होनेवाले प्रांतीय तथा केन्द्रीय विधानमंडलों के चुनावों में भाग लिया| 1 मई 1937 के हरिजन में गांधीजी ने स्पष्ट किया कि विधानमंडलों का बहिष्कार सत्य और अहिंसा की तरह कोई शाश्वत सिद्धांत नहीं है।

क्या कांग्रेस उन प्रांतों में पद-ग्रहण करे, जिनमें उसे बहुमत प्राप्त हुआ है? गांधीजी की सलाह पर मार्च 1937 में कांग्रेस ने इसके पक्ष में फैसला किया, लेकिन इस शर्त के साथ, कि प्रातों के गवर्नर हस्तक्षेप नहीं करेंगे और इस आशा से कि पद-ग्रहण का उपयोग देश को स्वाधीनता के लिए तैयार करने में किया जाएगा।

कांग्रेस की कुल सदस्य-संख्या, जो 1938 के प्रारंभ में 31,02,113 थी, 1939 के प्रारंभ में बढ़कर 44,78,720 हो गई | परंतु गांधीजी ने, जो केवल संख्या से प्रभावित होनेवाले नहीं थे, कांग्रेस को चेतावनी दी कि वह अधिकार तथा पद-लोलुपता से भ्रष्ट न हो जाय | उन्हें पतन के लक्षण दिखाई देने लगे थे और उन्होंने स्वीकार किया कि वह सविनय-अवज्ञा-आंदोलन की जिम्मेदारी नहीं ले सकते, क्योंकि यद्यपि जनता में काफी अहिंसा है, तथापि जो लोग जनता को संगठित करनेवाले हैं, उनमें काफी अहिंसा नहीं है।

करोड़ों लोग गांधीजी की आज्ञा मानते थे, ढेरों उनकी पूजा करते थे, भीड़-की भीड़ अपने को उनका अनुयायी गिनती थी, परंतु उनके समान आचरण करनेवाले मुट्ठी भर थे। गांधीजी

इस बात को जानते थे। परंतु यह जानकारी न तो उनकी ज्वालामुखी जैसी शक्ति को कम करती थी, न उनके लोहे-जैसे इरादे को बदलती थी | इसके विपरीत, 1930 के बाद के वर्षों में जब वह चीन, अबीसीनिया, स्पेन, चेकोस्लोवाकिया और सबसे ऊपर जर्मनी पर अंधकार के बादल घिरते हुए देख रहे थे, तो शुद्ध-शांतिवाद के लिए उनका जोश बढ़ रहा था | 6 फरवरी 1939 को उन्होंने कहा था-"दुर्गम अंधकार में मेरा विश्वास अधिक-से-अधिक उज्ज्वल होता है।" उन्हें द्वितीय महायुद्ध नजदीक आता दिखाई दे रहा था।

गांधीजी का शांतिवाद उनके आंतरिक विकास से उत्पन्न हुआ था।

एक बार गांधीजी जब जेल में थे, उनके एक साथी कैदी को बिच्छू ने काट लिया। गांधीजी ने उसके विष को चूस लिया। कुष्ठ-पीड़ित परचुरे शास्त्री ने सेवाग्राम-आश्रम में आना चाहा, कुछ आश्रम-वासियों ने आपत्ति की, उन्हें छूत लगने का डर था। गांधीजी ने न केवल उन्हें आश्रम में भरती किया, बल्कि उनकी मालिश भी की।

दूसरों को अपना मतानुयायी बनाने की उन्हें तनिक भी आशा न थी। परंतु जहाँ पहले वह विदेशियों द्वारा कोंचे जाने पर भी टस-से-मस नहीं हुए थे और यह दलील देते थे कि भारत में हिंसा के होते हुए वह पश्चिम को अहिंसक नहीं बना सकते, वहाँ 1935 में उन्होंने अबीसीनियावासियों को युद्ध न करने की सलाह दी।

गांधीजी ने कहा-"यदि अबीसीनियावासी बलवान की अहिंसा का रुख अपना लेते, अर्थात ऐसी अहिंसा का पालन करते, जो टुकड़े-टुकड़े हो जाती है, पर झुकती नहीं है, तो मुसोलिनी को अबीसीनिया में कोई दिलचस्पी न रहती |"

चेकोस्लोवाकिया की तथा जर्मनी के यहूदियों की दुःखद घटना ने उनके हृदय को और भी गहरा स्पर्श किया।

हरिजन के एक लेख में गांधीजी ने चेकों को सलाह दी-"हिटलर की मर्जी के मुताबिक चलने से इन्कार कर दो और इस प्रयत्न में बिना हथियार उठाए मर-खप जाओ। ऐसा करने में यद्यपि शरीर जाता है, परंतु अपनी आत्मा, अर्थात अपनी इज्जत बच जाती है।"

दिसंबर 1938 में अंतर्राष्ट्रीय मिशनरी सम्मेलन के कुछ प्रमुख ईसाई पादरी सेवाग्राम में गांधीजी से मिलने आए | ये लोग चेकों के लिए गांधीजी के बताए हुए नुस्खे पर बहस करने लगे। एक पादरी ने कहा-"आप हिटलर और मुसोलिनी को नहीं पहचानते हैं। इनके दिलों में किसी तरह की नैतिक प्रतिक्रिया नहीं हो सकती, इनमें आत्मा नहीं है और जगत के मत का इन पर लेशमात्र भी असर नहीं होता। उदाहरण के लिए, यदि चेक लोग आपकी सलाह मानकर अहिंसा से इनका मुकाबला करें, तो क्या यह इन अधिनायकों के हाथ में खेलना नहीं होगा?"

मुसोलिनी ने आपत्ति की-"आपकी दलील पहले ही से यह मानकर चलती है कि मुसोलिनी और हिटलर का उद्धार असंभव है |"

11 नवंबर 1938 के हरिजन में गांधीजी ने लिखा था-"मेरी सारी सहानुभूति यहूदियों के साथ है। ये लोग ईसाईयत के अछूत रहे हैं ।...जर्मनी द्वारा यहूदियों पर अत्याचार इतिहास में अपना जोड़ नहीं रखता ।...यदि मानवता के नाम पर तथा मानवता के हित में कोई भी न्यायोचित युद्ध हो सकता, तो एक संपूर्ण जाति पर निरंकुश अत्याचार रोकने के लिए जर्मनी के विरुद्ध लड़ाई पूरी तरह न्यायोचित होती। परंतु मैं किसी तरह के युद्ध में विश्वास नहीं करता ।...मुझे यकीन है कि यदि यहूदियों में कोई हिम्मत और सूझ-बूझवाला पैदा हो जाय और अहिंसात्मक कार्रवाई में उनका नेतृत्व करे, तो निराशा का अँधेरा पल-भर में आशा के प्रकाश में बदल सकता है।...इससे जर्मन-यहूदी इतर-जर्मनों पर एक चिरस्थायी विजय प्राप्त करेंगे, इस अर्थ में कि वे इनके हृदयों में मानव-प्रतिष्ठा का मूल्य स्थापित कर सकेंगे |"

इन शब्दों के लिए नात्सी अखबारों ने गांधीजी पर भीषण बाण बरसाए। भारत के विरुद्ध उचित कार्रवाई की धमकियाँ भी दी गईं। परंतु गांधीजी ने उत्तर दिया-"यदि अपने देश को, या अपने-आपको या भारत-जर्मन संबंधों को नुकसान पहुँचने के डर से मैं वह सलाह देने में संकोच करूँ, जिसे मैं अपने हृदय के अंतस्तल से सौ फीसदी ठीक समझता हूँ, तो मुझे अपने-आपको कायरों की पंक्ति में रखना चाहिए |"

1946 में हिटलर की मृत्यु के बाद मैंने गांधीजी से इस विषय पर बात की। गांधीजी ने कहा-"हिटलर ने पचास लाख यहूदियों को मौत के घाट उतार दिया। हमारे समय का यह सबसे बड़ा अपराध है। परंतु यहूदियों को चाहिए था कि कसाई के छुरे के आगे सिर झुका देते। उन्हें चट्टानों पर से समुद्र में कूद पड़ना चाहिए था | इससे संसार की तथा जर्मनी के लोगों की भावनाएँ जागृत हो जातीं |... हुआ यह कि उस तरह नहीं, तो दूसरी तरह लाखों यहूदी मारे गए।"

दिसंबर 1938 में जापानी-संसद के एक सदस्य श्री ताका-ओका सेवाग्राम आए | उन्होंने पूछा कि भारत और जापान के बीच की एकता कैसे फलीभूत हो सकती है।

गांधीजी ने कर्कश स्वर में उत्तर दिया-"यह संभव हो सकता है यदि जापान भारत पर अपनी लालचभरी निगाहें डालना बंद कर दे।"

24 अगस्त को जिस दिन स्तालिन-हिटलर-करार पर हस्ताक्षर हुए, लंदन से महिला ने गांधीजी को तार दिया-"कृपया कदम उठाइए। संसार नेतृत्व की प्रतीक्षा में है।" युद्ध प्रारंभ होने में अभी एक सप्ताह की देर थी। दूसरी महिला ने इंग्लैंड से बेतार का संदेश भेजा-"अनुरोध है कि आप शासकों पर तथा सब देशों के निवासियों पर, बल में नहीं बल्कि युक्ति में अपनी अटल श्रद्धा का तुरंत इज़हार करें |" सेवाग्राम में इसी प्रकार के अनुरोधक संदेशों का ढेर लग गया।

अब समय निकल चुका था। 1 सितंबर 1939 को नात्सी सेना ने पोलैण्ड पर धावा बोल दिया।

रविवार, 3 सितंबर 1939, सुबह 11 बजे | इंग्लैंड के गिरजों में भीड़ जमा थी। ब्रिटिश सरकार ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी | उस दिन का तीसरा पहर मैंने पेरिस के बाहर देहात में बिताया | शाम को 5 बजे एक अकेला वायुयान ए से निकल गया | रेडियो ने घोषणा की कि फ्रांस युद्ध में शामिल हो गया है। हम लोग शहर को वापस चले | छोटे-छोटे कसबों की गलियों में स्त्रियाँ खड़ी-खड़ी विषाद-भरी निगाहों से शून्य की ओर-

उत्साह-रहित भविष्य की ओर-ताक रहीं थीं | कुछ नाखून चबा रही थीं। सेना द्वारा सैनिक कार्यों के हेतु लिए गए भारी, सुपोषित बलिष्ठ कृषकोपयोगी घोड़ों की लंबी कतार के कारण हमारी मोटरगाड़ी को रुकना पड़ा। एक किसान ने अपने घोड़े को अपनी बाँह में लपेट लिया, अपना गाल उसके मुँह पर लगा दिया और उसके कान में कुछ कहने लगा। घोड़े ने अपनी गर्दन ऊपर-नीचे हिलाई। दोनों एक-दूसरे से बिदा ले रहे थे। 1945 में इस तरह की बिदाइयाँ समाप्त होने से पहले संसार के सब भागों में तीस लाख से ऊपर व्यक्ति जीवन से विदाई ले चुके थे। तीस लाख से ऊपर नर, नारियाँ और बच्चे मर गए, दस करोड़ से ऊपर घायल, चुटैल और अशक्त हो गए, लाखों घर तहस-नहस हो गए, दो शहरों पर परमाणु-बम गिरे, आशाएँ नष्ट हो गईं, आदर्श खट्टे हो गए, नैतिक मान संदिग्ध हो गए।

“हमारे पास वैज्ञानिक तो बहुत हैं, पर ईश्वर भक्त बहुत कम हैं," संयुक्त राज्य सेना के प्रधान अधिकारी जनरल ओमर एन. ब्रैडले ने 10 नवंबर 1948 को बोस्टन में कहा था- “हमने परमाणु के रहस्य को पकड़ लिया है और गिरि-प्रवचन[1] को त्याग दिया है। संसार ने बिना बुद्धि की चमक और बिना विवेक की सामर्थ्य प्राप्त की है। हमारा यह संसार पारमाणविक-भीमों तथा नैतिक-बौनों का संसार है। हम शांति के बारे में इतना नहीं जानते, जितना युद्ध के बारे में, जीने के बारे में उतना जानते, जितना मारने के बारे में।”

गांधीजी ने परमाणु को त्याग दिया और गिरि-प्रवचन को ग्रहण किया। वह एक पारमाणविक-बौने तथा नैतिक-भीम थे | मारने के बारे में वह कुछ नहीं जानते थे और बीसवीं सदी में जीने के बारे में बहुत-कुछ जानते थे।

गांधीजी की विचारधारा को केवल वे ही पूरी तरह छोड़ सकते हैं, जिनके हृदयों में कोई शंकाए नहीं हैं।

---

1. ईसा का प्रसिद्ध उपदेश, जो बाइबिल में दिया हुआ है।

19 / चर्चिल बनाम गांधी

जिस दिन द्वितीय महायुद्ध शुरू हुआ, उसी दिन इंग्लैंड ने बिना भारतवासियों की कोई सलाह लिए घोषणा करके भारत को युद्ध में शामिल कर दिया। विदेशी नियंत्रण के इस अतिरिक्त प्रमाण ने भारत में रोष उत्पन्न कर दिया। परंतु इस पर भी दूसरे दिन शिमला से वाइसराय लार्ड लिनलिथगो का तार द्वारा बुलावा आने पर गांधीजी पहली गाड़ी से शिमला के लिए रवाना हो गए। ज्योंही महात्माजी गाड़ी की ओर चले, स्टेशन पर खड़ी भीड़ ने नारे लगाए-"हम कोई समझौता नहीं चाहते!" उस दिन गांधीजी का मौन दिवस था, इसलिए वह केवल मुसकरा दिए और रवाना हो गए।

वाइसराय तथा महात्माजी ने आनेवाले युद्ध के स्वरूप के बारे में चर्चा की और गांधीजी के शब्दों में "जब मैं वाइसराय के सामने पार्लमेण्ट-भवन तथा वेस्ट-मिन्स्टर गिरजे की और इनके संभावित विनाश की तसवीर देख रहा था, मेरा धैर्य छूट गया। मैं अधीर हो गया | अपने हृदय के भीतर मैं चुपचाप ईश्वर से बराबर झगड़ रहा हूँ कि वह ऐसी बातें क्यों होने देता है।"

गांधीजी का ईश्वर से रोज झगड़ा होता था; अहिंसा असफल हो गई, ईश्वर ने कुछ नहीं किया। परंतु हर झगड़े के बाद गांधीजी इस निश्चय पर पहुँचते थे कि "न तो ईश्वर शक्तिहीन है और न अहिंसा | शक्तिहीनता तो मनुष्यों में है। श्रद्धा न खोकर मुझे प्रयत्न करते रहना चाहिए |"

आलोचकों का कहना था कि शिमला की मुलाकात में गांधीजी ने वाइसराय से "भावावेग में निरर्थक बातें कीं ।" गांधीजी ने उत्तर दिया-"इंग्लैंड और फ्रांस के लिए मेरी सहानुभूति क्षणिक भावावेग का, या भोंड़ी भाषा में उन्माद का, परिणाम नहीं है।"

किन्तु वह कर क्या सकते थे? ईश्वर से दैनिक बहस के अलावा वह कांग्रेस के साथ निरंतर दलीलों में फँस गए थे। गांधीजी के लिए, अहिंसा एक धार्मिक विश्वास था, कांग्रेस सदा से एक नीति मानती थी।

महायुद्ध प्रारंभ होने के दूसरे दिन गांधीजी ने सार्वजनिक रूप से वचन दिया कि वह ब्रिटिश सरकार को उलझन में नहीं डालेंगे | इंग्लैंड तथा उसके मित्र-राष्ट्रों का वह नैतिक समर्थन भी करेंगे। इससे आगे वह नहीं जा सकते थे। वह युद्ध-संबंधी कार्रवाइयों में भाग नहीं ले सकते थे।

इसके विपरीत कांग्रेस युद्ध में सहायता देने को तैयार थी, यदि उसकी रखी हुई शर्तें मंजूर कर ली जाएँ।

कांग्रेस कार्य-समिति ने 14 सितंबर 1939 को घोषणा-पत्र प्रकाशित किया, जिसमें पोलैण्ड पर फासिस्त आक्रमण की निन्दा की गई और कहा गया कि "स्वतंत्र लोकतंत्री भारत आक्रमण की कार्रवाई के विरुद्ध तथा आर्थिक सहयोग के लिए अन्य स्वतंत्र राष्ट्रों का खुशी से साथ देगा।..."

इस घोषणा-पत्र की रचना करनेवाली चार दिन की चर्चाओं में गांधीजी विशेष रूप से निमंत्रित थे। जब यह स्वीकृत हो गया, तो गांधीजी ने बताया कि इसका मसविदा जवाहरलाल नेहरू ने बनाया था। उन्होंने अपनी राय बतलाते हुए कहा-"मुझे यह देखकर दुःख हुआ कि यह सोचनेवाला मैं अकेला ही था कि अंग्रेजों को जो कुछ भी सहायता दी जाय, वह बिना किसी शर्त के दी जाय।" गांधीजी को यह जैसे-का-तैसा प्रस्ताव पसंद नहीं आया कि भारत तभी लड़ेगा, जब तुम उसे स्वतंत्र कर दोगे। फिर भी उन्होंने देश से कहा कि इसे मान लिया जाय।

आलोचकों ने हल्ला मचाया कि गांधीजी ऐसा कैसे कर सकते हैं? जिस विचार का वह विरोध करते हैं, उसके समर्थन के लिए कैसे कह सकते हैं? गांधीजी ने जवाब दिया-"यदि मैं इस कारण अपने अच्छे-से-अच्छे साथियों को छोड़ दूँ कि अहिंसा के व्यापक प्रयोग में वह मेरे पीछे नहीं चल सकते, तो मैं अहिंसा का हित-साधन नहीं कर पाऊँगा।"

किसी ने ताना दिया--"क्या आपने 1918 से अबतक अपना इरादा बदल नहीं दिया ?"

प्रत्युत्तर में गांधीजी ने कहा-"लिखते समय मैं यह कभी नहीं सोचता कि पहले मैंने क्या कहा था। किसी प्रस्तुत प्रश्न के ऊपर अपने पिछले वक्तव्यों पर दृढ़ रहना मेरा लक्ष्य नहीं है। मेरा लक्ष्य है कि किसी प्रस्तुत क्षण में सत्य जिस रूप में मेरे सामने आता है, उस पर दृढ़ रहना । परिणामस्वरूप मैं एक-के-बाद-दूसरे सत्य पर बढ़ता गया हूँ।"

गांधीजी अपने विचारों से टकरानेवाले घोषणा-पत्र की हिमायत से भी आगे बढ़ गए | 26 सितंबर को वाइसराय के साथ मुलाकात में वह इसके प्रवक्ता बनकर गए। 17 अक्तूबर को लार्ड लिनलिथगो ने उत्तर दिया-"इंग्लैंड अभी नहीं कह सकता कि वह किस उद्देश्य के लिए लड़ रहा है | स्वराज्य की ओर अधिक तेजी से बढ़ना भारत के लिए ठीक नहीं है। युद्ध के बाद औपनिवेशिक दर्जे की दिशा में परिवर्तन हो जाएँगे।"

पाँच दिन बाद कार्य-समिति ने इंग्लैंड को सहायता देने के विरुद्ध निश्चय किया | उसने प्रांतों के कांग्रेसी-मंत्रिमंडलों को भी त्याग-पत्र देने का आदेश दिया। गांधीजी ने देखा कि कांग्रेस उनके निकट आती जा रही है।

समय भारत की स्वाधीनता के लिए कार्य कर रहा था। गांधीजी ने कहा था-"एक भी गोली चलाए बिना ही हम अपने लक्ष्य के निकट पहुँचते जा रहे हैं।' क

फ्रांस ने हिटलर के आगे हथियार डाल दिए। भारत में आशा के स्थान पर घबराहट फैल गई | बैंकों पर दौड़ लग गई | गांधीजी ने कहा कि लोग गड़बड़ न फैलाएँ | धीरता के साथ उन्होंने भविष्यवाणी की-"इंग्लैंड मुश्किल से मरेगा और मरना भी पड़ा, तो बहादुरी के साथ मरेगा। हम शायद पराजय के समाचार सुनें, परंतु हिम्मत हारने के समाचार नहीं सुनेंगे।"

युद्ध-संकट पर पुनर्विचार करने के लिए वर्धा में कांग्रेस-कार्य-समिति की बैठक हुई। 21 जून 1940 को उसने स्पष्ट बयान दिया कि अहिंसा के मामले में वह गांधीजी के साथ पूरी तरह नहीं जा सकती।

गांधीजी ने स्वीकार किया-"इस परिणाम पर मुझे खुशी भी है और विषाद भी। खुशी इसलिए कि मैं इस विच्छेद का आघात सह सका हूँ और मुझे अकेला खड़ा रहने की शक्ति

मिली है। विषाद इसलिए कि इतने वर्षों तक जिन लोगों को साथ लेकर चलने का मुझे गौरव मिला था, उनका साथ लेकर चलने की सामर्थ्य अब मेरे शब्दों में नहीं प्रतीत होती है।"

वाइसराय ने 29 जून को फिर गांधीजी को मुलाकात के लिए बुलाया। लार्ड लिनलिथगो गांधीजी के अमिट प्रभाव को पहचानते थे। उन्होंने सूचना दी कि इंग्लैंड भारतवासियों को भारत के शासन में अधिक विस्तृत हिस्सा देने को तैयार है।

जुलाई के प्रारंभ में कार्य-समिति की बैठक इस प्रस्ताव को तौलने के लिए हुई। गांधीजी इसे बेकार समझते थे। उन्हें राजगोपालाचारी के विलक्षण विरोध का सामना करना पड़ा | राजगोपालाचारी ने वल्लभभाई पटेल को अपनी राय का बना लिया था। केवल सीमांत-गांधी गफ्फार खाँ गांधीजी का साथ दे रहे थे। राजाजी का प्रस्ताव भारी बहुमत से पास हो गया।

युद्ध के बीच विशुद्ध शांतिवाद की दूरदर्शिता को गांधीजी कांग्रेस के गले नहीं उतार पाए। सब मानते थे कि वह राजाजी के प्रस्ताव का अंत कर सकते हैं। वास्तव में गांधीजी यदि जोर देकर कहते, तो राजाजी शायद अपना प्रस्ताव वापस ले लेते। परंतु यह जबरदस्ती मनवाना कहलाता और गांधीजी का व्यक्तिगत स्वतंत्रता में इतना अधिक विश्वास था कि वह अपनी सामर्थ्य का उपयोग करके लोगों को अपनी मर्जी के खिलाफ मत देने को या काम करने को मजबूर नहीं करना चाहते थे।

राजाजी का प्रस्ताव, गांधीजी के मतभेद के बावजूद, 7 जुलाई को स्वीकार कर लिया गया | इसमें घोषणा की गई कि यदि भारत को पूर्ण स्वाधीनता तथा केन्द्रीय भारतीय शासन दे दिए जाएँ, तो "कांग्रेस देश की प्रतिरक्षा के कारगर संगठन के प्रयत्नों में अपनी पूरी ताकत लगा देगी |"

विन्सटन चर्चिल इंग्लैंड के प्रधान मंत्री थे और देश को बहादुरी के साथ मुकाबले के लिए उत्प्रेरित कर रहे थे। पिछले वर्षों में उन्होंने भारत की स्वाधीनता के विरुद्ध अनेक वक्तव्य

दिए थे। अब उनके हाथ में इसे रोकने की सामर्थ्य थी। तदनुसार 8 अगस्त को लिनलिथगो ने बयान दिया कि वह कुछ भारतवासियों को अपनी कार्यकारिणी कौन्सिल में शामिल होने का निमंत्रण देंगे और एक युद्ध सलाहकार कौन्सिल स्थापित करेंगे, जिसकी बैठकें नियमित रूप से हुआ करेंगी। लिनलिथगो ने यह भी कहा कि ब्रिटिश सरकार अपनी मौजूदा जिम्मेदारियाँ ऐसी किसी भी भारतीय सरकार को सौंपने का विचार नहीं कर सकती, जिसके अधिकार को आबादी के बड़े तथा बलशाली तत्त्व मानने को तैयार नहीं हैं। इसका अर्थ यह था कि ब्रिटिश सरकार मुसलमानों की मर्जी के बिना कांग्रेस को भारत का शासन नहीं करने देगी।

कांग्रेस कार्य-समिति बेहद क्रोधित हुई और उसने ब्रिटिश सरकार पर दोष लगाया कि उसने सहयोग के मित्रतापूर्ण तथा देश-भक्तिपूर्ण प्रस्ताव को ठुकरा दिया और अल्पसंख्यकों के प्रश्न को भारत की प्रगति के मार्ग में दुर्गम रुकावट बना दिया।

चर्चिल की कृपा से कांग्रेस फिर गांधीजी के पास लौट आई।

गांधीजी ने वाइसराय से मिलने की इच्छा प्रकट की।

वाइसराय ने जबानी इन्कार किया, फिर पत्र द्वारा इसकी पुष्टि की।

इस तरह दुत्कारे जाने तथा युद्ध का और भारत की लाचारी का विरोध करने से व्यग्र होकर गांधीजी ने उपवास का इरादा किया। परंतु महादेव देसाई के अनुरोध पर इरादा बदल दिया और इसके बदले में सविनय-अवज्ञा का निश्चय किया। परंतु इस बार उन्होंने सामूहिक सत्याग्रह नहीं शुरू किया। उन्होंने सत्याग्रह का एक हल्का और सांकेतिक रूप अपनाया, जिससे युद्ध के प्रयत्नों में बाधा न पड़े | उन्होंने चुने हुए व्यक्तियों को आदेश दिया कि युद्ध-विरोधी प्रचार पर लगाए गए सरकारी प्रतिबंध को तोड़ें। सबसे पहले उन्होंने विनोबा भावे को चुना। विनोबा ने युद्ध-विरोधी प्रचार किया। इन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और तीन महीने की सजा दे दी गई।

बाद में नेहरू और पटेल चुने गए और उन्हें भी गिरफ्तार कर लिया गया |

यह व्यक्तिगत सत्याग्रह 1941 के अंत तक करीब एक साल चला। जनता में इससे उत्साह जाग्रत नहीं हुआ। लोग जेल जाने से ऊब गए थे।

दिसंबर 1941 में ब्रिटिश सरकार ने कार्य-समिति के गिरफ्तार सदस्यों को छोड़ दिया। द्वितीय महायुद्ध में खतरनाक स्थिति पैदा हो गई थी।

7 दिसंबर को जापान ने पर्ल बंदरगाह पर धावा बोल दिया। दूसरे दिन जापानी-सेना ने शांघाई और स्याम पर कब्जा कर लिया और ब्रिटिश-मलाया में जा उतरी। चौबीस घंटे बाद जापानी नौ-सेना ने इंग्लैंड के दो जंगी जहाज डुबा दिए और प्रशांत महासागर में इंग्लैंड की नौ-शक्ति को अपंग कर दिया। ।

युद्ध भारत के समीप आ रहा था। इस स्थिति में कांग्रेस में गांधीवादी अहिंसक असहयोगियों तथा राष्ट्रीय सरकार के बदले में युद्ध-प्रयत्नों को सहायता देने के इच्छुकों के बीच पुराना मतभेद बाहर आ गया | अतः गांधीजी ने एक बार फिर कांग्रेस का नेतृत्व से हाथ खींच लिया।

युद्ध के प्रति भारतीय जनता की उत्साहहीनता से अमरीका के लोग कछ घबराए | चूँकि संयुक्त राज्य खुद इंग्लैंड का उपनिवेश रह चुका था, इसलिए प्रचार के कुहरे के बावजूद भी वह भारत की आकांक्षाओं को समझ रहा था | राष्ट्रपति रूज़वेल्ट ने कर्नल लुई जॉन्सन को अपने व्यक्तिगत दूत के रूप से भारत भेजा। यह एक असाधारण बात थी और क्योंकि भारत प्रभुत्व संपन्न देश नहीं था, इसलिए यह चीज ब्रिटिश सरकार को अमरीका की चिन्ता और भी अधिक महसूस करानेवाली थी | लंदन में संयुक्त राज्य के राजदूत जॉन जी. विनांट प्रधान मंत्री चर्चिल को सार्वजनिक रूप से यह बयान देने से नहीं रोक सके कि अटलांटिक-घोषणा का स्वराज्यवाला उपबंध भारत के लिए लागू नहीं था। ह्वाइट हाउस में आमने-सामने तथा अंटलांटिक महासागर के दूसरे छोर से टेलीफोन पर, रूज़वेल्ट ने भारत के विषय में चर्चिल से चर्चाएँ कीं और उनसे अनुरोध किया कि भारतवासियों के

सामने कोई स्वीकार-योग्य प्रस्ताव रखें । चर्चिल ने इस अंकुशबाजी को बिलकुल पसंद नहीं किया।

इंग्लैंड का मजदूर-दल युद्धकालीन संयुक्त मंत्रिमंडल में शामिल था। इसके अनेक सदस्य भारत की स्वतंत्रता के हामी थे। मंत्रिमंडल की मंत्रणाओं में मजदूरदली मंत्रीगण इस रुख को व्यक्त करते थे।

सब ओर से दबाव पड़ने पर चर्चिल सर स्टैफर्ड क्रिप्स को एक प्रस्ताव का मसविदा लेकर दिल्ली भेजने के लिए राजी हो गए | परंतु जब क्रिप्स भारत के लिए रवाना हुए, तब युद्ध की संभावनाओं के बारे में चर्चिल को न तो निराशा थी और न पराजय की आशंका ।

द्वितीय महायुद्ध शुरू होने पर सर स्टैफर्ड ने अपनी कमाईवाली वकालत छोड़ दी थी और 1939 में सारे संसार की यात्रा यह पता लगाने के लिए की थी कि लोगों के क्या विचार हैं। वह भारत में भी अठारह दिन तक रहे थे तथा जिन्ना, लिनलिथगो, ठाकुर, अंबेडकर, जवाहरलाल नेहरू और गांधीजी से मिले थे।

22 मार्च 1942 को क्रिप्स दिल्ली आ पहुँचे और उसी दिन ब्रिटिश अधिकारियों के साथ परामर्श में लग गए। 25 मार्च को मौलाना अबुलकलाम आजाद क्रिप्स से मिलने गए। इसके साथ ही भारतीय प्रतिनिधियों से बातचीत शुरू हो गई।

गांधीजी सेवाग्राम में थे। उन्हें क्रिप्स का तार मिला, जिसमें नम्रतापूर्ण भाषा में उनसे दिल्ली आने के लिए कहा गया था। जून 1942 में जब मैं सेवाग्राम में गांधीजी से मिला था, उन्होंने मुझे बताया-"मैं जाना नहीं चाहता था, परंतु इसलिए चला गया कि शायद इससे कुछ लाभ हो ।"

27 मार्च को 2.15 बजे गांधीजी क्रिप्स के यहाँ पहुँचे और 4.25 तक उनके साथ रहे | सर स्टैफर्ड ने गांधीजी को ब्रिटिश सरकार का अभी तक अप्रकाशित मसविदा बतलाया। गांधीजी ने सेवाग्राम में मुझसे कहा था, मसविदे को पढ़ने के बाद मैंने क्रिप्स से कहा-"यदि

आपके पास देने को यही है, तो आप आए ही क्यों? यदि भारत के लिए आपका समूचा प्रस्ताव यही है, तो मैं आपको सलाह दूँगा कि अगले वायुयान से घर लौट जाइए |"

"में इस पर विचार करूँगा," क्रिप्स ने उत्तर दिया।

क्रिप्स गए नहीं। उन्होंने बातचीत चालू रखी । गांधीजी सेवाग्राम लौट गए। पहली बातचीत के बाद वह फिर क्रिप्स से नहीं मिले, न बात की।

मंत्रणाएँ 9 अप्रैल तक चलती रहीं, जबकि कांग्रेस ने क्रिप्स के प्रस्ताव को अंतिम तौर पर ठुकरा दिया। क्रिप्स-मिशन असफल रहा।

सरकारी ब्रिटिश सूत्रों ने क्रिप्स-मिशन की असफलता का दोष गांधीजी के शांतिवाद को दिया। दूसरों ने क्रिप्स और चर्चिल का कसूर बतलाया। नेहरू ने कहा-"दिल्ली से चले जाने के बाद गांधीजी से किसी तरह की सलाह नहीं ली गई और यह कल्पना बिलकुल गलत है कि क्रिप्स के प्रस्ताव को उनके दबाव के कारण ठुकराया गया।"

1946 में गांधीजी ने मुझसे कहा था-"अंग्रेजों का कहना है कि दिल्ली से चले जाने के बाद मैंने बातचीत पर असर डाला। परंतु यह झूठ है।"

मैंने उन्हें बताया-"अंग्रेजों ने मुझसे कहा है कि आपने सेवाग्राम से दिल्ली को फोन किया और कांग्रेस को हिदायत दी कि क्रिप्स के प्रस्ताव को ठुकरा दें। वे निश्चयपूर्वक कहते हैं उस बातचीत का उनके पास लिखित प्रमाण है |

गांधीजी ने दृढ़ता से उत्तर दिया-"यह सब झूठ का जाल है। यदि उनके पास टेलीफोन की बातचीत का लिखित प्रमाण है, तो पेश करें।"

10 मार्च को चर्चिल द्वारा क्रिप्स के भारत भेजे जाने की घोषणा से एक दिन पूर्व रूज़वेल्ट ने चर्चिल को भारत के बारे में एक लंबा तार-संदेश भेजा | राष्ट्रपति ने एक काम-चलाऊ सरकार का सुझाव दिया जो पाँच या छः वर्ष तक कार्य करे | साथ ही रूज़वेल्ट ने चर्चिल

से यह भी कह दिया कि "भारत के मामले में मेरा कोई सरोकार नहीं है" और "ईश्वर के लिए मुझे इसमें मत डालो, हालाँकि मैं सहायता अवश्य करना चाहता हूँ।"

रॉबर्ट ई. शेरवुड, जिसने इस खरीते का जिक्र अपनी पुस्तक रूज़वेल्ट एंड हॉपकिंस में किया है, लिखता है-"तार-संदेश के जिस भाग से चर्चिल सहमत हुए, वह शायद केवल यह था, जिसमें रूज़वेल्ट ने माना था कि 'मेरा सरोकार नहीं है |' हॉपकिंस ने बहुत दिन बाद बतलाया था कि उनके खयाल से सारे युद्ध के दौरान में राष्ट्रपति ने जो भी सुझाव प्रधान मंत्री को भेजे, उनमें से भारतीय समस्या के समाधान के बारे में प्राप्त सुझावों पर प्रधान मंत्री को जितना क्रोध आया, उतना अन्य किसी पर नहीं |"

12 अप्रैल 1942 को हैरी हॉपकिंस को, जो उस समय प्रधान मंत्री के देहाती निवास-स्थान चेकर्स में थे, रूज़वेल्ट का तार मिला। उसमें उनसे प्रार्थना की गई थी कि क्रिप्स-वार्ता को भंग होने से रोकने का भरसक प्रयत्न करें | राष्ट्रपति ने चर्चिल को भी तार भेजा, जिसमें कहा गया था-

"मुझे खेद है कि आपके संदेश में व्यक्त किए गए आपके इस दृष्टि-बिन्दु से मैं सहमत नहीं हो सकता कि अमरीका की जनता की राय में वार्ताएँ व्यापक मोटी-मोटी बातों पर भंग हो गई हैं | यहाँ फैला हुआ विश्वास इसके बिलकुल विपरीत है। लगभग सभी लोग महसूस करते हैं कि गतिरोध का कारण यह है कि ब्रिटिश सरकार भारतीय राष्ट्र को स्वशासन का अधिकार नहीं देना चाहती, हालाँकि भारतवासी सैनिक तथा नौ-सैनिक प्रतिरक्षा का सामरिक नियंत्रण उपयुक्त ब्रिटिश अधिकारियों के हाथ में देने को तैयार हैं। अमरीका का जनमत यह समझने में असमर्थ है कि जब ब्रिटिश सरकार युद्ध के बाद भारत के अंगों को ब्रिटिश साम्राज्य से विलग होने की अनुमति देने को तैयार है, तो युद्ध के दौरान में वह उन्हें स्व-शासन जैसी चीज का उपभोग करने की अनुमति क्यों नहीं देना चाहती ?"

क्रिप्स व्यग्रता के साथ समझौते का प्रयत्न कर रहे थे। जब ब्रिटिश सरकार की घोषणा का मसविदा ठुकरा दिया गया, तो उन्होंने कांग्रेस के सामने नया प्रस्ताव रखा। इस नए प्रस्ताव

से समझौता काफी निकट आ गया। परंतु हॉपकिंस के कथनानुसार "वाइसराय इस सारे मामले से झल्ला उठे |" उन्होंने चर्चिल को तार दिया। चर्चिल ने क्रिप्स को आदेश दिया कि नया अनधिकृत प्रस्ताव वापस ले लें और इंग्लैंड वापस आ जाएँ।

हॉपकिंस के खयाल से "भारत ऐसा क्षेत्र था जहाँ रूज़वेल्ट तथा चर्चिल के विचार कभी नहीं मिल सकते थे।"

यह भी स्पष्ट था कि गांधीजी और चर्चिल के विचार भी कभी नहीं मिल सकते।

चर्चिल तथा गांधीजी एक बात में समान थे कि प्रत्येक ने अपना जीवन केवल एक-एक उद्देश्य के लिए अर्पण कर दिया था। महापुरुष सुंदर मूर्ति की तरह एक ही टुकड़े का बना हुआ होता है। चर्चिल को निमग्न करनेवाला हेतु था इंग्लैंड को पहले दर्जे की शक्ति बनाए रहना। वह अतीत से बँधे हुए थे। इंग्लैंड का अतीत वैभव चर्चिल का भगवान् था। वह भारत को अपने देश की महानता के साथ संबद्ध मानते थे।

चर्चिल ने द्वितीय महायुद्ध ब्रिटेन की विरासत को कायम रखने के लिए लड़ा था। क्या वह एक अर्द्ध-नग्न फकीर को यह विरासत छीन लेने देते? अगर चर्चिल का बस चलता, तो गांधीजी वार्ता या मंत्रणा के लिए वाइसराय भवन की सीढ़ियों पर कदम तक न रखने पाते।

चर्चिल नेपोलियन जैसे हैं, लेकिन कवि-हृदय | राजनैतिक सत्ता उनके लिए कविता है। गांधीजी संयमी संत थे, जिनके लिए राजनैतिक सत्ता त्याज्य वस्तु थी। उम्र बढ़ने के साथ-साथ चर्चिल अधिक अनुदार होते गए, गांधीजी अधिक क्रांतिकारी होते गए | चर्चिल सामाजिक परंपराओं से प्रेम करते थे। गांधीजी ने सामाजिक भेद नष्ट कर दिए थे। चर्चिल हर श्रेणी के लोगों से मिलते थे, परंतु रहते थे अपनी ही श्रेणी में। गांधीजी हर एक के साथ रहते थे। गांधीजी के लिए नीचे-से-नीचा भारतवासी हरिजन था। चर्चिल के लिए सारे भारतवासी एक सिंहासन के पाये थे। इंग्लैंड की स्वतंत्रता के लिए वह अपनी जान तक निछावर कर देते, परंतु भारत की स्वतंत्रता चाहनेवालों के वह विरोधी थे।

20 / गांधीजी के साथ एक सप्ताह

कितना खिन्न देश! मई 1942 में भारत के बारे में सबसे पहली छाप मेरे दिल पर यह पड़ी, और दो महीने के निवास से यह छाप और भी गहरी हो गई। धनवान भारतवासी खिन्न थे, गरीब भारतवासी खिन्न थे और अंग्रेज खिन्न थे।

यह अनुभव करने के लिए कि भारत के लोगों में कैसी नर्क जैसी निर्धनता है | किसी को इस देश में अधिक दिन रहने की आवश्यकता नहीं होती। बंबई में डॉ० अंबेडकर के साथ जो अस्वास्थ्यकर झोंपड़ियाँ मैंने देखीं, ऐसे स्थान पर अमरीका तथा यूरोप के किसान अपने जानवरों को रखना भी बुरा समझेंगे | गाँवों में दिखाई पड़नेवाली किसानों की वस्त्रहीनता के मुकाबले में गांधीजी के पास भी पुरे कपडे थे | भारतवासियों की बहुत बड़ी संख्या, वास्तव में हमेशा, भूखी रहती है।

ब्रिटिश आँकड़ों के अनुसार प्रति वर्ष ढाई करोड़ भारतवासी मलेरिया के शिकार होते हैं और गिने-चुने लोगों को जरा-सी कुनैन मिल पाती है | हर साल पाँच लाख भारतवासी क्षय से मर जाते हैं।

बीमारियों तथा मृत्युओं के बावजूद भारत की जनसंख्या प्रति वर्ष पचास लाख बढ़ जाती है। राष्ट्र के सामने सबसे बड़ी समस्या यही है। 1921 में भारत की आबादी 30 करोड़ 80 लाख थी, 1931 में 33 करोड़ 80 लाख और 1941 में 38 करोड़ 80 लाख | इन्हीं बीस वर्षों में खेतिहर भूमि का क्षेत्रफल लगभग स्थिर रहा और उद्योगों में भी कोई उल्लेख योग्य बढ़ोतरी नहीं हुई। जितना निर्धन देश, उतनी ही अधिक जन्म-संख्या। जितनी अधिक जनसंख्या, उतना ही देश अधिक निर्धन।

भारत में रहनेवाले अंग्रेज अपनी कारगुजारियों पर जोर देते थे। किन्तु वे विनाशकारी प्रभावों से भी इन्कार नहीं करते थे। वे इसके लिए हिन्दू धर्म को तथा मुसलमानों के पिछड़ेपन को दोषी ठहराते थे। भारतवासी इंग्लैंड को दोष देते थे | यह ऐसा वातावरण था, जिसमें अंग्रेजों के लिए कार्य तथा जीवन उत्तरोत्तर असंतोषप्रद होते जा रहे थे।

जिन अंग्रेजों के परिवारों ने भारत में सौ वर्ष से अधिक तक अपना जीवन सफल बनाया था, वे जानते थे कि यहाँ उनका कुछ भविष्य नहीं है। भारत उन्हें नहीं चाहता था और वे इसे अनुभव करते थे और उदास थे। वाइसराय के निजी सचिव सर गिल्बर्ट लेथवेट और प्रधान सेनापति वेवेल के सहकारी मेजर जनरल मोल्सवर्थ पेट्रोल की बचत करने के लिए भारत की कड़ी धूप में साइकिलों पर दफ्तर जाते थे, हालाँकि उनके पास मोटरें भी थीं और ड्राइवर भी।

अनेक अंग्रेज भले आदमी थे, परंतु भारत बुरे भारतवासियों का शासन अच्छा समझता था | भारत पर उनकी मर्जी के खिलाफ शासन करना अब 'दिल्लगी' नहीं था। अंग्रेज अधिकारी अब भारत से उतने ही ऊब गए थे, जितना भारत उनसे। शांधीजी की बीस वर्ष की अहिंसा ने साम्राज्य के भविष्य में उनका विश्वास नष्ट कर दिया था।

कम्युनिस्टों के अलावा भारत का कोई भी दल या जमात युद्ध का समर्थन नहीं कर रहा था | जून 1941 में रूस पर हिटलर के धावे के बाद कम्युनिस्ट लोग ब्रिटेन के पक्ष में हो गए और भारत में साम्राज्यवादी अंग्रेज इनको सहायता देने लगे, परंतु यह अप्राकृतिक गठबंधन उन्हें पसंद नहीं था।

मैंने बंबई में नेहरू को एक लाख की भीड़ में भाषण देते सुना। बादामी चेहरों और सफेद कपड़ों के उस विशाल समुद्र में कम्युनिस्टों ने हल्ला मचानेवालों का एक द्वीप बना रखा था। उन्होंने एक स्वर से पुकारा-"यह जनता का युद्ध है।"

नेहरू ने चिल्लाकर कहा-"अगर तुम इसे जनता का युद्ध समझते हो, तो जाकर जनता से पूछो |" इस बात ने तथा जनता की विरोधी प्रतिक्रिया ने उनके हल्ले को शांत कर दिया। वे जानते थे कि नेहरू सच कह रहा है और अंग्रेज भी इसे जानते थे।

"मैं तलवार लेकर जापान से लडूँगा," नेहरू ने घोषणा की-"परंतु स्वतंत्र होकर ही मैं ऐसा कर सकता हूँ।"

वाइसराय की कौन्सिल के गृह-सदस्य सर रेजिनालड मैक्सवेल ने मुझसे कहा था-"युद्ध समाप्त होने के दो वर्ष बाद हम यहाँ से चले जाएँगे।" मैक्सवेल के अधीन पुलिस तथा आंतरिक व्यवस्था थी और भारतवासी उनसे बहुत चिढ़े हुए थे। परंतु वह किसी भ्रांति में नहीं थे, क्योंकि उनके लिए साम्राज्य दैनिक पिसाई था, जबकि चर्चिल के लिए वह एक रोमानी चीज था।

वाइसराय ने मुझसे कहा-"हम भारत में ठहरनेवाले नहीं हैं। अलबत्ता कांग्रेस इस पर विश्वास नहीं करती, परंतु हम यहाँ नहीं ठहरेंगे। हम अपने प्रस्थान की तैयारी कर रहे हैं|"

जब मैंने ये विचार भारतवासियों को बतलाए, तो उन्होंने इस पर विश्वास नहीं किया। उन्होंने कटुता के साथ दलील दी कि चर्चिल तथा नई दिल्ली में और प्रांतों में अनेक छोटे चर्चिल या तो स्वाधीनता के मार्ग में रोड़े अटकाएँगे या देश का अंग-विच्छेद करके उसे भ्रष्ट कर देंगे।

स्वाधीनता निकट थी, परंतु वर्तमान इतना अंधकारमय था कि भविष्य किसी को भी नहीं दिखाई देता था। भारत में इतिहास इतने लंबे समय से स्थिर था कि कोई यह कल्पना नहीं कर सकता था कि वह कितनी तेजी से आगे बढ़नेवाला है। यह गतिहीनता भारतवासियों को रुष्ट कर रही थी, उनमें मायूसी की भावना पैदा हो रही थी।

भारत में तैनात एक अमरीकी सेनापति ने कहा था-"अंग्रेज लोग बाल्टी-भर पानी में तेल की एक बूँद के समान हैं।"

गांधीजी के बारे में बात करते हुए वाइसराय ने कहा-"इस बारे में किसी भ्रम में मत रहो, यह बूढ़ा भारत में सबसे बड़ी चीज है|--इसने मेरे साथ अच्छा सलूक किया है।--भ्रम में मत रहो। इसका बड़ा भारी प्रभाव है।"

लार्ड लिनलिथगो ने बतलाया कि गांधीजी किसी रूप में सविनय-अवज्ञा-आंदोलन का विचार कर रहे हैं| "मुझे यहाँ छः वर्ष हो गए हैं और मैंने संयम सीख लिया है। मैं शाम को देर तक बैठा रिपोर्टों का अध्ययन करता हूँ और उन्हें सावधानी से हृदयंगम करता हूँ। मैं

जल्दबाजी में कोई कदम नहीं उठाऊँगा, परंतु यदि मुझे लगा कि गांधीजी युद्ध-प्रयत्न में बाधा डाल रहे हैं, तो मुझे उन्हें काबू में लाना होगा।"

मैंने कहा कि गांधीजी यदि जेल में मर गए तो बुरा होगा।

वाइसराय ने सहमति जतलाते हुए कहा-"मैं जानता हूँ कि वह बूढ़े आदमी हैं और इस बूढ़े आदमी को आप जबरदस्ती खाना नहीं खिला सकते। मुझे आशा है कि इसकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी, परंतु मेरे ऊपर गंभीर जिम्मेदारी है।"

नेहरू प्रस्तावित सविनय-अवज्ञा-आंदोलन के बारे में गांधीजी से परामर्श करने सेवाग्राम जा रहे थे। मैंने उनसे प्रार्थना की कि मेरी मुलाकात की व्यवस्था कर दें | बहुत जल्दी मुझे तार मिला, जिसमें लिखा था-"स्वागत! महादेव देसाई ।"

मैं वर्धा स्टेशन पर गाड़ी से उतरा, जहाँ मुझे गांधीजी का संदेश-वाहक मिला | रात को मैं कांग्रेस-अतिथि-गृह की छत पर सोया | सुबह मैंने गांधीजी के दाँत-चिकित्सक के साथ सेवाग्राम के लिए ताँगा किया।

ताँगा गाँव के पास रुक गया। वहाँ गांधीजी खड़े थे। उन्होंने अंग्रेजी लहज में कहा-"मिस्टर फिशर!" और हम दोनों ने हाथ मिलाए। वह मुझे एक बेंच के पास ले गए। उन्होंने बेंच पर बैठकर अपनी हथेली उस पर टिका दी और मुझसे कहा-"बैठ जाओ!" जिस तरह वह पहले बेंच पर बैठे और जिस तरह उन्होंने मुझे बेंच पर बैठने का हाथ से इशारा किया, उससे लगा मानो वह कह रहे हों-"यह मेरा घर है, आ जाओ!" मैंने तुरंत घरोपा अनुभव किया।

गांधीजी के साथ मेरी रोज एक घंटा मुलाकात होती थी | भोजन के समय भी बातचीत का मौका मिलता था | इसके अलावा दिन में एक या दो बार मैं उनके साथ घूमने भी जाता था।।

गांधीजी का शरीर सुगठित था, सीने के स्वस्थ पुट्ठे उभरे हुए, पतली कमर और लंबी, पतली मजबूत टाँगें, जो चप्पलों से धोती तक नंगी थीं। उनके घुटनों की गाँठें निकली हुई थीं और उनकी हड्डियाँ चौड़ी तथा मजबूत थीं। उनके हाथ बड़े-बड़े तथा अँगुलियाँ लंबी और सुदृढ़ थीं। उनकी चमड़ी कोमल, चिकनी और स्वस्थ थी | वह तिहत्तर वर्ष के थे। उनकी अँगुलियों के नाखून, हाथ-पाँव तथा शरीर निर्दोष थे। उनकी धोती, धूप में कभी-कभी पहना जानेवाला टोप और सिर पर रखा गीला अंगोछा, सफेद-झक थे।

उनका शरीर बूढ़ा नहीं मालूम देता था। उनको देखकर यह नहीं लगता था कि वह बूढ़े हैं। उनके बुढ़ापे का पता उनके सिर से लगता था।

उनकी शांत, विश्वासभरी आँखों के सिवा उनके चेहरे की आकृति भद्दी थी। विश्राम की अवस्था में उनका चेहरा भद्दा प्रतीत होता, परंतु वह कभी विश्राम की अवस्था में होता ही नहीं था। चाहे वह बात करते हों या सुनते हों, उनका चेहरा सजीव बना रहता था और उस पर तुरंत प्रतिक्रिया होती थी | बात करते समय वह प्रभावशाली ढंग से हाथों द्वारा भाव-प्रदर्शन करते थे। उनके हाथ बड़े सुंदर थे।

लॉयड जार्ज एक महान पुरुष जैसे दिखाई देते थे। चर्चिल और फ्रैंकलिन डी. रूज़वेल्ट का बड़प्पन और विशेषता भी नजर पड़े बिना नहीं रहते। गांधीजी में (और लेनिन में) यह बात नहीं थी। बाहर से उनमें कोई निरालापन नहीं था। उनका व्यक्तित्व जो कुछ भी वह थे, उसमें; जो कुछ उन्होंने किया, उसमें; तथा जो कुछ वह कहते थे, उसमें था। गांधीजी के सामने मैंने कोई भय और झिझक नहीं महसूस की। मैंने महसूस किया कि मैं एक अत्यंत मृदु, सौम्य, बेतकल्लुफ, तनाव-रहित, प्रफुल्ल, बुद्धिमान और अत्यंत सभ्य व्यक्ति के सामने हूँ। मैंने उनके व्यक्तित्व का चमत्कार भी महसूस किया। अपने व्यक्तित्व के बल से ही उन्होंने बिना किसी संगठन या सरकार के सहारे अपना प्रभाव एक विच्छिन्न देश के कोने-कोने में और वास्तव में एक विभाजित संसार के कोने-कोने में, विकीर्ण कर दिया था। सीधे संपर्क, क्रियाशीलता, उदाहरण तथा संसार भर में उपेक्षित कुछ सरल सिद्धांतों

के प्रति वफादारी, इनके द्वारा वह जनता के पास पहुँचते थे | उनके सिद्धांत थे अहिंसा, सत्य और साध्य के ऊपर साधन की श्रेष्ठता।

आधुनिक इतिहास के नामी व्यक्ति चर्चिल, रूज़वेल्ट, लॉयड जॉर्ज, स्तालिन, हिटलर, वुडरो विल्सन, कैसर, लिंकन, नैपोलियन, मैटरनिच, तालेराँ आदि के हाथ में राज्यों की सत्ता थी। लोगों के मानस पर प्रभाव डालने में गांधीजी के मुकाबले का एकमात्र गैर-सरकारी व्यक्ति कार्ल मार्क्स समझा जा सकता है | व्यक्तियों की अंतरात्मा पर गांधीजी के समान जबरदस्त असर डालनेवाले आदमियों की तलाश

में हमको सदियों पीछे जाना पड़ेगा। पिछले युग में ऐसे लोग धर्मात्मा हुए हैं। गांधीजी ने जतला दिया कि ईसा तथा कुछ ईसाई पादरियों और बुद्ध का, और कुछ इबरानी पैगंबरों और यूनानी ज्ञानियों का, आध्यात्म आधुनिक समय में तथा आधुनिक राजनीति पर प्रयुक्त हो सकता है। गांधीजी ईश्वर या धर्म के बारे में उपदेश नहीं देते थे, वह तो स्वयं जीते-जागते धर्मोपदेश देते थे। जिस संसार में सत्ता, धन तथा अहंकार के क्षयकारी प्रभाव के सामने टिकनेवाले नहीं के बराबर हैं, उसमें गांधीजी एक उत्तम पुरुष थे। बिजली, रेडियो, नल या टेलीफोन से वंचित एक छोटे-से भारतीय गाँव की कूटिया में वह जमीन पर आधे से अधिक नंगे बैठे हुए थे। यह स्थिति श्रद्धान्वित भय, पोपलीला या आख्यान को बढ़ाने में जरा भी सहायक नहीं हो सकती थी । हर दृष्टि से वह धरती के निकट थे। वह जानते थे कि जीवन का अर्थ है जीवन की छोटी-छोटी बातें।

"अपने जूते और टोप पहन लो!" गांधीजी ने कहा। "इन दोनों चीजों के बिना यहाँ काम नहीं चल सकता। देखना, कहीं लू न लग जाय |" ताप 110˚ हो रहा था और झोंपड़ियों के सिवा, जो भट्टी की तरह जल रही थीं, कहीं छाया नहीं थी | "चले आओ!" गांधीजी ने नकली आज्ञा के मैत्रीपूर्ण स्वर में कहा। मैं उनके पीछे-पीछे भोजन के स्थान पर गया, जो तीन तरफ चटाइयों से ढका हुआ था और एक तरफ खुला था, जहाँ से उसमें प्रवेश करते थे।

गांधीजी दरवाजे के पास एक गद्दी पर बैठ गए | उनके बाईं ओर कस्तूरबा और दाहिनी ओर नरेन्द्रदेव थे। भोजन करनेवालों की संख्या लगभग तीस थी । स्त्रियाँ अलग बैठी थीं। मेरे सामने तीन से आठ साल तक के कुछ बच्चे बैठे थे। हरएक के नीचे पतली चटाई थी और सामने पीतल की एक-एक थाली जमीन पर रखी हुई थी। आश्रमवासी स्त्रियाँ तथा पुरुष नंगे पाँव, बिना आवाज किए, थालियों में भोजन परोस रहे थे। गांधीजी की टाँगों के पास कुछ बरतन और कटोरे रखे हुए थे। उन्होंने मुझे उबली भाजी से भरा कांसे का कटोरा दिया, जिसमें मेरे खयाल से मुझे कटा हुआ पालक और कचूमर के कुछ टुकड़े नजर आए। एक स्त्री ने मेरी थाली में कुछ नमक डाला और दूसरी ने एक गर्म पानी का गिलास और एक दूध का गिलास दिया। इसके बाद वह दो छिलकेदार उबले हुए आलू और कुछ चपातियाँ लेकर आई। गांधीजी ने अपने सामने रखे हुए बरतन में से एक पतली करारी रोटी निकालकर मुझे दी। |

घंटे की ध्वनि हुई। सफेद जाँघिया पहने एक हृष्ट-पुष्ट आदमी ने परोसना बंद कर दिया और खड़े होकर, आँखें आधी बंद करके, ऊँचे स्वर में अलाप शुरू किया जिसका गांधीजी सहित सब लोगों ने साथ दिया । प्रार्थना "शांति-शांति-शांति" के साथ समाप्त हुई। सबने रोटी को उबली भाजी में मिलाकर अँगुलियों से खाना शुरू किया। मुझे एक छोटा चम्मच और रोटी के लिए मक्खन दिया गया।

"तुम रूस में चौदह वर्ष रहे हो," गांधीजी ने सबसे पहली राजनैतिक बात मुझसे यह की- "स्तालिन के बारे में तुम्हारी क्या राय है?"

मुझे बहुत गरमी महसूस हो रही थी। मेरे हाथ सने हुए थे और बैठने से मेरे टखने और टाँगें सुन्न हो गए थे। इसलिए मैंने संक्षिप्त उत्तर दिया-"बहुत काबिल और बहुत क्रूर।"

"क्या हिटलर जैसा क्रूर?" उन्होंने पूछा।

"उससे कम नहीं।"

कुछ ठहरकर वह मेरी तरफ मुड़े और बोले--"क्या वाइसराय से मिल चुके हो ?"

मैंने बतलाया कि मिल चुका हूँ, परंतु गांधीजी ने इस विषय को यहीं छोड़ दिया ।

दोपहर का भोजन ग्यारह बजे और शाम का सूर्यास्त से पहले होता था। सुबह खुरशेद नौरोजी मेरा नाश्ता लेकर आईं--चाय, बिस्कुट या शहद और मक्खन के साथ डबल रोटी और आम।

दूसरे दिन दोपहर के भोजन के समय गांधीजी ने मुझे एक बड़ा चम्मच भाजी खाने के लिए दिया। अपने बरतन में से उन्होंने एक उबला प्याज मुझे देने को निकाला | मैंने बदले में कच्चा प्याज माँगा। भोजन की बेस्वाद चीजों से इसने राहत दी।

तीसरे दिन दोपहर के भोजन के समय गांधीजी ने कहा--"फिशर, अपना कटोरा मुझे दो। मैं तुम्हें थोड़ी-सी भाजियाँ दूँगा।"

मैंने कहा कि पालक और कचूमर दो दिन में चार बार खा चुका हूँ। और अधिक खाने की इच्छा नहीं है।

"तुम्हें भाजियाँ पसंद नहीं हैं?" उन्होंने आलोचना के ढंग से कहा।

"लगातार तीन दिन तक इन भाजियों का स्वाद मुझे अच्छा नहीं लगता।"

"अच्छा," वह बोले--"इसमें खूब नमक और खूब नीबू मिला लो।"

"आप चाहते हैं कि मैं स्वाद को मार दूँ?" मैंने उनकी बात का अर्थ लगाया।

"नहीं," उन्होंने हँसकर जवाब दिया--"स्वाद को बढ़िया बना लो।"

"आप इतने अहिंसक हैं कि स्वाद को भी नहीं मारना चाहते हैं?" मैंने कहा।

"यदि लोग इसी चीज को मार दें, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी।" वह बोले।

मैंने अपने चेहरे और गरदन का पसीना पोंछा। "अगली बार जब मैं भारत आऊँ ...," गांधीजी मुँह चला रहे थे और ऐसा लगता था कि मेरी बात सुन नहीं रहे हैं। मैं चुप हो गया।

"हाँ," गांधीजी ने कहा--"अगली बार तुम भारत में आओ, तब..."

“आप या तो सेवाग्राम एयरकंडीशन करा लें या वाइसराय के भवन में रहें।”

“बहुत अच्छा,” गांधीजी ने रजामंदी दिखाई।

गांधीजी मजाक पसंद करते थे। एक दिन तीसरे पहर जब मैं दैनिक मुलाकात के लिए उनकी कुटिया में गया, तो वह वहाँ नहीं थे। आते ही वह बिस्तर पर लेट गए। प्रश्न पूछने का संकेत करते हुए वह बोले-“मैं लेटे-लेटे ही तुम्हारी चोटें सम्हालूँगा।” एक मुसलमान स्त्री ने उनके पेट पर मिट्टी की पट्टी चढ़ाई। “इसके द्वारा अपने भविष्य से मेरा संपर्क हो जाता है।” वह कहने लगे। मैंने कोई जवाब नहीं दिया।

“मेरा खयाल है कि इसका व्यंग तुम नहीं समझे |” वह बोले।

मैंने कहा-“व्यंग तो मैं समझ गया, लेकिन मेरा खयाल है कि आप अभी इतने बूढ़े नहीं हुए हैं कि मिट्टी में मिल जाने का विचार करें।”

“क्यों नहीं?” उन्होंने कहा-“आखिर तुमको और मुझको, और सबको, और कुछ को सौ वर्षों में, लेकिन सबको देर-अबेर, मिट्टी में मिलना है।”

एक अन्य अवसर पर उन्होंने वह बात दोहराई, जो लंदन में उन्होंने लार्ड सैंकी से कही थी। उन्होंने कहा था-“यदि मैंने अपनी परवाह न की होती, तो क्या आप समझते हैं कि मैं इस वृद्धावस्था तक पहुँच पाता? यह मेरा एक दोष है।"

मैंने हिम्मत करके कहा-“मैं तो समझता था कि आप निर्दोष हैं।“

वह हँसने लगे और मुलाकात के समय अक्सर पास बैठनेवाले आठ-दस आश्रमवासी भी हँस पड़े। “नहीं,” गांधीजी ने जोर देकर कहा-“मुझमें बहुत दोष है | यहाँ से जाने के पहले ही तुम्हें मेरे सैकड़ों दोषों का पता लग जायगा और अगर न लगे, तो उन्हें देखने में मैं तुम्हारी मदद करूँगा।”

एक घंटे की मुलाकात शुरू होने से पहले गांधीजी कुटिया में मेरे लिए अक्सर जरा ठंडी जगह तलाश करते थे। फिर मुस्करा कर कहते-“अच्छा!” अर्थात् प्रश्न करो। समय का उन्हें

इतना अचूक अंदाज था कि एक घंटा बीतने को होते ही वह अपनी घड़ी पर नजर डालते और कहते-"तुम्हारा घंटा पूरा हो गया।"

एक दिन, जब मैं बातचीत के बाद कूटिया से रवाना हो रहा था, वह कहने लगे-"जाओ और टब में बैठ जाओ" धूप में मेहमान-घर तक जाने में गरमी से मेरा दिमाग सूख गया और मैंने निश्चय किया कि टब में बैठने का विचार बहुत अच्छा है।

उस दिन गांधीजी के साथ, आश्रम में दूसरों के साथ तथा दो दिन के लिए आए हुए नेहरू के साथ अपनी बातचीतों का पूरा ब्यौरा टाइप करने का काम सबसे कठिन परीक्षा थी। पाँच मिनट में ही मैं थक गया और पसीने से नहा गया। गांधीजी ने टब में बैठने का जो सुझाव दिया था, उससे प्रेरित होकर मैंने पानी से भरे टब में लकड़ी का छोटा-सा खोखा रखा और उस पर तह किया हुआ तौलिया लगाया। फिर एक बड़ा खोखा टब के बाहर रखकर उस पर अपना छोटा टाइपराइटर जमाया | यह तरकीब करने के बाद मैं टबवाले खोखे पर बैठ गया और टाइप करने लगा। जरा-जरा देर बाद जब मुझे पसीना आता, तो मैं टब में से गिलास भर-भरकर अपनी गरदन, पीठ और टाँगों पर पानी उड़ेल लेता | इस तरकीब से मैं बिना थकावट महसूस किए घंटे भर तक टाइप कर सका | इस नई खोज से सारे आश्रम में मजेदार चहल-पहल हो गई | आश्रम के लोग रोनी शक्लोंवाले नहीं थे। गांधीजी इस बात पर खूब ध्यान देते थे। वह बच्चों की ओर आँखें मटकाते थे, बड़ों को हँसाते थे और तमाम आगंतुकों से मजाक करते थे।

मैंने गांधीजी से अपने साथ फोटो खिंचवाने को कहा | गांधीजी ने उत्तर दिया-"अगर संयोग से कोई फोटोग्राफर इधर आ निकले तो तसवीर में तुम्हारे साथ दिखाई देने से मुझे कोई इन्कार नहीं है।"

मैंने कहा-"यह तो आपने मेरी बड़ी भारी प्रशंसा कर दी |"

"क्या तुम प्रशंसा चाहते हो?" उन्होंने पूछा।

"क्या हम सब प्रशंसा नहीं चाहते?"

“हाँ,” गांधीजी ने सहमति प्रकट की-“परंतु कभी-कभी हमको इसकी बहुत अधिक कीमत चुकानी पड़ती है।”

मैंने कहा-“मुझे बताया गया है कि कांग्रेस बड़े-बड़े व्यापारियों के हाथों में है और आपको भी बंबई के मिल-मालिक सहायता देते हैं। इनमें कहाँ तक सचाई है?”

“दुर्भाग्य से यह सही है," गांधीजी ने स्वीकार किया-“कांग्रेस के पास अपना काम चलाने के लिए काफी रुपया नहीं है। शुरू में हमने सोचा था कि प्रत्येक सदस्य से चार आना वार्षिक वसूल करें, परंतु इससे काम नहीं चला |”

मैंने फिर पूछा-“कांग्रेस के कोष का कितना अंश धनवान भारतवासियों से मिलता है?”

“लगभग पूरा-का-पूरा,” उन्होंने कहा-“उदाहरण के लिए इस आश्रम में ही हम इससे अधिक गरीबी में रह सकते हैं और खर्च कम कर सकते हैं। परंतु ऐसा नहीं होता और इसके लिए रुपया धनवान भारतवासियों के पास से आता है।”

(श्रीमती नायडू का एक ताना मशहूर है कि गांधीजी का गरीबी का जीवन-निर्वाह कराने में खूब पैसा खर्च होता है। यह ताना सुनकर गांधीजी को बड़ा मजा आया था |)

“यह तथ्य कि निहित स्वार्थवाले धनवान लोग कांग्रेस को रुपया देते हैं, क्या इसका कांग्रेस की राजनीति पर असर नहीं पड़ता?” मैंने पूछा-“क्या इससे नैतिक दायित्व नहीं उत्पन्न होता?”

“इससे गुप्त ऋण तो पैदा होता है,” उन्होंने कहा-“परंतु व्यवहार में धनवानों के विचारों से हम बहुत कम प्रभावित होते हैं। पूर्ण स्वाधीनता की हमारी माँग से ये लोग कभी-कभी डर जाते हैं। धनवान संरक्षकों पर कांग्रेस की निर्भरता दुर्भाग्यपूर्ण है। मैंने 'दुर्भाग्यपूर्ण' शब्द का उपयोग किया है। इससे हमारी नीति विकृत नहीं होती |”

“क्या इसका एक परिणाम यह नहीं है कि सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं को लगभग छोड़ दिया गया है और राष्ट्रीयता पर सबसे अधिक जोर दिया जाता है?"

"नहीं," गांधीजी ने उत्तर दिया-"कांग्रेस ने समय-समय पर, खासकर पंडित नेहरू के असर से, आर्थिक नियोजन के लिए प्रगतिशील सामाजिक कार्यक्रमों तथा योजनाओं को अपनाया है|"

गांधीजी के आश्रम तथा गांधीजी की हरिजन और कृषकोत्थान की संस्थाओं तथा राष्ट्रभाषा-प्रचार के लिए अधिकांश धन घनश्यामदास बिड़ला से मिलता था। बिड़ला ने पहले-पहल 1920 में कलकत्ता में गांधीजी को देखा था | तब से वह उनके भक्त बन गए | वह गांधीजी की कई नीतियों से सहमत नहीं थे, परंतु यह कोई बात नहीं थी। वह गांधीजी को अपना 'बापू' मानते थे। गांधीजी को वह जो कुछ देते थे, उसका हिसाब कभी नहीं रखते थे। परंतु गांधीजी खुद अपने हाथ से खर्च की छोटी-से-छोटी मदों का हिसाब लिखते थे और बिड़ला को देते थे, और यह उसे बिना देखे गांधीजी के सामने ही फाड़ डालते थे। गांधीजी की मैत्री से बिड़ला को सम्मान औ संतोष मिलते थे। परंतु यदि अवसर आता, तो गांधीजी बिड़ला की मिल मजदूरों की हड़ताल का नेतृत्व करते, जैसाकि उन्होंने अपने मित्र तथा आर्थिक सहायक अंबालाल साराभाई के मामले में किया था। गांधीजी पूँजीवादी शोषण के विरोधी होते हुए भी पूँजीपतियों के प्रति सहिष्णु थे। उन्हें अपने हृदय की शुद्धता का तथा अपने उद्देश्य का इतना भरोसा था कि उन्हें यह खयाल भी नहीं होता था कि वह कलुषित हो सकते हैं | गांधीजी के लिए कोई अछूत नहीं था, न बिड़ला, न कोई कम्युनिस्ट, न हरिजन और न कोई साम्राज्यवादी | जहाँ-कहीं उन्हें नेकी की चिनगारी का पता लगता, वह उसे सुलगाते थे।

उनके हृदय में मानव-प्रकृति की विभिन्नता के लिए तथा मनुष्य के हेतुओं की अनेकता के लिए गुंजायश थी।

जून 1942 का जो सप्ताह मैंने सेवाग्राम में बिताया, उसके प्रारंभ में ही प्रकट हो गया था कि गांधीजी ने इंग्लैंड के विरुद्ध 'भारत छोड़ो' आंदोलन छेड़ने का पक्का इरादा कर लिया है। इस आंदोलन का यही नारा होनेवाला था।

एक दिन तीसरे पहर, जब गांधीजी उन कारणों पर विस्तार से प्रकाश डाल चुके, जो उन्हें ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध सविनय अवज्ञा-आंदोलन शुरू करने के लिए उकसा रहे थे, तो मैंने कहा-"मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अंग्रेजों के लिए पूरी तरह भारत छोड़कर चले जाना संभव नहीं है। इसका अर्थ होगा भारत को जापान के भेंटकर देना | इसके लिए इंग्लैंड कभी राजी नहीं होगा और संयुक्त राज्य इसे कभी पसंद नहीं करेगा | यदि आपकी माँग यह है कि अंग्रेज अपना बिस्तर-बोरिया समेटकर चले जाएँ, तो आप एक असंभव चीज माँग रहे हैं। आपका यह अभिप्राय तो नहीं है कि वे अपनी सेनाएँ भी हटा लें?"

कम-से-कम दो मिनट तक गांधीजी मौन रहे। कमरे की निःस्तब्धता मानो सुनाई दे रही थी।

अंत में गांधीजी बोले-"तुम ठीक कहते हो। हाँ, ब्रिटेन और अमरीका और अन्य देश भी यहाँ अपनी सेनाएँ रख सकते हैं तथा भारत की भूमि का फौजी कार्रवाइयों के अड्डे की तरह उपयोग कर सकते हैं। मैं युद्ध में जापान की जीत नहीं चाहता | किन्तु मुझे विश्वास है कि जब तक भारतीय जनता आजाद न हो जाय, तब तक इंग्लैंड नहीं जीत सकता | जब तक ब्रिटेन भारत पर शासन करता रहेगा, तब तक

वह कमजोर रहेगा और अपना नैतिक बचाव नहीं कर सकेगा।"

"परंतु यदि लोकतंत्री देश भारत को अड्डा बना दें, तो बहुत-सी उलझनें पैदा हो जाएँगी। सेनाएँ हवा में नहीं रहा करतीं | मसलन, मित्रराष्ट्रों को रेलों के अच्छे संगठन की अपेक्षा होगी।"

"हाँ हाँ," गांधीजी ने उच्च स्वर से कहा-"वे रेलों का संचालन कर सकते हैं। जिन बंदरगाहों पर उनकी रसद उतरे, वहाँ भी वे व्यवस्था कायम रखना चाहेंगे । वे नहीं चाहेंगे कि बंबई और कलकत्ता में दंगे-फिसाद हों। इन मामलों में परस्पर सहयोग की और सम्मिलित प्रयत्न की आवश्यकता होगी |"

"क्या इस पारस्परिक सहयोग की शर्तें मित्रता के संधिपत्र में प्रस्तुत की जा सकती हैं?"

“हाँ,” गांधीजी ने सहमति प्रकट की-“लिखित इकरारनामा हो सकता है |”

“आपने यह बात अभी तक कही क्यों नहीं?” मैंने पूछा-“मैं कबूल करता हूँ कि जब मैंने सविनय अवज्ञा-आंदोलन के आपके इरादे की बाबत सुना, तो मेरा खयाल उसके विरुद्ध हो गया। मैं समझता हूँ कि इससे युद्ध-प्रयत्न में बाधा पड़ेगी। यदि धुरी-राष्ट्र जीत गए, तो मुझे संसार में पूर्ण अंधकार होता दिखाई देता है। मेरा खयाल है कि यदि हम जीत जाएँ, तो हमको एक बेहतर दुनिया बनाने का मौका मिलेगा।”

“यहाँ मैं पूरी तरह सहमत नहीं हूँ,” गांधीजी ने तर्क दिया-“ब्रिटेन अपने को अक्सर पाखंड के चोगे में छिपाए रहता है। वह ऐसे वादे करता है, जिन्हें बाद में निभाता नहीं | परंतु यह बात मैं मानता हूँ कि लोकतंत्री राष्ट्र जीत जाएँ तो बेहतर मौका मिलेगा |”

“यह इस पर निर्भर है कि हम किस तरह की शांति रखते हैं," मैंने कहा।

“यह इस पर निर्भर है कि आप युद्ध में क्या करते हैं," गांधीजी ने मेरी गलती सुधारी-युद्ध के बाद स्वाधीनता में मेरी दिलचस्पी नहीं है। मैं अभी स्वाधीनता चाहता हूँ। इससे इंग्लैंड को युद्ध जीतने में मदद मिलेगी |"

मैंने फिर पूछा -“आपने अपनी यह योजना वाइसराय तक क्यों नहीं पहुँचाई ? वराइसराय को मालूम होना चाहिए कि मित्र राष्ट्रों की फौजी कार्रवाइयों के लिए भारत को अड्डा बनाए जाने में अब आपको कोई आपत्ति नहीं है | “

“किसी ने मुझसे पूछा ही नहीं ।” गांधीजी ने ढीलेपन से उत्तर दिया ।

आश्रम से मेरे रवाना होने से पूर्व महादेव देसाई ने मुझसे चाहा कि मैं वाइसराय से कहूँ कि गांधीजी उनसे मिलना चाहते हैं। महात्माजी समझौते के लिए और शायाद सविनय-अवज्ञा-आंदोलन का विचार छोड़ने के लिए तैयार थे। बाद में, दिल्ली में मुझे गांधीजी का एक पत्र राष्ट्रपति रूज़वेल्ट को देने के लिए मिला। साथ के पुर्जे में गांधीजी की विशिष्टता लिए हुए शब्द थे-"यदि यह आपको पसंद न आएँ तो इसे फाड़ देना |”

गांधीजी महसूस करते थे कि भारत के बारे में लोकतंत्री राष्ट्रों की स्थिति नैतिक दृष्टि से असमर्थनीय थी। रूज़वेल्ट या लिनलिथगो इस स्थिति को बदलकर उसे रोक सकते थे, वरना उनके हृदय में कोई शंकाएँ नहीं थीं। नेहरू तथा आजाद शंका करते थे। महात्माजी से मतभेद के कारण राजाजी कांग्रेस का नेतृत्व छोड़ चुके थे | परंतु गांधीजी विचलित नहीं हुए। नेहरू और आजाद को उन्होंने अपनी बात जँचा दी। नेहरू विदेशी तथा घरू स्थिति को अनुकूल नहीं मानते थे। गांधीजी ने बतलाया-“मैंने लगातार सात दिन तक उनसे बहस की | जिस भावावेश के साथ वह मेरी स्थिति के विरोध में लड़े, उसे मैं बयान नहीं कर सकता ।“

“परंतु आश्रम से रवाना होने से पहले,” गांधीजी के शब्दों में “तथ्यों के तर्क ने उन्हें परास्त कर दिया।" सच तो यह है कि नेहरू प्रस्तावित सविनय-अवज्ञा-आंदोलन के इतने कट्टर समर्थक बन गए थे कि जब कुछ दिन बाद बंबई में मैंने उनसे पूछा कि गांधीजी को वाइसराय से मिलना चाहिए या नहीं, तो उन्होंने उत्तर दिया-“नहीं, किसलिए?” गांधीजी अब भी वाइसराय से मुलाकात की आशा लगाए हुए थे।

गांधीजी में महान आकर्षण था। वह एक निराली प्राकृतिक विचित्रता थे, शांत तथा इस प्रकार अभिभूत करनेवाले, कि पता भी न लगे। उनके साथ मानसिक संपर्क आनंददायक होता था, क्योंकि वह अपना हृदय खोलकर रख देते थे और दूसरा व्यक्ति देख सकता था कि मशीन किस तरह चल रही है। वह अपने विचारों को कभी पूर्ण रूप से व्यक्त करने का प्रयत्न नहीं करते थे। वह मानो बोली में सोचते थे, अपने विचार को हर कदम प्रकट कर देते थे। आप केवल उनके शब्दों को ही नहीं, बल्कि उनके विचारों को भी सुनते थे। इसलिए आप उनकी परिणाम पर पहुँचने की गति को सिलसिलेवार देख सकते थे। यह चीज उन्हें प्रचारक की भाँति बात करने से रोकती थी | वह मित्र की भाँति बात करते थे। वह विचारों के परस्पर आदान-प्रदान में दिलचस्पी रखते थे और इससे भी अधिक व्यक्तिगत संबंध स्थापित करने में।

गांधीजी का कहना था कि स्वाधीन भारत में संघीय प्रशासन अनावश्यक होगा | मैंने उन्हें संघीय प्रशासन के अभाव से उत्पन्न होनेवाली कठिनाइयाँ बतलाईं | यह बात उनके गले नहीं उतरी। मैं चकरा गया। अंत में उन्होंने कहा-"मैं जानता हूँ कि मेरे मत के बावजूद केन्द्रीय सरकार बनेगी |" यह विशिष्ट गांधी-चक्र था। वह किसी सिद्धांत का प्रतिपादन करते थे, उसकी वकालत करते थे और फिर हँसते हुए मान लेते थे कि वह अव्यवहारिक है। समझौते की बातचीत में यह प्रवृत्ति अत्यंत झुंझलानेवाली और समय नष्ट करनेवाली हो सकती थी | कभी-कभी तो वह अपनी कही हुई बातों पर खुद भी आश्चर्य करते थे। उनकी विचारप्रणाली तरल थी। अधिकतर लोग चाहते हैं उनकी बात सही प्रमाणित हो। गांधीजी भी चाहते थे, परंतु अक्सर वह गलती को मंजूर करके जीत जाते थे।

बूढ़े लोगों की पुरानी बातें याद आया करती हैं। लॉयड जॉर्ज सामयिक घटनाओं के बारे में प्रश्न का उत्तर देना शुरू करते थे, परंतु शीघ्र ही यह बताने लगते थे कि उन्होंने प्रथम महायुद्ध, या सदी के प्रारंभ में सामाजिक सुधार का आंदोलन किस प्रकार चलाया। परंतु तिहत्तर वर्ष की आयु में भी गांधीजी पुरानी बातें याद नहीं करते थे। उनका दिमाग तो आनेवाली चीजों पर था। वर्ष उनके लिए कोई महत्त्व नहीं रखते थे, क्योंकि वह तो अनंत भविष्य की बातें सोचते थे । उनके लिए केवल घंटों का महत्त्व था, क्योंकि जो कुछ वह उस भविष्य को दे सकते थे, उसका यह नाप था।

गांधीजी के पास प्रभाव से कुछ अधिक था, उनके पास सत्ता थी, जो सामर्थ्य से कम, किन्तु बेहतर होती है। सामर्थ्य मशीन का गुण होता है, सत्ता व्यक्ति का गुण होता है। राजनीतिज्ञों में दोनों का तारतम्य होता है। अधिनायक के पास सामर्थ्य लगातार जमा होती रहती है, जिसका दुरुपयोग अनिवार्य होता है और यह सामर्थ्य उसकी सत्ता को छीन लेती है। गांधीजी के सामर्थ्य-त्याग ने उनकी सत्ता को बढ़ा दिया | सामर्थ्य अपने शिकारों के खून और आँसुओं पर पनपती है। सत्ता को सेवा, सहानुभूति तथा स्नेह पनपाते हैं।

एक दिन मैं महादेव देसाई को चरखा कातते देखता रहा। मैंने कहा कि मैं गांधीजी की बातों को ध्यान से सुनता आया हूँ, परंतु मुझे बराबर यह आश्चर्य हो रहा है कि जनता पर

गांधीजी के अमित प्रभाव का मूल स्रोत क्या है, फिलहाल मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि यह उनकी आसक्ति है।

"यह ठीक है," देसाई ने उत्तर दिया।

"उनकी आसक्ति का मूल क्या है?" मैंने कहा।

देसाई ने समझाया-"वह आसक्ति उन तमाम विषयों का चरमोत्कर्ष है जो इस शरीर के साथ लगे हुए हैं।"

"कामासक्ति?"

"काम, क्रोध, व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा--गांधीजी को अपने ऊपर पूर्ण निग्रह है। इससे अमित शक्ति तथा आसक्ति उत्पन्न होती रहती है।"

यह आसक्ति शमित और अस्फूट थी। उनमें मृदुल तीव्रता, कोमल दृढ़ता और धीरता की रूई में लपेटी हुई अधीरता थी। गांधीजी के साथियों को तथा अंग्रेजों को कभी-कभी उनकी तीव्रता, दृढ़ता और अधीरता पर रोष होता था। परंतु अपनी मृदुलता कोमलता तथा धीरता के द्वारा वह अपने प्रति उनका आदर और अक्सर उनका प्रेम बनाए रखते थे।

गांधीजी एक दृढ़ व्यक्ति थे और उनकी दृढ़ता का कारण उनके व्यक्तित्व का ऐश्वर्य था, न कि उनकी संपत्ति की बहुलता। उनका लक्ष्य था अस्ति, परिग्रह नहीं | आनंद उन्हें आत्मबोध के द्वारा पैदा होता था। वह अभय थे, इसलिए उनका जीवन सत्यमय था। वह अकिंचन थे, पर अपने सिद्धांतों की कीमत चुका सकते थे |

गांधीजी व्यक्तिगत नैतिकता तथा सार्वजनिक व्यवहार के बीच एकता के प्रतीक हैं। जब विवेक घर में तो रहता है, परंतु कारखाने में, दफ्तर में, पाठशाला में और बाजार में नहीं रहता, तो भ्रष्टाचार, क्रूरता और अधिनायकशाही के लिए रास्ता खुल जाता है। |

गांधीजी ने राजनीति को तथा आचार-नीति को संपन्न बनाया । वह प्रत्येक दिन के विचारार्थ विषयों को शाश्वत तथा सार्वभौम मूल्यों के प्रकाश में सुलझाते थे | क्षणभंगुर वस्तुओं का

सार खींचकर वह स्थायी तत्त्व निकाल लेते थे। इस प्रकार वह मनुष्य के कार्य को कुंठित करनेवाली प्रचलित धारणाओं के ढाँचे को तोड़कर निकल जाते थे | उन्होंने कार्य का एक नया परिमाण खोज निकाला था। व्यक्तिगत सफलता या सुख के लिहाजों से न बँधकर उन्होंने सामाजिक परमाणु का विघटन कर दिया और शक्ति का नया स्रोत पा लिया | इसने उन्हें आक्रमण के वे हथियार दिए, जिनका कोई बचाव नहीं था। उनकी महानता इसमें थी कि वह ऐसे काम करे थे जिन्हें हर एक कर सकता है, परंतु करता नहीं है।

गांधीजी के जीवन-काल में ठाकुर ने लिखा था-“कदाचित यह सफल नहीं हो पाएँगे। कदाचित यह उसी प्रकार असफल होंगे, जिस प्रकार मनुष्य को खलता से हटाने में बुद्ध तथा ईसा असफल रहे। परंतु लोग इन्हें सदा ऐसे व्यक्ति की तरह याद करेंगे, जिसने अपने जीवन को आनेवाले अनंत युगों के लिए एक नसीहत बना दिया।"

21 / अदम्य इच्छा-शक्ति

1942 की मई, जून और जुलाई में भारत में दम घोटनेवाली शून्यता का अनुभव होता था। भारतवासी हताश प्रतीत होते थे। ब्रिटिश सेनानायक, संयुक्त राज्य के जनरल जोज़ेफ स्टिलवेल बची-खुची सेना और हजारों भारतीय शरणार्थी जीतते हुए जापानियों से बचने के लिए बर्मा से भाग रहे थे। जापान भारत के दरवाजे तक आ पहुँचा था | भारत को धावे से बचाने के लिए इंग्लैंड के पास शक्ति नजर नहीं आती थी | हल्ला मचानेवाले भारतवासी अपनी नितांत असहायता से झुंझला रहे थे और तंग आ गए थे । राष्ट्रीय संकट उपस्थित था, तनाव बढ़ता जा रहा था, खतरा सामने था, मौका पुकार रहा था, परंतु भारतवासियों के पास न तो आवाज थी और न कुछ करने की सामर्थ्य |

गांधीजी के लिए यह स्थिति असह्य थी | हाथ-पर-हाथ रखकर बैठ जाना उनके स्वभाव के प्रतिकूल था। उनका विश्वास था और उन्होंने अपने पीछे चलनेवाले विशाल समुदाय को सिखाया था कि भारतवासियों को अपने भाग्य का स्वयं निर्माण करना चाहिए।

गांधीजी को अंधकारपूर्ण भविष्य का पूर्वाभास तो नहीं हो सकता था, परंतु तत्काल परिवर्तन की अत्यावश्यक अपेक्षा का उन्हें जरूर भान हो गया था। स्वाधीन राष्ट्रीय सरकार की शीघ्र स्थापना के लिए वह इंग्लैंड पर अधिक-से-अधिक दबाव डालने को कटिबद्ध थे।

परम शांतिवादी गांधीजी की इच्छा थी कि भारत आक्रमण करनेवाली सेना की सफल अहिंसक पराजय का एक अपूर्व उदाहरण प्रस्तुत करे। साथ ही वह इस वास्तविकता को भी पहचानते थे कि देशों के बीच मरने-मारने का भीषण युद्ध छिड़ा हुआ है। 14 जून 1942 के हरिजन में गांधीजी ने घोषणा की थी-"यदि यह मान लिया जाय कि राष्ट्रीय सरकार बन जाएगी और वह मेरी आशाओं के अनुरूप होगी, तो उसका पहला काम होगा आक्रांत राष्ट्रों की कार्रवाइयों से बचाव के हित संयुक्त राष्ट्रों के साथ सुलहनामा करना |"

तो क्या गांधीजी युद्ध-प्रयत्न में सहायता करेंगे ? नहीं। संयुक्त राष्ट्रीय सेनाएँ भारत भूमि पर रहने दी जाएँगी और भारतवासी ब्रिटिश सेना में भर्ती हो सकेंगे या अन्य सहायता दे सकेंगे।

परंतु यदि उनकी बात चले, तो भारतीय सेना तोड़ दी जाएँगी और भारत की नई राष्ट्रीय सरकार विश्व-शांति स्थापित करने में अपनी सारी सामर्थ्य, प्रभाव तथा साधन लगा देगी।

क्या ऐसा होने की उन्हें आशा थी? नहीं | उन्होंने कहा था-"राष्ट्रीय सरकार बनने के बाद मेरी आवाज शायद अरण्यरोदन के समान हो जाय और राष्ट्रवादी भारत शायद युद्ध का दीवाना बन जाय।"

1942 की गर्मियाँ बीतते-बीतते यह स्पष्ट हो गया कि ब्रिटिश सरकार ठुकराए हुए क्रिप्स-प्रस्ताव से आगे नहीं बढ़ेगी। नेहरू वाशिंगटन से कुछ संकेत का इंतजार कर रहे थे। उन्हें आशा थी कि रूज़वेल्ट चर्चिल को भारत में नया कदम बढ़ाने के लिए राजी कर लेंगे। कुछ कांग्रेसजनों को शंका थी कि सविनय-अवज्ञा की पुकार पर देश में प्रतिक्रिया होगी । गांधीजी की कोई शंकाएँ नहीं थीं। अपना दावा कायम करने के लिए राष्ट्र में जो आगा-पीछा न सोचनेवाली उमंग थी, उसे वह व्यक्त कर रहे थे |

कांग्रेस कार्य-समिति ने 14 जुलाई को वर्धा में प्रस्ताव पास किया कि "भारत में ब्रिटिश शासन तुरंत समाप्त होना चाहिए" और यदि उसकी बात नहीं मानी गई, तो प्रस्ताव में कहा गया कि "कांग्रेस अपनी इच्छा के विरुद्ध मजबूर होकर सविनय-अवज्ञा आंदोलन छेड़ेगी, जो अनिवार्य रूप से महात्मा गांधी के नेतृत्व में होगा।"

यह प्रस्ताव अगस्त के प्रारंभ में बंबई में बुलाए गए कांग्रेस महासमिति के अधिवेशन में रखा जानेवाला था। इस बीच गांधीजी ने सेवाग्राम से जापानियों के नाम एक अपील प्रकाशित की, जिसमें जापान को चेतावनी दी गई कि वह भारत की स्थिति का लाभ उठाकर धावा बोलने की चेष्टा न करे।

इसके बाद गांधीजी बंबई गए। न्यूयार्क हेरल्ड ट्रिब्यून के प्रतिनिधि ए. टी. स्टील से उन्होंने कहा-"यदि कोई मुझे समझा सके कि युद्ध के दौरान में भारत को आजादी देने से युद्ध-प्रयत्न खतरे में पड़ जाएगा तो मैं उसकी दलील सुनने को तैयार हूँ।"

स्टील ने पूछा-"अगर आपको विश्वास हो जाय तो क्या आप आंदोलन बंद कर देंगे?"

“अवश्य,” गांधीजी ने उत्तर दिया-“मेरी शिकायत तो यह है कि ये भले आदमी दूर-दूर से मुझे बातें सुनाते हैं, दूर-दूर से मुझे गालियाँ देते हैं, परंतु नीचे उतरकर कभी मुझ से सीधी बातचीत नहीं करते।”

7 अगस्त को महासमिति के अधिवेशन में कई सौ कांग्रेसी नेताओं ने भाग लिया और 7 व 8 को दिन-दिन भर वाद-विवाद करके उन्होंने वर्धा-प्रस्ताव को कुछ संशोधित रूप में स्वीकार कर लिया।

8 अगस्त को आधी रात के कुछ ही देर बाद गांधीजी ने महासमिति के सदस्यों के सामने भाषण दिया। उन्होंने जोर देकर कहा-“वास्तविक संघर्ष तुरंत ही प्रारंभ नहीं हो जाता। आप लोगों ने कुछ अधिकार मुझे सौंपे हैं। मेरा पहला काम होगा वाइसराय से मुलाकात करना और उनसे प्रार्थना करना कि कांग्रेस की माँग स्वीकार की जाय। इनमें दो-तीन सप्ताह लग सकते हैं। इस बीच आप लोगों को क्या करना है? चरखा तो है ही । लेकिन आपको इससे भी अधिक कुछ करना है | इसी क्षण से आप में से हर एक यह समझ ले कि वह आजाद है और इस तरह बर्ताव करे मानो वह आजाद है और इस साम्राज्यवादी की एड़ी के नीचे नहीं है।” गांधीजी इस भौतिकवादी धारणा को उलट रहे थे कि परिस्थितियाँ मन:स्थिति को बनाती हैं। नहीं, मनःस्थिति परिस्थितियों को ढाल सकती है।

प्रतिनिधि लोग घर जाकर सो गए। कुछ ही घंटे बाद पुलिस ने गांधीजी, नेहरू तथा अन्य बीसियों लोगों को जगाया और सूर्योदय से पहले ही उन्हें जेल में पहुँचा दिया। गांधीजी को पूना के पास यरवडा में आगाखाँ के महल में रखा गया। श्रीमती नायडू, मीरा बहन, महादेव देसाई और प्यारेलाल नैयर को भी उसी समय गिरफ्तार कर लिया गया। दूसरे दिन कस्तूरबा और डा० सुशीला नैयर भी पकड़ी गईं।

गांधीजी के साथ एक सप्ताह रहने के बाद मैंने वाइसराय से मुलाकात की थी और उन्हें वह संदेश दिया था जो सेवाग्राम में मुझे सौंपा गया था—गांधीजी वाइसराय से बातचीत करना चाहते हैं। वाइसराय ने उत्तर दिया था-“यह उच्च स्तर की नीति का मामला है और इस पर अच्छाई-बुराई के लिहाज से गौर किया जायगा।”

गांधीजी के जेल के फाटकों में बंद होते ही हिंसा की धाराओं के फाटक खुल गए।

गांधीजी का मिजाज भी लड़ाकू हो रहा था। रंगमंच पर छा जाने की अदम्य क्षमता से युक्त काराबद्ध महात्माजी का व्यक्तित्व आगाखाँ के सुनसान महल की दीवारों को तोड़कर बाहर निकल गया और उसने पहले तो ब्रिटिश सरकार के दिमाग को और फिर भारतीय जनता के दिमाग को घेर लिया।

14 अगस्त को गांधीजी ने वाइसराय को जेल से अपना पहला पत्र भेजा, जिसमें उन्होंने सरकार पर तोड़-मरोड़ और गलत बयानी का आरोप लगाया। लिनलिथगो ने उत्तर दिया कि "आपकी आलोचना से सहमत होना मेरे लिए संभव नहीं है और न नीति में परिवर्तन करना ही संभव है।"

गांधीजी ने कई महीनों प्रतीक्षा की। 1942 की अंतिम तारीख को उन्होंने लिखा-

"प्रिय लार्ड लिनलिथगो,

"यह बिलकुल व्यक्तिगत पत्र है ।...मेरा खयाल था कि हम आपस में मित्र हैं।...मगर 9 अगस्त के बाद की घटनाओं से मुझे शंका हो गई है कि अब भी आप मुझे मित्र समझते हैं या नहीं। कड़ी कार्रवाई करने से पहले आपने मुझे बुलाया क्यों नहीं? अपने संदेह मुझे बतलाए क्यों नहीं और यह क्यों नहीं निश्चय किया कि आपको मिले हुए तथ्य सही भी हैं या नहीं?"

इसलिए गांधीजी ने पत्र के अंत में लिखा-"मैंने उपवास के द्वारा शरीर को सूली पर चढ़ाने का निश्चय किया है। मुझे मेरी गलती या गलतियों का यकीन दिला दो, तो मैं सुधार करने को तैयार हूँ।...अगर आप चाहें, तो बहुत से रास्ते निकाल सकते हैं। नया साल हम सब के लिए शांति लेकर आए।

मैं हूँ,

आपका सच्चा दोस्त,

मो. क. गांधी"

वाइसराय को यह पत्र चौदह दिन बाद मिला | अग्निकांडों और हत्याकांडों का जिक्र करते हुए लिनलिथगो ने अपने उत्तर में लिखा-"मुझे गहरा दुःख है कि आपने इस हिंसा और अपराध की निन्दा के लिए एक शब्द भी नहीं लिखा |"

इसके उत्तर में गांधीजी ने कहा-"9 अगस्त के बाद की घटनाओं के लिए मुझे खेद अवश्य है, किन्तु क्या इसके लिए मैंने भारत सरकार को दोषी नहीं ठहराया है? इसके अलावा, जिन घटनाओं पर मेरा न तो प्रभाव है और न काबू तथा जिनके बारे में मुझ केवल इकतरफा बयान मिला है, उन पर मैं कोई मत प्रकट नहीं कर सकता। मुझे विश्वास है कि यदि आप हाथ नहीं उठाते और मुझे मुलाकात का मौका देते, तो अच्छा ही परिणाम निकलता |"

लिनलिथगो ने इस पत्र का तत्काल उत्तर दिया और लिखा-"मेरे पास इसके सिवा और कोई विकल्प नहीं है कि हिंसा तथा लूटमार के खेदजनक आंदोलन के लिए कांग्रेस को तथा उसके अधिकृत प्रवक्ता-आपको-जिम्मेदार मानूँ | आपको उचित है कि 8 अगस्त के प्रस्ताव तथा उसमें व्यक्त की गई नीति का परित्याग करें और भविष्य के लिए मुझे समुचित आश्वासन दें।"

इसके प्रत्युत्तर में गांधीजी ने कहा-"सरकार ने ही जनता को उभाड़कर पागलपन की सीमा तक पहुँचा दिया है। मैंने जीवन-भर अहिंसा के लिए प्रयत्न किया है, फिर भी आप मुझ पर हिंसा का आरोप लगाते हैं | इसलिए जब मेरे दर्द को मरहम नहीं मिल सकती, तो मैं सत्याग्रही के नियम का पालन करूँगा, अर्थात् शक्ति के अनुसार उपवास करूँगा। यह 9 फरवरी को शुरू होगा और इक्कीस दिन बाद समाप्त होगा ।..मेरी इच्छा आमरण उपवास की नहीं है, परंतु यदि ईश्वर की इच्छा हो, तो मैं कठिन परीक्षा को सही-सलामत पार करना चाहता हूँ। यदि सरकार अपेक्षित कदम उठाए, तो उपवास जल्दी समाप्त हो सकता है।"

वाइसराय ने 5 फरवरी को तुरंत एक लंबा पत्र भेजा, जिसमें दंगे-फिसादों के लिए फिर कांग्रेस को ही जिम्मेदार बताया। पत्र के अंत में कहा गया था-"आपकी तंदुरुस्ती और आयु

के खयाल से, उपवास के आपके निश्चय पर मुझे खेद है | आशा है, आप उपवास का विचार छोड़ देंगे ।...मैं तो राजनैतिक उद्देश्यों के लिए उपवास के प्रयोग को एक प्रकार की राजनैतिक धौंस मानता हूँ, जिसका कोई भी नैतिक औचित्य नहीं है।"

गांधीजी ने लौटती डाक से इसका उत्तर भेज दिया। उन्होंने लिखा—"यद्यपि आपने मेरे उपवास को एक प्रकार की राजनैतिक धौंस बतलाया है, तथापि मेरे लिए तो यह उस न्याय के वास्ते सर्वोच्च अदालत की अपील है, जिसे मैं आपसे प्राप्त नहीं कर सका हूँ।"

उपवास शुरू होने के दो दिन पूर्व सरकार उपवास के समय के लिए गांधीजी को छोड़ने के लिए तैयार हो गई | गांधीजी ने इन्कार कर दिया। उन्होंने कहा कि जेल से छूटने पर वह उपवास नहीं करेंगे। इस पर सरकार ने घोषणा की कि जो कुछ परिणाम होगा, उसकी जिम्मेदारी गांधीजी पर होगी | परंतु वह जेल में जिन डाक्टरों तथा बाहर के मित्रों को बुलाना चाहें, बुला सकते हैं।

उपवास 10 फरवरी को, घोषणा की हुई तारीख के एक दिन बाद, शुरू हुआ। पहले दिन गांधीजी काफी प्रसन्न थे और दो दिन तक वह सुबह और शाम आधा घंटा घूमने भी जाते रहे। परंतु शीघ्र ही उनके स्वास्थ्य की बुलेटिनें चिन्ता उत्पन्न करने लगीं | छठे दिन छः डाक्टरों ने बयान दिया कि गांधीजी की हालत ज्यादा गिर गई है। दूसरे दिन वाइसराय की कार्यकारिणी कौन्सिल के तीन सदस्यों-सर होमी मोदी, श्री नलिनीरंजन सरकार और श्री अणे-ने सरकार के उस दोषारोपण के विरोध में कौन्सिल से त्यागपत्र दे दिए, जिसके कारण गांधीजी को उपवास करना पड़ा था। महात्माजी को छोड़ने के लिए देश-भर में माँग होने लगी | ग्यारह दिन बाद लिनलिथगो ने गांधीजी की रिहाई के तमाम प्रस्तावों को ठुकरा दिया।

गांधीजी की परिचर्या के लिए कलकत्ता से डा० विधानचंद्र राय आ गए। अंग्रेज डाक्टरों ने सलाह दी कि महात्माजी को बचाने के लिए इंजेक्शनों के द्वारा उनके शरीर में खुराक

पहुँचाई जाय | भारतीय डाक्टरों ने कहा कि इससे उनकी मृत्यु हो जाएगी | गांधीजी इंजेक्शनों के विरुद्ध थे। वह इन्हें हिंसा मानते थे।

यरवडा पर भीड़ जमा होने लगी। सरकार ने जनता को महल के मैदान में जाने की और गांधीजी के कमरे में कतार बाँधकर निकलने की अनुमति दे दी। देवदास और रामदास भी आ पहुँचे।

इंग्लैंड की भारत मित्र समिति के होरेस अलेक्ज़ेंडर ने बीच में पड़कर सरकार से बातचीत करने का प्रयत्न किया। इन्हें झिड़की दे दी गई। श्री अणे मरणासन्न महात्माजी से मिलने आए |

गांधीजी नमक या फलों का रस मिलाए बिना पानी ले रहे थे। उनके गुर्दे जवाब देने लगे और खून गाढ़ा होने लगा | तेरहवें दिन नब्ज कमजोर पड़ गई और चमड़ी ठंडी और गीली हो गई।

आखिरकार महात्माजी को इस बात पर राजी कर लिया गया कि उनके पीने के पानी में मुसंबी के ताजे रस की कुछ बूँदें मिला दी जाएँ। इससे उलटियाँ बंद हो गईं | गांधीजी प्रसन्न दिखाई देने लगे।

2 मार्च को उपवास की समाप्ति पर कस्तूरबा ने गांधीजी को एक गिलास में तीन छटाँक नारंगी का रस पानी मिलाकर दिया। वह बीस मिनट तक घूँट-घूँट करके इसे पीते रहे। उन्होंने डाक्टरों को धन्यवाद दिया और धन्यवाद देते समय रो पड़े । आगामी चार दिन तक गांधीजी ने केवल नारंगी का रस लिया, फिर बकरी के दूध, फलों के रस और फलों के गूदे पर आ गए। उनका स्वास्थ्य धीरे-धीरे सुधरने लगा।

भारत के प्रमुख गैर-कांग्रेसी नेताओं ने अब गांधीजी की रिहाई के लिए तथा सरकार द्वारा समझौते की नई नीति अपनाई जाने के लिए आंदोलन शुरू कर दिया | सर तेजबहादुर सप्रू तथा अन्य लोगों ने गांधीजी से मिलने की अनुमति माँगी | लिनलिथगो ने इन्कार कर दिया।

25 अप्रैल को, भारत में रूज़वेल्ट के व्यक्तिगत प्रतिनिधि विलियम फिलिप्स अमरीका लौटने से पूर्व, विदेशी संवाददाताओं को बताया-"मैं चाहता था कि गांधीजी से मिलूँ और बातचीत करूँ। इसके लिए मैंने संबंधित अधिकारियों से अनुमति देने की प्रार्थना की, परंतु मुझे सूचना दी गई कि आवश्यक अनुमति नहीं दी जा सकती।"

लिनलिथगो के व्यवहार ने गांधीजी के हृदय में कटुता उत्पन्न कर दी, जो उनके स्वभाव में नहीं थी । जब वाइसराय अपना बढ़ा हुआ कार्यकाल पूरा करके जाने की तैयारी में थे, तो 27 सितंबर 1943 को गांधीजी ने उन्हें लिखा :

"प्रिय लार्ड लिनलिथगो,

"भारत से आपकी बिदाई के समय मैं आपसे कुछ शब्द कहना चाहता हूँ |

"जिन उच्च अधिकारियों से परिचय का मुझे सम्मान प्राप्त हुआ है, उन सबने आपके कारण मुझे जितना गहरा दुःख हुआ है, उतना और किसी के कारण नहीं हुआ। इस खयाल ने मुझे बहुत चोट पहुँचाई है कि आपने झूठ को प्रश्रय दिया और वह भी ऐसे व्यक्ति के बारे में, जिसे किसी समय आप अपना मित्र समइते थे। मैं आशा और प्रार्थना करता हूँ कि किसी दिन ईश्वर आपको यह महसूस करने की बुद्धि दे कि एक महान राष्ट्र के प्रतनिधि होकर आप गंभीर गलती में पड़ गए।

"सद्भावनाओं के साथ,

मैं अभी तक हूँ
आपका मित्र
मो. क. गाँधी"

लिनलिथगो ने 7 अक्तूबर को उत्तर दिया :

"प्रिय श्री गांधी,

"मुझे आपका 27 सितंबर का पत्र मिला। मुझे वास्तव में खेद है कि मेरे कि किन्हीं कार्यों अथवा शब्दों के बारे में आपकी ये भावनाएँ हैं, जो आपने बयान की हैं। परंतु मैं, जितनी

नम्रता से हो सकता है, आपको स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि प्रस्तुत घटनाओं के संबंध में मैं आपकी व्याख्या स्वीकार करने में असमर्थ हूँ।

"जहाँ तक समय तथा विचारणा के शोधक गुणों का संबंध है, ये तो अपने प्रभाव में स्पष्टतया सार्वत्रिक है और कोई भी बुद्धिमान इनकी उपेक्षा नहीं कर सकता |

मैं हूँ,

आपका

लिनलिथगो"

गांधीजी के लिए जेल में यों रहना एक बेचैनी-भरी ट्रैजिडी थी, जिसमें कोई राहत नहीं थी। व्यापक हिंसा ने तथा उसे रोकने की असमर्थता ने उन्हें व्याकुल कर दिया था।

व्यक्तिगत क्षति ने इस दुःख को और भी गहरा कर दिया। आगाखाँ महल में आने के छः दिन बाद ही महादेव देसाई को अकस्मात दिल का दौरा हुआ और वह बेहोश हो गए।

गांधीजी ने पुकारा-"महादेव, महादेव!"

"महादेव, देखो, बापू तुम्हें पुकार रहे हैं," कस्तूरबा ने चिल्लाकर कहा।

परंतु महादेव का प्राणांत हो चुका था।

इस मृत्यु से गांधीजी को भारी आघात पहुँचा। महल के मैदान में जिस स्थान पर महादेव देसाई की अस्थियाँ गाड़ी गई थीं, वहाँ वह रोज जाते थे।

शीघ्र ही इससे भी गहरे व्यक्तिगत शोक ने गांधीजी को अभिभूत कर दिया।

कस्तूरबा बहुत दिनों से बीमार थीं और दिसंबर 1943 में श्वास नली का प्रदाह पुराना पड़ जाने से उनकी हालत गंभीर हो गई | डा० गिल्डर तथा डा० सुशीला नैयर उनकी चिकित्सा कर रहे थे, परंतु कस्तूरबा ने प्राकृतिक चिकित्सक डा० दीनशा मेहता को बुलाना चाहा। उन्होंने कई दिन तक सारे उपचार किए | अंत में जब वह हार मान गए, तो डा० गिल्डर, डा० नैयर तथा डा० जीवराज मेहता ने अपने प्रयत्न फिर चालू किए। परंतु ये भी असफल

रहे | सरकार ने उनके पुत्रों तथा पौत्रों को उनसे मिलने की अनुमति दे दी। बा ने अपने सबसे बड़े पुत्र हरिलाल गांधी से खासतौर पर मिलने की इच्छा प्रकट की।

गांधीजी घंटों तक बा के बिस्तर के पास बैठे रहे | उन्होंने सब दवाइयाँ रोका दीं और शहद तथा पानी के सिवा सब खुराक बंद करा दीं | उन्होंने कहा-"यदि ईश्वर की इच्छा होगी तो यह अच्छी हो जाएगी, नहीं तो मैं इसे जाने दूँगा, परंतु अब और दवाइयाँ नहीं दूँगा।"

पेनिसिलिन, जो उस समय भारत में दुष्प्राप्य थी, हवाई जहाज द्वारा कलकत्ते से मँगवाई गई। देवदास ने इसके लिए बहुत जोर दिया था।

गांधीजी को मालूम नहीं था कि पेनिसिलिन का इंजेक्शन लगाया जाता है। मालूम होने पर उन्होंने इसे रोक दिया। 21 फरवरी को हरिलाल गांधी आ गए। वह नशे में थे और कस्तूरबा के सामने से उन्हें जबरदस्ती हटाया गया। बा रोने लगीं और अपना माथा पीटने लगीं। (हरिलाल अपने पिता की अंत्येष्ठि में बेपहचाने शामिल हुए थे और उस रात देवदास के पास ठहरे थे | 19 जून 1948 को बंबई के क्षय-चिकित्सालय में इस परित्यक्त की मृत्यु हो गई |)

दूसरे दिन गांधीजी की गोद में सिर रखे हुए कस्तूरबा ने प्राण त्याग दिए। देवदास ने चिता में आग दी । अस्थियाँ महादेव देसाई की अस्थियों के पास गाड़ दी गईं |

अंत्येष्ठि के बाद गांधीजी अपने बिस्तर पर चुपचाप बैठ गए और समय-समय पर जैसे विचार आते गए वह कहते गए-"बा के बिना मैं जीवन की कल्पना नहीं कर सकता |उसकी मृत्यु से जो जगह खाली हुई है, वह कभी नहीं भरेगी । हम दोनों बासठ वर्ष तक साथ रहे | और वह मेरी गोद में मरी। इससे अच्छा क्या होता? मैं हद से ज्यादा खुश हूँ।"

कस्तूरबा की मृत्यु के छः सप्ताह बाद गांधीजी को सख्त मलेरिया ने घेर लिया और उन्हें सन्निपात हो गया। बुखार 105 डिगरी तक चढ़ गया। शुरू में उन्होंने सोचा था कि फलों के रस से और उपवास से इसका इलाज हो जाएगा, इसलिए उन्होंने कुनैन लेने से इन्कार

कर दिया। परंतु दो दिन बाद वह ढीले पड़ गए। दो दिन में उन्हें कुल तैंतीस ग्रेन कुनैन दी गई और बुखार जाता रहा।

3 मई को गांधीजी के चिकित्सकों ने बुलेटिन निकाला कि उनकी रक्तहीनता बढ़ गई है और उनका रक्त-चाप गिर गया है। "उनकी साधारण अवस्था फिर गंभीर चिन्ता उत्पन्न कर रही है।" भारत-भर में उनकी रिहाई के लिए आंदोलन फैल गया। 6 मई को सुबह 8 बजे गांधीजी और उनके साथी रिहा कर दिए गए। बाद की परीक्षा से पता लगा कि उनकी आँतों में हुकवर्म तथा पेचिश के कीटाणु थे।

जेल में गांधीजी का यह अंतिम निवास था| कुल मिलाकर वह 2089 दिन भारत की जेलों में और 249 दिन दक्षिण अफ्रीका की जेलों में रहे।

जेल से छूटने के बाद गांधीजी बंबई के पास जुहू में समुद्र-तट पर शांतिकुमार मुरारजी के घर में ठहरे।

श्रीमती मुरारजी ने एक चलचित्र देखने का सुझाव रखा। गांधीजी ने जीवन में कोई चलचित्र नहीं देखा था | बहुत-कुछ कहने पर वह राजी हो गए। वहीं घर पर उन्हें मिशन टु मास्को नामक फिल्म दिखाई गई।

"आपको कैसी लेगी ?" मुरारजी ने पूछा।

"मुझे पसंद नहीं आई," गांधीजी ने उत्तर दिया। उन्हें बालरूम का नाच और स्त्रियों के संक्षिप्त वस्त्र पसंद नहीं आए | फिर उन्हें एक भारतीय चलचित्र रामराज्य दिखाया गया।

डाक्टर लोग गांधीजी का इलाज कर रहे थे और गांधीजी मौन के द्वारा खुद अपना इलाज कर रहे थे | शुरू में उन्होंने पूर्ण मौन रखा, कुछ सप्ताह बाद वह शाम को 4 बजे से 8 बजे तक बोलने लगे। यह प्रार्थना का समय था।

कुछ सप्ताह बाद वह फिर कार्यक्षेत्र में कूद पड़े।

22 / जिन्ना और गांधी

मोहम्मदअली जिन्ना, जो अपने को गांधीजी के मुकाबले का समझते थे, बंबई में संगमरमर की एक विशाल अर्द्ध-चंद्राकार कोठी में रहते थे। यह कोठी उन्होंने द्वितीय महायुद्ध के समय में बनवाई थी और 1942 में जब मैं उनसे मिला, तो उन्होंने कैफियत देते हुए कहा कि अभी तक यह पूरी तरह सजी नहीं है।

जिन्ना की ऊँचाई छः फुट से ऊपर थी और वजन नौ स्टोन था[1] | वह बहुत ही दुबले-पतले थे। उनका सुगठित सिर सफेद बालों से ढका हुआ था, जो पीछे की ओर बाये हुए थे। उनका घुटा हुआ चेहरा पतला था, नाक लंबी और नोकदार थी। कनपटियाँ धँसी हुईं और गालों में गहरे गड्ढे थे, जिनके कारण गालों की हड्डियाँ उभरी हुई नजर आती थीं | दाँत खराब थे। जब वह बोलते नहीं थे, तो ठोड़ी को नीचे दबा लेते थे, होंठ भींच लेते, बड़ी-बड़ी भौंहों में बल डाल लेते। परिणामस्वरूप उनके चेहरे पर निषेध करनेवाली गंभीरता आ जाती थी । हँसते तो वह शायद ही कभी हों।

मैंने जिन्ना को सुझाया कि धार्मिक विद्वेष, राष्ट्रीयता और सीमाओं ने मानवता को संतप्त किया है और युद्ध कराया है, संसार को समरसता की आवश्यकता है, नए-नए अनैक्यों की नहीं |

“आप तो आदर्श वादी हैं," जिन्ना ने उत्तर दिया-“मैं व्यवहारवादी हूँ। मैं तो जो है, उसी को लेता हूँ। मिसाल के लिए, फ्रांस और इटली को ही ले लीजिए | इनके रीति-रिवाज और मजहब एक हैं। इनकी जुबानें भी एक-सी हैं। फिर भी ये अलग-अलग हैं।”

“तो क्या आप यहाँ भी वही गड़बड़-घोटाला पैदा करना चाहते हैं, जो यूरोप में है?” मैंने पूछा।

“मुझे तो उन विभेदक विशेषताओं का सामना करना होगा, जो मौजूद हैं," उन्होंने कहा।

जिन्ना धर्मनिष्ठ मुसलमान नहीं थे। वह शराब पीते थे और सुअर का मांस खाते थे, जो इस्लामी शरिअत के खिलाफ है। वह शायद ही कभी मस्जिद में जाते हों और न अरबी जानते थे, न उर्दू । चालीस वर्ष की उम्र में उन्होंने अपने धर्म से बाहर एक अठारह-वर्षीय पारसी युवती से विवाह किया | दूसरी ओर, जब उनकी इकलौती सुंदर पुत्री ने एक ईसाई बने हुए पारसी से विवाह किया, तो उन्होंने उसे त्याग दिया। उनकी पत्नी भी उन्हें छोड़ गई और कुछ ही दिन बाद 1929 में मर गई। पिछले वर्षों में उनकी बहन फातिमा, जो दाँतों की डाक्टर थी और उन्हीं की शक्ल-सूरत की थी, उनकी सदा की साथिन और सलाहकार बन गई।

अपने सार्वजनिक जीवन के प्रारंभ में जिन्ना ने हिन्दुओं और मुसलमानों को एक करने का प्रयत्न किया | 1917 में, मुस्लिम लीग के जलसे में हिन्दुओं के कथित प्रभुत्व पर भाषण देते हुए उन्होंने कहा था-"डरो मत। यह एक हौवा है, जो आपको इसलिए दिखाया गया है कि आप उस सहयोग और एके से डरकर भाग जाएँ, जो निजी हुकूमत के लिए जरूरी है।"

जिन्ना कभी कांग्रेस के नेता थे । उनके घर पर हुई दो में से पहली मुलाकात में उन्होंने मुझसे कहा-"होमरूल लीग में नेहरू ने मेरे मातहत काम किया | गांधी ने भी मेरे मातहत काम किया। जब मुस्लिम लीग बनी, तो मैंने कांग्रेस को राजी किया कि वह हिन्दुस्तान की आजादी के रास्ते में एक कदम के तौर पर लीग को मुबारकबाद दे | 1915 में मैंने बंबई में लीग और कांग्रेस के जलसे एक ही वक्त रखवाए, ताकि एके का जज़्बा पैदा हो | अंग्रेजों ने इस एके में खतरा देखकर खुली सभा भंग करवा दी | मेरा मकसद हिन्दू-मुस्लिम एका था। इसलिए बैठक बंद जगह में हुई। 1916 में मैंने लखनऊ में दोनों के जलसे एक साथ करवाए और लखनऊ-समझौता कराने में मेरा ही हाथ था। 1920 तक, जब गांधी रोशनी में आए, यही हालत थी। अब हिन्दू-मुस्लिम संबंध बिगड़ने लगे। 1931 में गोलमेज परिषद् में मुझे यह साफ दीखने लगा कि एके की उम्मीद फिजूल है, गांधी यह नहीं चाहते | मैं मायूस हो गया । मैंने इंग्लैंड में ही रहने का इरादा कर लिया। 1935 तक मैं वहीं रहा। हिन्दुस्तान लौटने का मेरा इरादा नहीं था। लेकिन हर साल हिन्दुस्तान से आनेवाले दोस्त

मुझे हालत बतलाते थे और कहते थे कि मैं बहुत कुछ कर सकता हूँ। आखिर मैंने हिन्दुस्तान वापस आने का इरादा किया।"

जिन्ना एक साँस में ताव के साथ ये सब बातें कह गए। कुछ ठहरकर और सिगरेट का कश लगाकर उन्होंने फिर कहना शुरू किया - "ये सब बातें मैं आपको यह बताने के लिए कह रहा हूँ कि गांधी आजादी नहीं चाहते। वह नहीं चाहते कि अंग्रेज चले जाएँ। वह तो सबसे पहले हिन्दू हैं | नेहरु नहीं चाहते कि अंग्रेज चले जाएँ | ये दोनों 'हिन्दू राज' चाहते हैं।"

न्यूयार्क टाइम्स के संवाददाता जार्ज ई. जॉन्स, जो जिन्ना से कई बार मिले थे, अपनी पुस्तक ट्यूमल्ट इन इंडिया में लिखते हैं - "जिन्ना एक उत्कृष्ट राजनैतिक कारीगर हैं, यह मैकियावेली[2] की नीतिशून्य परिभाषा में आते हैं | उनकी व्यक्तिगत कमियाँ हैं-कुछ अमैत्रीपूर्ण एकांतिकता, अहंकार तथा तंग दृष्टिकोण | वह बहुत ही संशयी व्यक्ति हैं, जो यह समझते हैं कि जीवन में अनेक बार उनके साथ अन्याय हुआ है | उनकी दलित तीव्रता मानसिक रोग की सीमा पर पहुँच गई है | अपने ही में रमे हुए और दूसरों से विलग जिन्ना इतने घमंडी हैं कि अशिष्ट बन गए हैं।"

जिन्ना के सिवा मुस्लिम लीग के सारे अगुआ लोग बड़े-बड़े जागीरदार, जमीन्दार और नवाब थे। मुस्लिम लीग को चंदा देनवाले इन जमीन्दारों ने मुसलमान किसानों को हिन्दू किसानों से जुदा करने के लिए मजहब का सहारा लिया |

मुसलमानों का उच्च-वर्ग (जमीन्दार लोग) और मध्यमवर्ग जिन्ना के लिए तैयार था, लेकिन अपनी संख्या बढ़ाने के लिए उन्हें किसानों की जरूरत थी। उन्हें जल्दी पता लग गया कि मजहबी जोश उभाड़कर वह मुसलमान किसानों को मिला सकते हैं। इसका गुर था पाकिस्तान, मुसलमानों का अलग राज्य ।

जिन्ना की सूझ में पाकिस्तान में छः करोड़ मुसलमान शामिल थे, जो मुस्लिम बहुमतवाले प्रांतों में बसे हुए थे और हिन्दू प्रभुत्व से बचे हुए थे। लेकिन ऐसा पाकिस्तान प्राप्त करने के

लिए जिन्ना को मुसलमानों की मजहबी और राष्ट्रवादी भावनाएँ उभाड़ना जरूरी था और बदले में यह खतरा उठाना भी जरूरी था कि हिन्दू बहुमतवाले प्रांतों में हिन्दुओं की भावनाएँ भी इसी तरह उभड़ जाएँ और उसमें रहनेवाले मुसलमानों को हानि उठानी पड़े।

जिन्ना यह दाँव खेलने को तैयार हो गए।

धर्मविहीन जिन्ना एक धार्मिक राज्य बनाना चाहते थे। पूर्णतया धार्मिक गांधी एक धर्म-निरपेक्ष राज्य चाहते थे।

इसमें संदेह नहीं कि हिन्दुओं तथा मुसलमानों के पारस्परिक संबंधों को आपसी मनोबल और आपसी रियायतें दरकार थीं | गांधीजी को मनुष्य के स्वभाव में इतना विश्वास था कि वह समझते थे कि धैर्य के साथ यह संभव है।

इसके विपरीत जिन्ना तुरंत दो टुकड़े चाहते थे। गांधीजी राष्ट्रीयता की लेही से भारत को एक करना चाहते थे, जिन्ना धर्म की बारूद का उपयोग करके उसके दो टुकड़े करना चाहते थे।

1944 में जेल से रिहाई के समय से लेकर 1948 में मृत्यु के समय तक, विभाजन की दुखांत घटना गांधीजी के सिर पर लटकी रही।

जून 1944 में जब गांधीजी बीमारी के बाद कुछ स्वस्थ हुए, तो वह राजनैतिक अखाड़े में फिर उतर आए | उन्होंने मुलाकात के लिए वाइसराय वेवल को लिखा। वेवल ने उत्तर दिया-"हमारे दोनों के दृष्टिकोणों के बीच मूलभूत मतभेद का विचार करते हुए फिलहाल हमारा मिलना किसी अर्थ का नहीं हो सकता।

तब गांधीजी ने अपना ध्यान जिन्ना पर केन्द्रित किया। गांधीजी सदा से महसूस करते थे कि यदि कांग्रेस और मुस्लिम लीग में समझौता हो जाय, तो इंग्लैंड को भारत की स्वाधीनता देनी पड़ेगी।

राजगोपालाचारी की प्रेरणा से गांधीजी ने 17 जुलाई को जिन्ना को पत्र लिखा, जिसमें आपसी बातचीत का सुझाव था।

लंबा-चौड़ा पत्र-व्यवहार हुआ | गांधीजी और जिन्ना की बातचीत 9 सितंबर को शुरू हुई और 26 सितंबर को टूट गई | इसके बाद सारा पत्र-व्यवहार समाचार पत्रों में प्रकाशित कर दिया गया।

गांधीजी और जिन्ना के बीच दीवार थी दो राष्ट्रों का सिद्धांत ।

"क्या हम 'दो राष्ट्रों' के प्रश्न पर मतभेद के बारे में एकमत नहीं हो सकते और फिर इस समस्या को आत्म-निर्णय के आधार पर हल नहीं कर सकते?" गांधीजी ने दलील दी।

गांधीजी का सुझाव था कि मुस्लिम बहुमतवाले बलूचिस्तान, सिंध तथा सीमांत प्रांत में; और बंगाल, आसाम तथा पंजाब के हिस्सों में, भारत से विलग होने के बारे में मत लिए जाएँ | अगर विलग होने के पक्ष में मत आएँ, तो यह करार कर लिया जाय कि भारत आजाद हो जाने के बाद जल्दी-से-जल्दी इनका एक अलग राज्य बना दिया जाय।

जिन्ना ने तीन बार 'नहीं' कहा | वह अंग्रेजों के भारत में रहते हुए विभाजन चाहते थे। मत लेने की उनकी निराली योजना थी। वह चाहते थे कि विलग होने के प्रश्न का निपटारा केवल मुसलमानों के बहुमत से किया जाय । स्पष्ट है कि गांधीजी जिन्ना के इस सुझाव को नहीं मान सकते थे।

वाशिंगटन के ब्रिटिश दूतावास द्वारा संकलित गांधी-जिन्ना बातचीत संबंधी खरीते में लिखा है-"मि. जिन्ना मजबूत स्थिति में हैं। उनके पास देने को वह चीज है, जिसकी मि. गांधी को बेहद और फौरन जरूरत है, अर्थात अधिकार का एक महत्त्वपूर्ण भाग तुरंत देने के वास्ते ब्रिटिश सरकार पर दबाव डालने के लिए मुसलमानों का सहयोग | इसके विपरीत मि. गांधी के पास देने को कोई चीज नहीं है, जिसके लिए मि. जिन्ना ठहर न सकते हों। मि. जिन्ना की निगाह में एक या दो साल पहले स्वाधीनता की संभावना मुसलमानों की सुरक्षा के मुकाबले में कुछ नहीं है।"

एक चतुर सौदेबाज के पैंतरों का यह चतुर विश्लेषण है। जिन्ना स्वाधीनता के लिए ठहर सकते थे। गांधीजी समझते थे कि स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए सबसे अधिक उपयुक्त समय यही है।

इस समय इतिहास ने बीच में आकर जिन्ना के मनसूबे बिगाड़ दिए और फिर काबिल जिन्ना ने इतिहास बिगाड़ दिया।

---

1. एक स्टोन 14 पौण्ड अर्थात करीब 7 सेर का होता है।

2. मध्य-युगीन इटली का एक कूटनीतिज्ञ।

तीसरा भाग

दो राष्ट्रों का उदय

1 / स्वाधीनता के द्वार पर

30 अगस्त 1944 को मैं वैंडल विलकी से उनके दफ्तर में, जो न्यूयार्क बंदरगाह के किनारे था, मिला। वह नेक आदमी थे। सितंबर 1944 में उनकी मृत्यु से अमरीका की एक अमूल्य निधि चली गई | उन्होंने कहा था-"युद्ध तो दस में से सात हिस्से जीता जा चुका है, परंतु शांति दस में से नौ हिस्से हारी जा चुकी है ।" उन्होंने सारे पूर्व का दौरा किया था और यूरोप तथा एशिया के बीच, गोरे तथा काले आदमियों के बीच, स्वतंत्र लोगों तथा औपनिवेशिक पराधीनों के बीच पुराने संघर्षों को स्थायी होते देखा था। वह महसूस करते थे कि या तो नया विश्व बनेगा या नया विश्व-युद्ध होगा।

दूसरे लोग भी अनुभव करने लगे थे कि अधिनायकशाही के विरुद्ध युद्ध से आजादी के क्षेत्र को विस्तृत करने का नैतिक कर्तव्य उत्पन्न हो जाता है।

ज्यों-ज्यों इंग्लैंड विजय के निकट पहुँचता जा रहा था, त्यों-त्यों स्पष्ट होता जाता था कि भारत में राजनैतिक परिवर्तनों को टाला नहीं जा सकता।

1945 तक भारत इतना मुँहजोर हो चुका था कि उसे काबू में नहीं रखा जा सकता था और इंग्लैंड ने युद्ध में इतना भारी नुकसान उठाया था कि गांधीजी के साथ दूसरी अहिंसात्मक लड़ाई को दबाने के लिए, या गांधीजी काबू खो बैठें, तो हिंसात्मक लड़ाई को दबाने के लिए, जन तथा धन का जो जबरदस्त खर्च जरूरी होता, उसका वह इरादा भी नहीं कर सकता था।

लार्ड वेवल को तो यह चीज खासतौर पर नजर आने लगी थी। भारत सचिव लियोपोल्ड एस. एमरी ने 14 जून 1945 को ब्रिटिश लोक सभा में कहा था-"भारतीय शासन, जिस पर जापान के विरुद्ध युद्ध ने तथा युद्धोत्तर नियोजन ने महान कार्यों का भारी बोझ डाल दिया है, अब वर्तमान राजनैतिक तनाव से और भी अधिक दब गया है।" इस भारतीय शासन के निर्देशक वेवल थे।

वेवल एक सेनानायक, कबि और असाधारण व्यक्ति थे।

1944 में चर्चिल ने वेवल को वाइसराय नियुक्त किया।

गार्च 1945 में वेवल लंदन गए।

लंदन के टाइम्स ने 20 मार्च 1945 को अपने संपादकीय लेख में भारत के बारे में अपनी सम्मति व्यक्त करते हुए लिखा था-"लोगों में व्यापक विश्वास फैला हुआ है कि इस देश को राजनैतिक पहल फिर से शुरू करनी चाहिए |...पहला सुझाव तो यह है कि भारतवासियों को पूर्ण सत्ता हस्तांतरित किए जाने की तैयारी के लिए सरकारी मशीन का ढाँचा, कर्मचारियों की नियुक्ति तथा सरकारी पद्धति बदलनी चाहिए | दूसरे, भारत के दलों तथा हितों को आज जुदा करनेवाले आपसी विरोधों का लगातार कायम रहना अंग्रेजों तथा भारतीय राजनीतिज्ञता के लिए लज्जा की बात है।..."

इंग्लैंड का जनमत, यहाँ तक कि कट्टर जनमत भी, भारत के बारे में चुर्चिल की हठधर्मी-युक्त अचल स्थिति का साथ छोड़ता जा रहा था।

वेवल लंदन में लगभग दो महीने ठहरे | भविष्यवक्ता लोग इंग्लैंड के आसन्न आम चुनावों में मजदूर दल की विजय की भविष्यवाणी कर रहे थे। विदेश नीति आमतौर पर घरू नीति का प्रतिबिम्ब हुआ करती है और वेवल के कार्यकाल के अभी चार वर्ष बाकी थे।

अप्रैल 1945 में संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा-पत्र का मसविदा बनाने के लिए होनेवाली सान फ्रांसिस्को-कान्फ्रेन्स से पहले भारतीय तथा विदेशी संवाददाताओं ने महात्माजी से वक्तव्य माँगा। गांधीजी ने दृढ़ता से कहा-"भारत की राष्ट्रीयता का अर्थ है अंतर्राष्ट्रीयता | जबतक मित्रराष्ट्र युद्ध की प्रभावकारी शक्ति में तथा उसके साथ चलनेवाली धोखा-धड़ी और जालसाजी में विश्वास नहीं त्याग देते और जबतक वे सब जातियों तथा राष्ट्रों की आजादी तथा समानता पर आधारित सच्ची शांति गढ़ने के लिए दृढ़-संकल्प नहीं होते, तबतक न तो मित्रराष्ट्रों के लिए शांति है, न संसार के लिए |...भारत की आजादी संसार की सब शोषित

जातियों को प्रदर्शित कर देगी कि उनकी आजादी निकट है और आगे से किसी भी हालत में उनका शोषण नहीं किया जाएगा।"

"शांति औचित्यपूर्ण होनी चाहिए।" गांधीजी ने आगे कहा-"उसमें न तो दंड और न ही बदले की भावना के लिए स्थान होना चाहिए। जर्मनी और जापान अपमानित नहीं होने चाहिए। सशक्त कभी बदले की भावना नहीं रखता। इसलिए शांति के फल का समान वितरण होना चाहिए | तब प्रयत्न उनको मित्र बनाने का होगा। मित्रराष्ट्र अपने लोकतंत्र को अन्य किसी उपाय से सिद्ध नहीं कर सकते |" लेकिन उन्हें डर था कि सान-फ्रांसिस्को-कान्फ्रेन्स के पीछे अविश्वास और भय की घटाएँ थीं, जो लड़ाई को जन्म देती हैं।

गांधीजी जानते थे कि आजादी शांति की जुड़वा बहन है और निर्भयता दोनों की जननी है। इसमें किसे शक था कि 1960 से पहले भारत आजाद हो जाएगा और साथ ही अधिकांश दक्षिण-पूर्व एशिया भी ? इसमें किसे शक था कि यदि ये आजाद नहीं हुए, तो पश्चिम का जीवन भयानक स्वप्न बन जाएगा और यूरोप का पुनरुत्थान असंभव हो जाएगा ?

ये विचार भारत के प्रति इंग्लैंड के रुख का निर्माण करने लगे थे।

वेवल भारत के लिए एक नई योजना पर ब्रिटिश सरकार की स्वीकृति लेकर नई दिल्ली वापस आए और 14 जून को उन्होंने इसे आकाशवाणी से प्रसारित किया। उसी दिन उन्होंने कांग्रेस के अध्यक्ष मौलाना अबुलकलाम आजाद को तथा जवाहरलाल नेहरू और अन्य नेताओं को छोड़ दिया। 25 जून को उन्होंने भारत के प्रमुख राजनीतिज्ञों को शिमला बुलाया।

कांग्रेस के नेता जाने के लिए राजी हो गए। जिन्ना मुस्लिम लीग के अध्यक्ष की हैसियत से और लियाकतअली खाँ उसके मंत्री की हैसियत से शामिल हुए। खिजहयात खाँ और ख्वाजा नाज़िमुद्दीन को अपने-अपने प्रांतों के भूतपूर्व प्रधान मंत्रियों की हैसियत से निमंत्रण दिया गया। इसके अतिरिक्त मास्टर तारासिंह सिखों के प्रतिनिधि थे और श्री शिवराज

हरिजनों के | गांधीजी प्रतिनिधि तो नहीं थे, परंतु वह शिमला गए और जब तक चर्चाएँ चलती रहीं, तब तक वहाँ रहे।

वेवल-योजना के अनुसार वाइसराय की कार्यकारिणी कौन्सिल में केवल दो अंग्रेज रखे गए थे-वाइसराय तथा प्रधान सेनापति | बाकी सब भारतीय होते। इस प्रकार विदेशी मामले, वित्त, पुलिस आदि विभाग भारतीयों के हाथ में रहते।

परंतु फिर भी शिमला-सम्मेलन असफल हो गया। वेवल ने इसके लिए जिन्ना को दोषी ठहराया।

वेवल-योजना में यह विधान था कि वाइसराय की कौन्सिल में मुसलमानों तथा सवर्ण हिन्दुओं का समान अनुपात हो | कांग्रेस को इस पर आपत्ति थी, परंतु कांग्रेस समझौते के लिए इतनी उत्सुक थी कि उसने इस नुस्खे को मान लिया।

वेवल ने तब दलों के नेताओं से उनकी सूचियाँ माँगी। जिन्ना के सिवा सबने सूचियाँ भेज दीं।

जिन्ना ने शिमला-सम्मेलन को ध्वंस किया, इसका एक कारण नजर आया। उन्होंने इसरार किया कि कौन्सिल के तमाम मुसलमान-सदस्यों को मुसलमानों के नेता होने के नाते वह नामजद करें।

मुस्लिम भारत का प्रतिनिधि होने के जिन्ना के दावे को न तो वेवल कबूल कर सकते थे, न गांधीजी, जो पर्दे के पीछे से कांग्रेस की नीति का संचालन कर रहे थे।

शिमला-सम्मेलन की नौका इस चट्टान से टकराकर डूब गई । भारत के तथा इंग्लैंड के अंग्रेज अधिकारी जिन्ना के सहयोग के बिना कोई कार्रवाई करने को तैयार नहीं हुए।

शिमला-सम्मेलन के दौरान में यूरोप में युद्ध का अंत हो गया था। 26 जुलाई को मजदूर दल ने अनुदार दल को निश्चित रूप से हरा दिया, विन्स्टन चुर्चिल के स्थान पर क्लिमेन्ट आर. एटली प्रधान मंत्री बने।

14 अगस्त को महान शक्तियों ने जापान का आत्म-समर्पण स्वीकार कर लिया |

इंग्लैंड की मजदूर सरकार ने तुरंत घोषणा की कि वह 'भारत में स्व-शासन की शीघ्र प्राप्ति' कराना चाहती है और वेवल को लंदन बुलाया। मजदूर सरकार के निश्चयों की 19 सितंबर 1945 को एटली ने लंदन से और वेवल ने नई दिल्ली से घोषणा की।

कांग्रेस कार्य-समिति ने इन प्रस्तावों को 'अस्पष्ट, अपर्याप्त और असंतोषजनक' समझा, परंतु सरकार का रुख मेल करने का था।

सारे दल चुनाव लड़ने के लिए तैयार हो गए।

विधानमंडलों में गैर-मुस्लिम स्थानों पर कांग्रेस को भारी बहुमत प्राप्त हुआ और मुस्लिम स्थानों पर मुस्लिम लीग को।

गतिरोध भंग नहीं हुआ।

दिसंबर 1945 में कलकत्ता में बोलते हुए वेवल ने भारत के लोगों से अपील की कि जब वह 'राजनैतिक तथा आर्थिक अवसर के द्वार पर' खड़े हैं, तो उन्हें झगड़े तथा हिंसा से बचना चाहिए।

गांधीजी भी कलकत्ता में ही थे। उन्होंने बंगाल के अंग्रेज गवर्नर रिचर्ड केसी के साथ कई घंटे बिताए | उन्होंने वाइसराय से भी एक घंटा बातचीत की | जब वह वाइसराय भवन से निकले, तो विशाल भीड़ ने उनका रास्ता रोक लिया कि जबतक वह भाषण नहीं देंगे, तबतक कार को आगे नहीं बढ़ने दिया जाएगा। वह कार में खड़े हो गए और बोले-"शांति के अपने संदेश के कारण ही भारत ने पूर्व में महान प्रतिष्ठा प्राप्ति की है।" इसके बाद भीड़ ने उनके लिए रास्ता बना दिया।

उसी दिन जिन्ना ने बंबई में वक्तव्य दिया-"हम भारत की समस्या को दस मिनट में हल कर सकते थे-यदि मि. गांधी कह देते 'मैं मानता हूँ कि पाकिस्तान होना चाहिए। मैं मानता

हूँ कि भारत का एक-चौथाई भाग, जिसमें छः प्रांत-सिंध, बलूचिस्तान, पंजाब और सीमा प्रांत-शामिल हैं, इन प्रांतों की मौजूदा सीमाओं के साथ पाकिस्तान बनता है।'"

परंतु गांधीजी यह नहीं कह सकते थे, न उन्होंने यह कहा ही। वह तो भारत के अंग-भंग को घोर पाप मानते थे।

2 / भारत दुविधा में

गांधीजी कहा करते थे कि वह सवासौ वर्ष जीना चाहते हैं, लेकिन न तो 'चलती-फिरती लाश होकर और न अपने कुटुंबियों तथा समाज पर भार होकर'। पहले उन्होंने बतलाया कि वह शरीर से स्वस्थ कैसे बने रहे | 1901 में उन्होंने दवा की शीशी फेंक दी और उसके बजाय प्राकृतिक चिकित्सा तथा नियमित आहार-विहार की शरण ली। इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि उन्होंने 'अनासक्ति' की साधना की, जो दीर्घायु की कुंजी है। गांधीजी कहते थे-हरएक को फल की इच्छा किए बिना कर्म करते हुए सवासौ वर्ष जीने का अधिकार है और जीने की इच्छा करनी चाहिए |" कर्म में प्रवृत्ति परंतु उसके फल से निवृत्ति 'वर्णनातीत आनंद' है, 'अमृत' है, जो जीवनदाता है। इससे 'उद्विग्नता अथवा अधीरता' के लिए कोई स्थान नहीं रहता | अहंकार मृत्यु है, स्वार्थ त्याग जीवन है।

गांधीजी ने एक नया ध्येय हाथ में लिया-निसर्गोपचार | उसे वह अपना 'हाल का पैदा हुआ बच्चा' कहते थे। दूसरे बड़े बच्चे भी-खादी, ग्रामोद्योग, राष्ट्रीय भाषा का विकास, अन्न उत्पादन, भारत के लिए स्वतंत्रता, भारतीयों के लिए स्वाधीनता और विश्व-शांति-उनका शक्तिदायी पोषण पाते रहे। नए बच्चे के लिए एक ट्रस्ट बनाया गया, जिसके गांधीजी तीन ट्रस्टियों में से एक थे। गांधीजी के चिकित्सक डा० दीनशा मेहता का पूना शहर में एक निसर्गोपचार केन्द्र था। इसलिए यह तय हुआ कि ट्रस्ट के पहले कदम के रूप में उसी केन्द्र को बढ़ाकर निसर्गोपचार- विश्वविद्यालय बना दिया जाय।

लेकिन एक मौनवार को गांधीजी ने इस योजना को छोड़ने का निश्चय कर लिया। उन्होंने स्वीकार किया-"मुझे सूझा कि मैं मूर्ख था, जो यह उम्मीद करता था कि गरीबों के लिए शहर में संस्था खड़ी करूँ |" वह निसर्गोपचार को गरीबों के पास ले जाना चाहते थे और यह आशा नहीं रखते थे कि गरीब उनके पास आएँ | इस भूल में एक शिक्षा निहित थी- "किसी भी बात को वेद-वाक्य मत मानो, भले ही वह किसी महात्मा ने क्यों न कही हो,

जबतक कि वह तुम्हारे मस्तिष्क और हृदय को न जँचे।" गांधीजी यंत्रवत आज्ञापालन को नापसंद करते थे।

वह गाँव में निसर्गोपचार का कार्य प्रारंभ करेंगे | उन्होंने लिखा-"यही सच्चा भारत है, मेरा भारत, जिसके लिए मैं जीवित रहता हूँ।" उन्होंने तत्काल अपने इरादे पर अमल किया। थोड़े ही दिनों में वह पूना-शोलापुर रेलवे लाइन पर तीन हजार की आबादीवाले उरुली नामक गाँव में जम गए, जहाँ पानी प्रचुर मात्रा में था, अच्छी जलवायु थी, फलों के बगीचे थे, तार-डाकघर था, पर टेलीफोन नहीं था।

पहले दिन 30 किसान निसर्गोपचार-केन्द्र में आए। गांधीजी ने स्वयं 6 की परीक्षा की | हर रोगी को उन्होंने एक ही चीज बताई : भगवान का बराबर नाम लो, धूप-स्नान लो, मालिश और कटि-स्नान, गाय का दूध, छाछ, फलों का रस और खूब पानी | भगवान का नाम ओठ हिलाने से कुछ अधिक होना चाहिए | सारे जीवन भर और जबतक जाप चले उसमें पूरी आत्मा डूबी रहनी चाहिए | गांधीजी ने बताया –"सारे मानसिक और शारीरिक कष्ट एक ही कारण से होते हैं। इसलिए यह स्वाभाविक है कि उनका इलाज भी एक ही हो | उन्होंने कहा कि हममें से हरएक आदमी शरीर या मस्तिष्क से रोगी है। राम-नाम के जाप के साथ-साथ शुचिता, भलाई, सेवा और आत्म-त्याग पर ध्यान केन्द्रित करने से मिट्टी की पट्टी, स्नान और मालिश द्वारा लाभ होने का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

पदार्थ के ऊपर मन तथा मनःस्थिति की शक्ति का गांधीजी स्वयं ही एक प्रमाण थे। युवावस्था के बाद तथा युवावस्था में भी वह स्वास्थ्य की ओर पूरा ध्यान देते थे | वह अपने आस-पास हरएक प्राणी की शुश्रूषा करते थे। वह दूसरों के दुःख से दुःखी होते थे। उनमें असीम करुणा की क्षमता थी।

स्नेहमयी माता हृदय से इच्छा करती है कि अपने बच्चे का रोग अपने ऊपर ले ले, परंतु उसकी इच्छा पूर्ण नहीं होती। गांधीजी के उपवास अछूतों, हड़तालियों, हिन्दुओं तथा मुसलमानों की पीड़ाएँ दूर करने की आशा में आत्म-पीड़न होते थे | वह पीड़ा देनेवालों के

लिए प्रायश्चित करते थे। दुःख मिटाने तथा पीड़ा कम करने का आंतरिक दबाव मानो गांधीजी के हृदय की गहराई में से निकलनेवाली प्रेरणा थी। गांधीजी का विश्वास था कि उनका मिशन पीड़ा का निवारण है | वह भारत के चिकित्सक थे। जीवन के अंतिम दो वर्षों में भारत ने उन्हें बहुत व्यस्त रखा।

देश में अन्न और वस्त्र का अकाल था। "अन्न-वस्त्र के व्यापारियों को संचय या सट्टा नहीं करना चाहिए," उन्होंने 17 फरवरी 1946 को लिखा-"जहाँ-तहाँ पानी उपलब्ध हो या किया जा सकता हो, उस समूची कृषि-योग्य भूमि पर खेती होनी चाहिए। सारे समारोह बंद हो जाने चाहिएँ |"

वह बंगाल, आसाम और मद्रास में घूम रहे थे। "अधिक अन्न उपजाओ" उनका नारा था। "कातो" उनका अनुरोध था। "पानी की प्रत्येक बूँद, चाहे वह स्नान से आती हो, या हाथ-मुँह धोने से या रसोई-घर से, साग-भाजी की क्यारियों में जानी चाहिए |" उन्होंने शहर के निवासियों से कहा-"साग-भाजी गमलों और टूटे-फूटे पुराने कनस्तरों तक में उगानी चाहिए।"

भूख के कारण देश की बढ़ी हुई संतानोत्पत्ति का प्रश्न उठ खड़ा हुआ | गांधीजी ने कहा-"खरगोश की भाँति आबादी बढ़ाना निश्चय ही बंद हो जाना चाहिए, लेकिन उससे और बहुत-सी बुराइयों को जन्म नहीं मिलना चाहिए। वह ऐसी पद्धति से रुकना चाहिए, जिससे मानव-जाति गौरवान्वित होती है, अर्थात आत्म-संयम के स्वर्ण उपाय द्वारा |"

आवश्यक वस्तुओं की कमी के कारण लूट-पाट तथा अन्य हिंसात्मक विस्फोट होने लगे थे। बंबई में भारी दंगा हो गया, कलकत्ता, दिल्ली तथा अन्य शहरों में लोगों ने आग लगा दी, रास्ता चलनेवालों को नारे लगाने पर मजबूर किया और अंग्रेजों के टोप उतरवा दिए | गांधीजी ने इनकी कड़ी लानत-मलामत की।

10 फरवरी 1946 को गांधीजी ने लिखा-"अब, जबकि यह लगने लगा है कि हम खुदमुख्तार हो रहे हैं, अनुशासनहीनता और हुल्लड़बाजी बंद होनी चाहिए और धैर्य, कठोर

अनुशासन, सहयोग तथा सद्भावना को इनका स्थान ग्रहण करना चाहिए | मैं इस आशा को गले से लगाए हुए हूँ कि जब जनता पर वास्तविक जिम्मेदारी आयगी और कब्जा जमानेवाली विदेशी सेना का असह्य भार हट जाएगा, तब हम स्वाभाविक, गौरवशील तथा निग्रही बन जाएँगे ।" प्रधान मंत्री एटली ने घोषणा की कि लार्ड पैथिक लारेंस, सर स्टैफर्ड क्रिप्स तथा एल्बर्ट वी. अलेक्ज़ेण्डर का एक ब्रिटिश केबिनेट मिशन स्वतंत्रता की शर्तें तय करने के लिए भारत भेजा जा रहा है। गांधीजी ने स्वीकार किया-"मैं जोर देकर कहता हूँ कि ब्रिटिश सरकार के बयानों पर अविश्वास करना और पहले ही से झगड़ा खड़ा करना दूरदर्शिता के अभाव का द्योतक है। क्या सरकारी प्रतिनिधि-मंडल एक महान राष्ट्र को धोखा देने के लिए आ रहा है? ऐसा सोचना न तो पुरुषोचित है, न स्त्रियोचित ।"

केबिनेट मिशन इंग्लैंड से रवाना होकर 24 मार्च को नई दिल्ली आ पहुँचा और उसने आते ही भारतीय नेताओं से मुलाकातें शुरू कर दीं। अंग्रेज मंत्रियों से मिलने के लिए गांधीजी भी दिल्ली आ गए | पैथिक लारेंस लिखते हैं-"मेरी प्रार्थना पर, आनेवाले महीनों में दिल्ली की कड़ी गर्मी की परवाह न करके वह वार्ताओं की प्रगति के पूरे दौरान में हमारे तथा कांग्रेस कार्य-समिति के संपर्क में रहे।"

कई सप्ताह की भाग-दौड़ के बाद जब कोई निश्चित परिणाम नहीं निकला, तो केबिनेट मिशन ने कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग को शिमला के सम्मेलन के लिए चार-चार प्रतिनिधि भेजने का निमंत्रण दिया। गांधीजी प्रतिनिधि नहीं थे, परंतु परामर्श के लिए हर समय उपलब्ध रहे। बाद के दर्ज पर नेहरू और जिन्ना खानगी तौर पर मुद्दों से जूझते रहे, परंतु कोई समझौता नहीं हो पाया।

अंत में गांधीजी ने केबिनेट मिशन से कहा कि वह कोई योजना निकाले।

केबिनेट मिशन की योजना, जो 16 मई 1946 को प्रकाशित हुई, भारत में ब्रिटिश हुकूमत की समाप्ति का प्रस्ताव था, जो इंग्लैंड की ओर से रखा गया था। उस दिन की प्रार्थना-सभा में गांधीजी ने कहा-"केबिनेट मिशन की घोषणा को आप पसंद करें या न करें, परंतु भारत

के इतिहास में यह घोषणा गुरुतम महत्त्व रखती है और इसलिए विचारपूर्ण अध्ययन की अपेक्षा करती है ।"

गांधीजी ने इस घोषणा का चार दिन तक मनन किया और फिर बयान दिया –"(घोषणा की) सूक्ष्म परीक्षा के बाद मेरा विश्वास हो गया है कि इस परिस्थिति में ब्रिटिश सरकार इससे बढ़िया दस्तावेज तैयार नहीं कर सकती थी।"

महात्माजी ने कहा-"ब्रिटिश सरकार का एकमात्र अभिप्राय जल्दी-से-जल्दी अंग्रेजी शासन का अंत करना है।"

केबिनेट मिशन ने अपने वक्तव्य में घोषणा की-"बयानों के ढेर से पता लगता है कि मुस्लिम लीग के समर्थकों को छोड़कर लगभग सभी लोग भारत की एकता चाहते हैं।

फिर भी मिशन ने "भारत के विभाजन की संभावना पर बहुत बारीकी से और निष्पक्षता से" गौर किया।

परिणाम क्या निकला?

वक्तव्य में दिए गए आँकड़ों के आधार पर मिशन ने सिद्ध किया कि पाकिस्तान के उत्तरी-पश्चिमी क्षेत्र में मुसलमानों के अतिरिक्त अल्पसंख्यक 37.93 प्रतिशत होंगे और उत्तरी-पूर्वी भाग में 48.31 प्रतिशत, जबकि शेष भारत में, पाकिस्तान के बाहर, 2 करोड़ मुसलमान अल्पसंख्यक रहेंगे। वक्तव्य में बताया गया-"इन आँकड़ों से पता चलता है कि मुस्लिम लीग ने जिन आधारों पर पाकिस्तान के स्वतंत्र राज्य की माँग की है, उससे सांप्रदायिक अल्पसंख्यक समस्या हल नहीं होगी।"

तब मिशन ने विचार किया कि क्या छोटा पाकिस्तान, जिसमें अ-मुस्लिम भाग शामिल नहीं था, बना सकना संभव है ? "ऐसे पाकिस्तान को," वक्तव्य में कहा गया-"मुस्लिम लीग ने अव्यावहारिक माना ।" उससे पंजाब, बंगाल और आसाम के दो नए राज्यों में विभाजित होने की आवश्यकता पड़ती, जबकि जिन्ना इन प्रांतो को पूरा-का-पूरा चाहते थे।

मिशन ने कहा-"भारत-विभाजन से देश की प्रतिरक्षा-शक्ति कमजोर पड़ जाएगी और उसके यातायात के साधन दो हिस्सों में बैंट जाएँगे।"

"अंतिम बात भौगोलिक है कि प्रस्तावित पाकिस्तान के दोनों भाग 700 मील के फासले पर है और उन दोनों के बीच यातायात, लड़ाई और शांति हिन्दुस्तान की सदिच्छा पर निर्भर करेंगे।

"इसलिए हम ब्रिटिश सरकार को यह परामर्श देने में असमर्थ हैं कि जो सत्ता आज अंग्रेजों के हाथों में है, उसे दो बिलकुल अलग संपूर्ण-प्रभुत्व-संपन्न राज्य को सौंप दिया जाय।"

मिशन ने सिफारिश की कि नव-निर्वाचित प्रांतीय विधानमंडल राष्ट्रीय संविधान सभा के सदस्यों का चुनाव करें। यह सभा भारत का संविधान बनाए।

इस अर्से में लार्ड वेवल एक अंतरिम अथवा अस्थायी सरकार बनाने की कार्रवाई करें।

21 मई को जिन्ना ने केबिनेट मिशन की आलोचना की | उन्होंने इसी बात पर जोर दिया कि पाकिस्तान ही एकमात्र हल है।

परंतु 4 जून को मुस्लिम लीग ने केबिनेट मिशन की योजना स्वीकार कर ली।

अब सारा मामला इस बात पर निर्भर था कि कांग्रेस क्या करेगी।

दिल्ली की गर्मी और लू से बचने के लिए कांग्रेस कार्य-समिति मसूरी चली गई और अपने साथ गांधीजी को भी ले गई।

भारत की आँखें मसूरी पर लगी हुई थीं। कार्य-समिति ने गांधीजी के साथ विचार विमर्श किया। ये बैठकें कितनी भाग्य-निर्णायक थीं, इसे उस समय कोई नहीं जानता था।

विदेशी संवाददाता गांधीजी के पीछे-पीछे मसूरी जा पहुँचे। एक ने गांधीजी से पूछा-"यदि एक दिन के लिए आपको भारत का अधिनायक बना दिया जाय, तो आप क्या करेंगे?"

यदि इस पत्रकार ने यह आशा की हो कि गांधीजी के उत्तर में कांग्रेस के चिर-प्रतीक्षित निर्णय का कुछ संकेत मिलेगा, तो उसे निराश होना पड़ा। "मैं उसे स्वीकार नहीं करूँगा,"

गांधीजी ने उत्तर दिया-"परंतु यदि स्वीकार कर लूँ, तो वह दिन मैं नई दिल्ली में हरिजनों की झोंपड़ियाँ साफ करने में तथा वाइसराय के महल को अस्पताल बनाने में बिता दूँगा | वाइसराय को इतने बड़े भवन की आवश्यकता ही क्या है?"

"अच्छा," पत्रकार ने हठ की-"मान लीजिए कि वे आपकी अधिनायकशाही दूसरे दिन भी चालू रखें।"

गांधीजी ने हँसते हुए कहा-"दूसरे दिन भी पहले दिन का ही सिलसिला होगा।"

केबिनेट मिशन के प्रस्ताव पर कांग्रेस की अब भी कोई प्रतिक्रिया मालूम नहीं हुई।

8 जून को गांधीजी नई दिल्ली लौट आए, जहाँ कांग्रेस के विचार-विमर्शों का सिलसिला चलनेवाला था। ब्रिटिश-सरकार की योजना को स्वीकार करने का अनुरोध करने के लिए मद्रास से राजगोपालाचारी भी आ गए थे।

एक सप्ताह और गुजर गया, मगर फिर भी कांग्रेस ने इस बारे में कोई बात नहीं बताई कि वह केबिनेट मिशन की योजना को स्वीकार करेगी या ठुकरा देगी।

16 जून को लार्ड वेवल ने घोषणा की कि अस्थायी सरकार की रचना के प्रश्न पर कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के बीच समझौता नहीं हो सका, इसलिए वह उस सरकार के पदों पर चौदह भारतीयों को नियुक्त कर रहे हैं।

कांग्रेस को अब दो प्रश्नों के जवाब देने थे। अस्थायी सरकार में शामिल होना या नहीं? स्वतंत्र संयुक्त भारत के संविधान का मसविदा बनाने के लिए संविधान सभा में जाना या नहीं?

3 / गांधीजी से दुबारा भेंट

मैं 25 जून 1946 को नई दिल्ली के हवाई अड्डे पर उतरा। थका हुआ था, परंतु गांधीजी से तुरंत मिलने की ऐसी प्रेरणा हुई कि उसे मैं दबा न सका। मैंने सोचा कि भारत में मेरा पहला काम यही होना चाहिए कि गांधीजी से दो बातें करूँ। इसलिए अपना सामान होटल के स्वागत-कक्ष में ही छोड़कर मैं टैक्सी लेकर हरिजन कालोनी में गांधीजी की कुटिया के लिए रवाना हो गया।

गांधीजी कूटिया के बाहर प्रार्थना सभा में बैठे हुए थे। करीब एक हजार आदमी वहाँ मौजूद थे। गांधीजी की आँखें बंद थीं। कभी-कभी वह आँखें खोलकर संगीत के साथ हाथों से ताल देने लगते थे। वहाँ कई भारतीय तथा विदेशी संवाददाता भी थे और मृदुला साराभाई, नेहरू तथा लेडी क्रिप्स भी मौजूद थे। "

मैं प्रार्थना-मंच की लकड़ी की सीढ़ियों के नीचे बैठ गया। जब गांधीजी नीचे उतरे, तो मुझे देखकर बोले-"ओ हो, तुम यहाँ हो ! अच्छा, इन चार वर्षों में मेरी तंदुरुस्ती पहले से बेहतर तो नहीं हुई है?"

"मैं आपकी बात कैसे काट सकता हूँ!" मैंने उत्तर दिया। वह सिर उठाकर हँसने लगे। मेरी बाँह पकड़कर वह कुटिया की ओर चले। उन्होंने मेरी यात्रा का, मेरी तबीयत का और मेरे बाल-बच्चों का हाल पूछा। फिर शायद यह अनुमान करके कि मैं बातचीत के लिए ठहरना चाहता हूँ, उन्होंने कहा-"लेडी क्रिप्स यहाँ आई हुई हैं। क्या कल सुबह मेरे साथ घूमने चलोगे?"

शाम को मैं मौलाना अबुलकलाम आजाद के घर गया। उन्होंने नेहरू, आसफअली तथा कांग्रेस कार्य-समिति के अन्य सदस्यों के साथ मुझे भी रात्रि के भोजन पर बुलाया था। ये लोग उद्वेलित प्रतीत होते थे और आकाशवाणी की सरकारी खबरों को खास ध्यान से सुन रहे थे। उस दिन कांग्रेस ने अपना अंतिम निर्णय केबिनेट मिशन को और वेवल को लिखकर भेज दिया था, परंतु अभी उसकी घोषणा नहीं की गई थी।

दूसरे दिन सुबह मैं बहुत जल्दी उठ गया और टैक्सी करके 5.30 बजे गांधीजी की कूटिया पर जा पहुँचा | हम करीब आधा घंटा घूमे। गांधीजी सारे समय केबिनेट मिशन से हुई वार्ता का ही जिक्र करते रहे। अगले दिन, 27 जून को मैं सुबह 5.30 बजे फिर गांधीजी के यहाँ गया और उनके साथ आधा घंटा घूमा। 10.30 बजे मुझे जिन्ना से मिलने जाना था। इसी बीच 9.20 बजे मुझे सर क्रिप्स ने भी निमंत्रित किया था। उनके साथ बातचीत करके मैं तत्काल रवाना हुआ।

लेकिन कुछ दूर जाकर टैक्सी ने झटके दिए और खड़ी हो गई | सिख ड्राइव ने इंजन में कुछ खटर-पटर की, मगर चूँकि जिन्ना के पास पहुँचने का समय हो रहा था, इसलिए मैंने ताँगा किराए किया। ताँगे का घोड़ा भी अड़ियल निकला और मैं जिन्ना के यहाँ पैंतीस मिनट देर से पहुँचा | मैंने बहुत क्षमा माँगी और सफाई दी कि किस तरह टैक्सी ने धोखा दिया और ताँगा धीरे-धीरे चला।

उन्होंने रुखाई से कहा-"मुझे उम्मीद है, आपके चोट नहीं आई।"

टैक्सी और ताँगे की चर्चा से छुटकारा पाकर मैंने कहा-"ऐसा लगता है कि हिन्दुस्तान आज़ाद होनेवाला है|"

जिन्ना ने जवाब नहीं दिया। न कुछ कहा। उन्होंने अपनी ठोड़ी झुकाई, मेरी ओर कड़ी निगाह से देखा, खड़े होकर हाथ बढ़ाया और कहा-"अब मुझे जाना है।"

मैंने पूछा कि क्या मैं अगले दिन फिर आ सकता हूँ? नहीं, वह व्यस्त होंगे। वह बंबई जा रहे हैं। क्या मैं बंबई में मिल सकता हूँ? नहीं, वहाँ भी वह व्यस्त रहेंगे। अबतक वह मुझे दरवाजे पर ले आए थे। मैं कभी नहीं जान सकूँगा कि वह मेरे देरी से आने के कारण नाराज हुए थे या भारत की आसन्न आजादी के बारे में मेरे कथन से।

सोमवार 1 जुलाई को मैं हवाई जहाज से बंबई पहुँचा और मंगलवार की शाम को पूना में डा० दीनशा मेहता के प्राकृतिक चिकित्सा सदन गया, जहाँ गांधीजी ठहरे हुए थे। यहाँ मैं तीन दिन रहा। नेहरू भी कुछ समय के लिए यहीं थे।

5 जुलाई को मैं गांधीजी के साथ बंबई आ गया और 6 तथा 7 को कांग्रेस महा-समिति के अधिवेशन में रहा।

16 जुलाई को मैं पंचगनी गया और वहाँ मैंने अड़तालीस घंटे गांधीजी के साथ बिताए।

ऐसा नहीं लगता था कि गांधीजी 1942 के बाद से अब ज्यादा बूढ़े हो गए हों। उनके कदम अब इतने लंबे और तेज नहीं पड़ते थे, परंतु न तो वह घूमने से थकते थे और न दिन-दिन भर की मुलाकातों से। वह हमेशा खुश-मिजाज रहते थे।

शुरू-शुरू में नई दिल्ली में सुबह घूमते समय उन्होंने रूस के साथ युद्ध की अफवाहों के बारे में पूछा था। मैंने बताया था कि युद्ध के बारे में चर्चा तो बहुत-कुछ है, लेकिन यह सिर्फ चर्चा ही है। "आपको पश्चिम की ओर ध्यान देना चाहिए," मैंने सुझाव दिया।

"मैं?" उन्होंने उत्तर दिया-"मैं भारत को भी नहीं समझा सका हूँ। हमारे चारों ओर हिंसा-ही-हिंसा है। मैं तो खाली कारतूस हूँ।"

द्वितीय महायुद्ध के बाद, मैंने सुझाया, बहुत से यूरोपियन और अमरीकन आध्यात्मिक दिवालिएपन का अनुभव कर रहे हैं। वह उसका एक कोना भर सकते हैं। भारत को भौतिक सामग्री चाहिए। उसे इस बात का भ्रम है कि उससे सुख आएगा। हमारे पास भौतिक-सामग्री थी; लेकिन उससे सुख नहीं आया | पश्चिम हल निकालने के लिए हाथ-पैर पीट रहा है।

"लेकिन मैं तो एशियाई हूँ," गांधीजी ने कहा-"केवल एशियाई!" वह हँसने लगे, फिर कुछ रुककर बोले-"ईसा भी तो एशियाई थे।"

इस तथा आगे की बात में मुझे निराशा-भरा स्वर दिखाई दिया, लेकिन उसके नीचे आशा-भरा स्वर भी था। यदि वह 125 वर्ष जीवित रहते, तो अपने काम को पूरा करने का उन्हें काफी समय मिल जाता।

पूना के प्राकृतिक चिकित्सा सदन में मैं शाम को 8.30 बजे पहुँचा। मुझे गांधीजी का कमरा बताया गया और मैं भीतर गया। वह एक गद्दे पर बैठे हुए थे और उनका सारा शरीर सफेद दुशाले से ढका था। उन्होंने ऊपर नहीं देखा। पोस्टकार्ड लिखना समाप्त करके उन्होंने गरदन उठाई और कहा-"ओ हो!" मैं उनके सामने घुटनों के बल बैठ गया और हमने हाथ मिलाए।

"तुम 'डैकन क्वीन' से आए हो," उन्होंने कहा-"उस गाड़ी पर तो खाना भी नहीं मिलता।"

मैंने कहा-"मुझे उसकी परवाह नहीं है। मुझे तो पहले ही से भोजन का निमंत्रण मिल चुका था|"

"यहाँ का मौसम तो आश्चर्यजनक है," मैंने कहा-"आप तो सेवाग्राम की गर्मी की यंत्रणा झेलते थे।"

"नहीं, उन्होंने आपत्ति की-"वह यंत्रणा नहीं थी । किन्तु नई दिल्ली में मैं टब में बर्फ डालकर उसी तरह बैठता था, जैसाकि तुम सेवाग्राम में किया करते थे। मुझे तो टब में बैठे-बैठे लोगों से मिलने में और पत्र लिखने में भी शर्म नहीं लगती थी | यहाँ पूना का मौसम मजे का है।"

तुरंत ही मेरे सवाल किए बिना वह विस्तार के साथ हिंसा के बारे में बोलने लगे। उन्होंने दक्षिण अफ्रीका के दंगों में एक निर्दोष आदमी के मारे जाने का, भारतवासियों को पेड़ से बाँधकर कोड़े लगाए जाने का, अहमदाबाद के हिन्दू-मुस्लिम दंगे का और फिलस्तीन के यहूदियों का जिक्र किया | वह कहने लगे कि ईसा यहूदी थे, मगर यहूदियत के सुंदरतम पुष्प थे। ईसा के चार शिष्यों ने उनके बारे में सच्ची बात कही | परंतु पाल यहूदी नहीं थे। वह यूनानी थे और उनका दिमाग वक्तृत्व तथा तर्क से भरा था। उन्होंने ईसा के उपदेश का रूप विकृत कर दिया। ईसा में बड़ी शक्ति थी-प्रेम की शक्ति, लेकिन ईसाईयत जब पश्चिम के हाथ में पहुँची, तो बिगड़ गई। वह बादशाहों का धर्म बन गई।

मैं जाने के लिए उठा। "अच्छी नींद सोइए," मैंने कहा।

“मैं तो हमेशा ही अच्छी नींद सोता हूँ। आज मेरा मौन-दिवस था और मैं चाए बार सोया। मैं तख्ते पर ही सो गया।"

“मालिश कराते-कराते |” एक महिला ने बतलाया।

“तुम भी यहाँ मालिश कराओ |” गांधीजी ने अनुरोध किया।

शाम के भोजन के बाद मैं खुली छत पर लगे हुए गांधीजी के बिस्तर के पास से गुजरा। दो स्त्रियाँ उनके पाँवों तथा पिंडलियों की मालिश कर रही थीं। उनका बिस्तर एक लकड़ी का तख्ता था, जिस पर गद्दा बिछा था तथा जिसके सिरहाने के नीचे दो ईंटें लगाई हुई थीं। मच्छरदानी लगी थी । उन्होंने मुझे पुकारा-"मुझे आशा है कि तुम सुबह जल्दी उठ जाओगे ताकि मेरे साथ नाश्ता ले सको।” उन्होंने बतलाया कि पहला नाश्ता सुबह चार बजे होता है।

“इससे तो मैं क्षमा चाहता हूँ।”

“तो दूसरा नाश्ता 5 बजे |”

मैंने मुँह बनाया और सब हँसने लगे।

“अच्छा तो तुम 9 बजे मेरे साथ तीसरे नाश्ते में शामिल होना। 6 बजे उठ जाना,” उन्होंने कहा।

मैं सुबह 6.30 बजे उठा। जब मैंने आँगन में कदम रखा, तो गांधीजी एक भारतीय से बातें कर रहे थे। उन्होंने मेरा अभिवादन किया और हम घूमने के लिए बाहर चल पड़े।

मैंने याद दिलाई-“कल रात आपने कहा था कि पाल ने ईसा के उपदेशों को विकृत कर दिया। क्या आपके साथ के लोग भी ऐसा ही करेंगे?”

“इस संभावना का जिक्र करनेवाले तुम पहले व्यक्ति नहीं हो," उन्होंने उत्तर दिया--“उनके भीतर क्या है, वह मुझे दिखाई देता है। हाँ, मैं जानता हूँ कि शायद वे भी ठीक वैसा ही

करने का प्रयत्न करें। मैं जानता हूँ कि भारत मेरे साथ नहीं है। काफी भारतवासी ऐसे हैं, जिनको मैं अहिंसा की शक्ति का कायल नहीं कर सका हूँ।"

उन्होंने फिर दक्षिण अफ्रीका में काले लोगों की यातनाओं की विस्तार से चर्चा की | उन्होंने पूछा कि अमरीका में हब्शियों के साथ कैसा बर्ताव होता है। उन्होंने कहा-"सभ्यता का निर्णय अल्पसंख्यकों के साथ के व्यवहार से होता है।"

एक बलिष्ठ लंकावासी से मालिश कराने के बाद मेरी थकावट उतर गई और मैंने गांधीजी के कमरे में झाँका | उसमें दरवाजा नहीं था, केवल एक पर्दा पड़ा था, जिसे मैंने सरका दिया । उन्होंने मुझे देख लिया और कहा-"भीतर आ जाओ। तुम तो हर समय आ सकते हो |" वह हरिजन के लिए लेख लिख रहे थे। 11 बजे तक मैं कई बार भीतर गया और बाहर आया।

डा० मेहता की पत्नी गुलबाई फलों के टुकड़ों से भरा कटोरा लाई और उसे चटाई पर रख गईं | गांधीजी का तीसरा नाश्ता पहले ही हो चुका था। इसलिए मैं खाते-खाते उनकी बातें सुनता रहा | उन्होंने बतलाया कि वह भारत में एक वर्ग-हीन तथा जाति-हीन समाज के निर्माण का प्रयत्न कर रहे हैं। वह उस दिन के लिए तरसते थे, जब सब जातियाँ एक हो जाएँ तथा ब्राह्मण लोग हरिजनों के साथ विवाह-संबंध करने लगें। "मैं सामाजिक क्रांतिवादी हूँ," उन्होंने दृढ़ता से कहा- "असमानता से हिंसा की तथा समानता से अहिंसा की उत्पत्ति होती है।"

मैं जानता था कि दक्षिण अफ्रीका में काले लोगों के विरुद्ध बढ़ती हुई घृणा उन्हें व्याकुल कर रही थी। मैंने कहा-"मुझे आशा है कि इस मामले में आप हिंसा की कोई चीज नहीं करेंगे। आप हिंसाशील हैं |" वह हँसने लगे। मैं कहता गया—"आपके कुछ उपवास हिंसात्मक होते हैं।"

"तुम चाहते हो कि मैं केवल हिंसात्मक शब्दों तक ही सीमित रहूँ।" उन्होंने मत प्रकट किया।

“जी हाँ ।”

“मैं नहीं जानता कि कब उपवास पर बैठूँ” उन्होंने व्याख्या करते हुए कहा-“इसको निर्धारित करनेवाला तो ईश्वर है। मुझे तो अकस्मात प्रेरणा होती है। परंतु मैं जल्दबाजी नहीं करूँगा। मरने की मेरी इच्छा नहीं है।”

शाम को प्रार्थना के समय मेंह बरसने लगा। सत्संगियों ने छाते खोल लिए | पीछे की तरफ से विरोध की ध्वनि उठी और छाते बंद हो गए।

भोजन से पहले गांधीजी ने मुझसे साथ घूमने चलने को कहा। मैंने थोड़ा विरोध करते हुए कहा-“बारिश में आप कहाँ घूमने जाएँगे!"

उन्होंने बाँह फैलाकर कहा-“बूढ़ेराम, आओ!”

जो निजी कमरा मुझे दिया गया था, उसका द्वार उस छत की ओर था, जहाँ गांधीजी सोते थे। रात को सोने के लिए जाते समय मैं उनके बिस्तर के पास से गुजरा। मैंने चुपचाप हाथ उठाकर उन्हें नमस्कार किया, परंतु उन्होंने मुझे आवाज दी-“आज रात अच्छी तरह सोना | परंतु हम 4 बजे अपनी प्रार्थना से तुम्हें जगा देंगे।”

“मुझे आशा नहीं है," मैंने कहा और उनके नजदीक चला गया।

उन्होंने श्रीमती मेहता से हिन्दुस्तानी में या गुजराती में बात की और मुझे लग कि वह उन्हें डाँट रहे हैं। फिर मुझसे बोले-“हम तुम्हारी ही बात कर रहे हैं | तुम जानने के लिए उत्सुक हो?”

“मुझे कुछ-कुछ पता लग गया,” मैंने उत्तर दिया-“अब आपने मुझसे कह तो दिया, मगर यह नहीं बताया कि आप क्या बात कर रहे थे। यह आपने और भी बुरा किया। जबतक आप नहीं बतलाएँगे, तबतक मैं सत्याग्रह करूँगा ।"

“बहुत अच्छा!” उन्होंने हँसकर कहा।

“मैं सारी रात आपके बिस्तर के पास बैठा रहूँगा।"

“बैठे रहो!” उन्होंने लय के साथ कहा।

“मैं यहाँ बैठा-बैठा अमरीकी गीत गाऊँगा |”

“बहुत अच्छा! तुम्हारे गाने से मुझे नींद आ जायगी ।“

इस बात में सबको मजा आ रहा था।

अब काफी देर हो चुकी थी, इसलिए मैंने विदा ली। मैंने श्रीमती मेहता से बात की | गांधीजी ने उन्हें इसलिए डाँटा था कि उन्होंने 9 बजे के बजाय 11 बजे उनके कमरे में मुझे नाश्ता दिया और इसके अलावा मुझे विशेष भोजन दिया। किसी के साथ विशेष सुविधा का व्यवहार नहीं होना चाहिए।

सुबह उठकर मैं गांधीजी के कमरे में गया। उन्होंने अपने साथ घूमने चलने को कहा। मैंने भारत की राजनैतिक स्थिति में अगले कदम के बारे में उनकी सम्मति माँगी। उन्होंने तत्काल उत्तर दिया-“ब्रिटिश सरकार को चाहिए कि कांग्रेस से मिली-जुली सरकार बनाने को कहे। तमाम अल्पसंख्यक समुदाय सहयोग देंगे।”

“क्या आप मुस्लिम लीग के सदस्यों को भी शामिल करेंगे?”

“अवश्य,” उन्होंने उत्तर दिया-“मि. जिन्ना अत्यंत महत्त्वपूर्ण पद ले सकते हैं।“

कुछ देर बाद उन्होंने यूरोप तथा रूस की चर्चा शुरू की। मैंने कहा कि मास्को के पास संसार को देने के लिए कुछ नहीं है। वह तो राष्ट्रीयतावादी, साम्राज्यवादी तथा वृहत्तर स्लाव राष्ट्र का समर्थक बन गया है। इससे पश्चिम की संतुष्टि नहीं होगी।

“तुम क्यों चाहते हो कि मैं पश्चिम के पास जाऊँ?”

“पश्चिम के पास मत जाइए परंतु पश्चिम से अपनी बात कहिए।”

“पश्चिमवाले मुझसे यह अपेक्षा क्यों रखते हैं कि मैं उनसे कहूँ कि दो-और-दो चार होते हैं? यदि वे समझते हैं कि हिंसा तथा युद्ध का मार्ग बुरा है, तो इस प्रकट सचाई को बतलाने के लिए मेरी क्या जरूरत है? इसके अलावा, मेरा काम यहाँ अधूरा पड़ा है।”

मैंने कहा-"फिर भी पश्चिम को आपकी आवश्यकता है। आप भौतिकवाद के प्रतिवाद हैं, इसलिए स्तालिनवाद तथा राज्यवाद-रूपी विष की काट हैं।"

नेहरू भी कृष्ण मेनन के साथ सदन में आ पहुँचे। गांधीजी ने मुझसे कहा-"नेहरू का मस्तिष्क वक्तृत्वामय है।" नेहरू ने, मेनन ने, मैंने तथा कुछ अन्य लागों ने साथ बैठकर भोजन किया।

नेहरू में असीम आकर्षण, शिष्टता और सहृदयता है तथा अपने भावों को शब्दों में व्यक्त करने की प्रतिभा है। गांधीजी उन्हें कलाकार कहते थे।

गांधीजी नेहरू को पुत्र की भाँति प्यार करते थे और नेहरू गांधीजी को पिता की भाँति प्यार करते थे। अपने तथा गांधीजी के दृष्टिकोण की गहरी मित्रता को नेहरू ने कभी नहीं छिपाया | गांधीजी इस स्पष्टवादिता का स्वागत करते थे। दोनों का पारस्परिक स्नेह मतकैय पर निर्भर नहीं था।

नेहरू के मानस की गहराई में कोई चीज है, जो आत्म-समर्पण के विरुद्ध विद्रोह करती है। अधिकतर भारतीय नेता जिस प्रकार बिना हिचकिचाहट के गांधीजी के आज्ञाकारी बने हुए थे, उससे नेहरू का हृदय दूर भागता था। वह शंका करते थे, बहस करते थे और प्रतिरोध करते थे और अंत में आत्म-समर्पण कर देते थे। वह अपने व्यक्तित्व की स्वाधीनता के लिए लड़ते हैं। पराभव से वह भड़कते हैं। परंतु यदि वह हार मानते हैं, तो विनय और नम्रता के साथ | गांधीजी उनकी कमजोरियों को जानते थे और नेहरू स्वयं अपनी मर्यादाओं को महसूस करने लगे हैं। राजनीति में नेहरू जीवन-भर दलगत राजनीति के पेचों में उतने माहिर नहीं हो पाए, जितने कि महात्माजी और पटेल | वह संयोजक नहीं हैं, जननायक हैं; भीतर जोड़-तोड़ करनेवाले नहीं हैं, बाहर के लिए प्रवक्ता हैं। उनकी बात का असर सबसे अधिक बुद्धिजीवियों पर पड़ता है, लेकिन यह असर दिमाग पर नहीं, दिल पर पड़ता है। वह संसार के एक अग्रणी राजनीतिज्ञ हैं, परंतु राजनीतिज्ञ नहीं। वह तो राजनीतिज्ञों के बीच खोए हुए एक भले आदमी हैं।

नेहरू की पुस्तकें आत्मा का सौन्दर्य, आदर्श की उच्चता तथा अहं का केन्द्रीकरण प्रकट करती हैं। गांधीजी पूर्णतया बहिर्मुख प्रतीत होते थे। वह अपने लिए भार नहीं थे। नेहरू सदा अपनी समस्या से जूझते रहते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा सदन में दूसरे दिन के तीसरे पहर नेहरू मेरे बिस्तर पर घंटे-भर पालथी लगाकर बैठे रहे और मैं वहाँ रखी अकेली कुर्सी पर। वह अपने प्यारे काश्मीर की यात्रा को गए थे। महाराजा ने उनका प्रवेश रोक दिया | सीमांत की चौकी पर उनका रास्ता रोकनेवाले संगीनधारी सिपाही से वह हाथपाई कर बैठे | अब उन्होंने कहा-"मुझे यकीन है कि जिस समय मैं केबिनेट मिशन के साथ वार्ताओं में लगा हुआ था, उस समय ब्रिटिश एजेण्ट वाइसराय से पूछे बिना काश्मीर में घुसने से नहीं रोक सकता था, और चूँकि ऐसा हुआ, इसलिए यह नहीं लगता कि अंग्रेज भारत छोड़ने की तैयारी कर रहे हैं।"

नेहरू ने तीसरे पहर के कई घंटे गांधीजी के साथ अकेले में बिताए। शाम को मैं गांधीजी के कमरे में गया और मैंने उन्हें कातते हुए पाया। मैंने कहा कि मैं तो समझता था कि आपने कातना छोड़ दिया | "नहीं ! मैं कातना कैसे छोड़ सकता हूँ?" उन्होंने कहा-"भारतवासियों की संख्या चालीस करोड़ है। इनमें से दस करोड़ बच्चे-बेघरबार आदि निकाल दो | यदि बाकी के तीस करोड़ रोजाना एक घंटा काता करें, तो हमको स्वराज्य मिल जाय।"

"आर्थिक प्रभाव के कारण या आध्यात्मिक प्रभाव के कारण?" मैंने पूछा।

"दोनों ही," वह बोले-"यदि तीस करोड़ जनता दिन में एक बार एक समान काम करे, इसलिए नहीं कि किसी हिटलर की आज्ञा है, बल्कि एक आदर्श से प्रेरित होकर, तो स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए हमारे अंदर हेतु की पर्याप्त एकता हो जाएगी ।"

"जब आप मुझसे बात करने के लिए कातना बंद करते हैं, तो स्वराज्य को पीछे ढकेलते हैं?"

"ठीक है," उन्होंने स्वीकार किया-"तुमने स्वराज्य को छः गज पीछे हटा दिया है।"

दूसरे दिन सुबह गांधीजी और उनके करीब दस साथी और मैं पूना स्टेशन पर बंबई की गाड़ी में सवार हुए | रास्ते-भर मूसलाधार पानी बरसता रहा और डिब्बे की छत से और खिड़कियों की दरारों से पानी भीतर आने लगा। रास्ते में कई स्टेशनों पर स्थानीय कांग्रेसी कार्यकर्ता गांधीजी से परामर्श करने के लिए गाड़ी में चढ़े। बीच-बीच में उन्होंने हरिजन के लिए एक लेख लिखा और दूसरा लेख सुधारा। एक बार उन्होंने मेरी ओर देखकर मुस्कराया और दो-चार बातें कीं। संपादकीय-कार्य समाप्त होने पर वह लेट गए और तत्काल गहरी नींद लेने लगे। वह करीब पंद्रह मिनट सोए |

गांधीजी खिड़की के पास बैठे हुए थे। मूसलाधार वर्षा के बावजूद हरएक स्टेशन पर विशाल भीड़ जमा थी। एक स्टेशन पर दो लड़के, जिनकी आयु करीब चौदह वर्ष की होगी और जो सिर से पैर तक पानी में तर हो रहे थे, गांधीजी की खिड़की के बाहर हाथ उठा-उठाकर कूदने लगे और चिल्लाने लगे-"गांधीजी, गांधीजी, गांधीजी !" गांधीजी मुसकराए।

मैंने पूछा-"आप इनके लिए क्या हैं?"

उन्होंने अंगूठे बाहर निकालकर दोनों हाथों की मुट्ठियाँ कनपटी के पास रखीं और बोले-"सींगदार आदमी ! एक तमाशा !"

बंबई के अंतिम स्टेशन पर भीड़ से बचने के लिए गांधीजी एक छोटे स्टेशन पर गाड़ी से उतर गए। वह तथा अन्य कांग्रेसी नेता कांग्रेस महा-समिति की बैठक के लिए बंबई में एकत्र हो रहे थे। इस बैठक में कार्य-समिति के उस निर्णय पर बहस होनेवाली थी, जिसमें भारत के संविधान की दूरवर्ती योजना स्वीकार की गई थी, परंतु अंतरिम सरकार में सम्मिलित होना अस्वीकार किया गया था ।

महा-समिति का यह दो-दिवसीय अधिवेशन एक पंडाल में हुआ | मंच पर सफेद खादी बिछी हुई थी। सफेद बारीक खादी के कपड़े पहने हुए नेता लोग फर्श पर बैठे थे। मंच के बीच में बाईं ओर पीछे की तरफ एक बड़ा तख्त लगा हुआ था, जिस पर सफेद खादी बिछी हुई थी। यह खाली पड़ा था। सफेद चूड़ीदार पाजामा, सफेद कुर्ता और बादामी जाकट

पहने हुए नेहरू अध्यक्ष के स्थान पर बैठे थे। मत देने के अधिकारी ढाई सौ प्रतिनिधि पंडाल में बैठे हुए थे। इनके अलावा पंडाल में सैकड़ों दर्शक तथा बीसियों भारतीय तथा विदेशी संवाददाता भी थे ।

चर्चाओं के दौरान में एक स्त्री पीछे की ओर से मंच पर आई और तख्त पर एक चपटी पेटी रखकर चली गई। कुछ ही देर बाद गांधीजी आए, तख्त पर बैठ गए और पेटी खोलकर कातने लगे।

दूसरे दिन रविवार, 7 जुलाई को, गांधीजी ने तख्त पर बैठे-बैठे समिति के समक्ष भाषण दिया।

यह भाषण, जो बिना पूर्व तैयारी के दिया गया था, हरिजन में तथा भारत के अन्य समाचार-पत्रों में ज्यों-का-त्यों प्रकाशित हुआ था। इसके करीब 1700 शब्द गांधीजी ने बहुत धीरे-धीरे लगभग पंद्रह मिनट में बोले, मानो वह अपनी कुटिया में किसी एक आदमी से बात कर रहे हों।

उन्होंने कहा :

"मुझे बताया गया है कि केबिनेट मिशन के प्रस्तावों के बारे में मेरे कुछ पिछले शब्दों से जनता के दिमाग में काफी भ्रम पैदा हो गया है। एक सत्याग्रही होने के नाते मेरी सदा यह कोशिश रहती है कि पूर्ण सत्य बोलूँ और सत्य के सिवा कुछ न बोलूँ। मैं आपसे कभी भी कोई बात छिपाना नहीं चाहता । मानसिक दुराव से मुझे घृणा है। परंतु भावों को व्यक्त करने के लिए अच्छी-से-अच्छी भाषा भी अपूर्ण माध्यम होती है। कोई भी आदमी जो कुछ महसूस करता है या विचार करता है, उसे शब्दों के द्वारा पूरी तरह व्यक्त नहीं कर सकता। पुराने जमाने के ऋषि-मुनि भी इस अक्षमता का निवारण नहीं कर पाए।...

"केबिनेट मिशन के प्रस्तावों के संबंध में दिल्ली के अपने एक भाषण में मैंने यह जरूर कहा था कि जहाँ पहले मुझे प्रकाश दिखाई देता था, वहाँ अब अंधकार दिखाई देता है। यह अंधकार अभी हटा नहीं है। शायद वह और भी गहरा हो गया है। यदि मैं अपना मार्ग

स्पष्ट देख पाता, तो कार्य-समिति से कह सकता था कि संविधान-सभा संबंधी प्रस्ताव को ठुकरा दें। कार्य-समिति के सदस्यों से मेरे कैसे संबंध हैं, यह आप जानते हैं | बाबू राजेन्द्रप्रसाद ने चंपारन में मेरे दुभाषिए और मुंशी का काम किया | सरदार (पटेल) के लिए मेरा शब्द कानून है | ये दोनों मुझसे कहते हैं कि जहाँ पिछले अवसरों पर मैंने अपनी अंतःप्रेरणा की पुष्टि तर्क के द्वारा सका था और उनके मस्तिष्क तथा हृदय दोनों को संतुष्ट कर सका था, वहाँ इस बार मैं ऐसा नहीं कर सका। मैंने उन्हें बतलाया कि यद्यपि मेरा हृदय आशंकाओं से भरा हुआ था, तथापि इसके लिए मैं कोई दलील नहीं दे सकता था, वरना मैं उनसे कह देता कि प्रस्तावों को एकदम ठुकरा दें | अपनी आशंकाएँ उनके सामने रखना मेरा कर्तव्य था, ताकि वे सावधान हो जाएँ | परंतु मैं जो कुछ कहूँ, उसकी परीक्षा उन्हें तर्क के आधार पर करनी चाहिए और मेरे दृष्टिकोण को तभी स्वीकार करना चाहिए जब उन्हें उसके सही होने का यकीन हो जाय |

"एक सत्याग्रही से मैं यह आशा नहीं करूँगा कि वह कहे कि अंग्रेज लोग जो-कुछ करते हैं, वह बुरा है। अंग्रेज लोग लाजिमी तौर पर बुरे नहीं हैं। हम लोग खुद भी दोषों से बरी नहीं हैं | अगर अंग्रेजों में कुछ अच्छाई न होती, तो वह अपनी मौजूदा ताकत को नहीं पहुँच सकते थे। उन्होंने आकर भारत का शोषण किया, क्योंकि हम आपस में लड़ते रहे और अपना शोषण होने देते रहे। परमात्मा के जगत में शुद्ध बुराई कभी फलीभूत नहीं होती। जहाँ शैतान का राज्य है, वहाँ भी ईश्वर का शासन है, क्योंकि शैतान का अस्तित्व उसी की मर्जी पर है।"

"हमको धैर्य और नम्रता और अनासक्ति की आवश्यकता है | संविधान सभा फूलों की सेज नहीं, बल्कि केवल काँटों की सेज होनेवाली है। आपको उससे दूर नहीं भागना चाहिए।"

"हमको कायरता नहीं दिखानी चाहिए, बल्कि अपने काम में श्रद्धा और साहस के साथ लग जाना चाहिए | मेरे हृदय को जिस अंधकार ने घेर रखा है, उसकी परवाह न कीजिए। ईश्वर उसे प्रकाश में बदल देगा।"

भाषण के बीच दो-तीन बार सबने तालियाँ बजाईं |

कार्य-समिति के प्रस्ताव के पक्ष में 204 मत आए और विरोध में 51।

बरसात की गर्म और सीलभरी बंबई में कुछ दिन ठहरकर मैं जयप्रकाश नारायण तथा उनकी पत्नी प्रभावती के साथ पंचगनी के लिए रवाना हो गया, जहाँ गांधीजी का नया मुकाम था। पूना तक तो हम लोग रेल में गए, फिर कार में बैठे।

जयप्रकाश तो शाम को सतारा में एक सभा में बोलने के लिए ठहर गए और प्रभावती तथा मैं कार द्वारा पहाड़ियों पर चढ़ते हुए और कुहरे को पार करते हुए, आधी रात के लगभग पंचगनी पहुँचे।

सुबह प्रभावती ने अपना सिर गांधीजी के चरणों पर रख दिया। उन्होंने स्नेह से उसकी पीठ थपथपाई | भोजन के समय तक जयप्रकाश भी आ गए। चूँकि वहाँ जयप्रकाश तथा मैं-दो ही आगंतुक थे, इसलिए गांधीजी से बातचीत करने का मुझे काफी अवसर मिला।

शुरू में उन्होंने मुझसे पूछा कि मैंने क्या देखा। मुझे संविधान सभा में विश्वास रखने तथा न रखनेवालों के बीच स्पष्ट दरार दिखाई दे रही थी।

गांधीजी-"मैं संविधान सभा को अ-क्रांतिकारी नहीं मानता | मेरा विश्वास है कि वह सविनय अवज्ञा का स्थान पूरी तरह ले सकती है।"

मैं-"आपका खयाल है कि अंग्रेज लोग ईमानदारी का खेल खेल रहे हैं?"

गांधीजी-"मेरा खयाल है कि इस बार अंग्रेज ईमानदारी का खेल खेलेंगे ।"

मैं-"आपको यकीन है कि वे भारत छोड़कर जा रहे हैं?"

गांधीजी-"हाँ |"

मैं-"मुझे भी यकीन है। परंतु मैं जयप्रकाश को यकीन नहीं दिला सकता। लेकिन फर्ज कीजिए कि अंग्रेज लोग नहीं जाएँ, तो आप अपने तरीके का विरोध करेंगे, जयप्रकाश के तरीके का तो नहीं?"

गांधीजी-"नहीं | जयप्रकाश को मेरे साथ आना होगा। मैं उसके मुकाबले में खड़ा नहीं होऊँगा। 1942 में मैंने कहा था कि मैं अपरिचित पथ पर चल रहा हूँ। अब मैं ऐसा नहीं करूँगा। तब मैं जनता को नहीं पहचानता था। अब मैं जानता हूँ कि मैं क्या कर सकता हूँ और क्या नहीं कर सकता।"

मैं-"1942 में आप नहीं जानते थे कि हिंसा होगी ?"

गांधीजी-"यह बात सही है ।"

मैं-"मतलब यह है कि अगर संविधान सभा असफल हो गई, तो आप सविनय अवज्ञा आंदोलन नहीं चलाएँगे ?"

गांधीजी-"यदि उस समय तक समाजवादी और साम्यवादी ठंडे नहीं पड़े, तो नहीं।"

मैं-"यह तो संभव नहीं नजर आता |"

गांधीजी-"जब भारत के वायुमंडल में इतनी हिंसा भरी है, तो मैं सविनय अवज्ञा का विचार नहीं कर सकता । आज कुछ सवर्ण हिन्दू हरिजनों के साथ ईमानदारी का बर्ताव नहीं कर रहे |"

मैं-"कुछ सवर्ण हिन्दुओं से आपका अभिप्राय कुछ कांग्रेसजनों से है?"

गांधीजी-"बहुत-से कांग्रेसजन तो नहीं, परंतु कुछ ऐसे हैं, जिन्होंने हृदय से अस्पृश्यता का त्याग नहीं किया है। यही दुःख की बात है । मुसलमान भी महसूस करते हैं कि उनके साथ अन्याय हो रहा है। एक कट्टर हिन्दू के घर में एक मुसलमान एक ही दरी पर बैठकर हिन्दू के साथ भोजन नहीं कर सकता। यह झूठा धर्म है। भारत में झूठी धार्मिकता है। उसे सच्चे धर्म की आवश्यकता है |"

मैं-"कांग्रेस को आप नहीं समझा पाए?"

गांधीजी-"नहीं, मैं सफल नहीं हुआ। मैं असफल हो गया। लेकिन फिर भी कुछ प्राप्त हुआ है। मदुरा तथा दूसरे कई तीर्थ-स्थानों में हरिजन मंदिरों में जाने लगे हैं। उन्हीं मंदिरों में सवर्ण पूजा करते हैं।"

सुबह की बातचीत यहीं समाप्त हो गई।

गांधीजी 'प्रकाश अंदर डाल' रहे थे और दूसरों में दोष देखने के बजाय प्रकाश-किरण कांग्रेस और हिन्दुओं की बुराइयों को दिखाने में मदद कर रही थी। कुछ हिन्दू इसे पसंद नहीं करते थे और जिन्ना और इंग्लैंड को दोष देते थे।

दोपहर को जयप्रकाश एक घंटा गांधीजी के साथ रहे।

जयप्रकाश-"कांग्रेस देश की शक्ति को संगठित नहीं कर रही है। आज कांग्रेस में योग्यता का स्थान नहीं है। जात-बिरादरी और सगे-संबंधी का महत्त्व है | यही कारण है कि हम समाजवादी संविधान सभा में नहीं जाएँगे। हमें ऐसा लगता है कि कांग्रेस कार्यकारिणी एक प्रकार की लाचारी से दबी है। 'अगर हम लोग ब्रिटिश प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करते, तो क्या कर सकते हैं?' यह उसका कहना है। यह कमजोरी का रुख है। वह चाहती है कि ब्रिटिश मुस्लिम लीग और कांग्रेस के बीच समझौते का रास्ता निकालें। हम अंग्रेजों से कह सकते थे, 'आप जाओ। हम आप सुलझ लेंगे।' अगर अंग्रेज इसे पसंद न करते, तो हमें जेल में डाल सकते थे।"

गांधीजी-"जेल तो चोरों और डाकुओं के लिए है। मेरे लिए तो वह महल है। थॉरो को पढ़ने से पहले ही मैंने जेल जाने की बात निकाली थी | टाल्सटाय ने एक रूसी पत्र में लिखा था कि मैंने एक नई चीज खोजी है। एक रूसी स्त्री ने उसका अनुवाद करके मेरे पास भेजा | मैंने जेल के भीतर से ही सरकार से लड़ाई लड़ी है। जेल जाने से स्वराज आ सकता है, बशर्ते कि उसके पीछे का सिद्धांत सही हो, लेकिन आज जेल जाना तो एक मजाक हो गया है।"

जयप्रकाश नारायण-"आज तो हमें अंग्रेजों को जेल भेजना चाहिए |"

गांधीजी-"क्यों ? कैसे ? इसकी कोई जरूरत नहीं है। यह तो एक भाषा का अलंकार है और तुम जैसे व्यक्ति के मुँह से नहीं निकलना चाहिए । हिंसात्मक युद्ध

के बाद भी यह आवश्यक नहीं होगा। इसी ढंग से चर्चिल कहा करते थे कि वह हिटलर के साथ क्या करेंगे और नात्सी युद्धापराधियों के मुकदमों की मूर्खता और शैतानी देखो । अपराधियों का मुकदमा करनेवालों में कुछ उतने ही अपराधी हैं।" कई प्रांतों में कांग्रेस ने सरकार बना ली थी और गांधीजी और जयप्रकाश देख रहे थे कि वहाँ किस प्रकार भ्रष्टाचार बढ़ रहा है।

जिस वेदना ने गांधीजी का अंत किया, उसके मार्ग पर उनके पैर पड़ने लगे थे।

तीसरे पहर गांधीजी ने मुझे एक घंटे से अधिक समय दिया। अमरीका के हब्शियों की समस्या पर कुछ देर बातचीत के बाद मैंने कहा-"भारत में आने के बाद मुझे यहाँ कुछ समझदार लोग मिले हैं।"

गांधीजी-"अच्छा ! तुम्हें मिले हैं? बहुत नहीं होंगे !"

मैं-"आप तथा दो-तीन और |" वह हँसने लगे। "कुछ तो कहते हैं कि हिन्दू-मुस्लिम संबंध सुधरे हैं, कुछ कहते हैं कि बिगड़े हैं ।"

गांधीजी-"जिन्ना तथा अन्य मुस्लिम नेता एक समय कांग्रेसी थे। उन्होंने कांग्रेस छोड़ दी, क्योंकि मुसलमानों के प्रति हिन्दुओं का कृपालुओं जैसा बर्ताव उन्हें खटकता था। मुसलमान लोग धर्मांध हैं, परंतु धर्मांधता का जवाब धर्मांधता से नहीं दिया जा सकता। अशिष्ट व्यवहार चिढ़ानेवाला होता है। कांग्रेस के प्रतिभाशाली मुसलमान उससे तंग आ गए । उन्हें हिन्दुओं में मनुष्यों का भाई-चारा नहीं मिला। वह कहते हैं कि इस्लाम मनुष्यों का भाई-चारा है। वास्तव में वह मुसलमानों का भाई-चारा है | कांग्रेस और लीग के बीच दरार पैदा करने में हिन्दू भेद-भाव ने हिस्सा लिया है। जिन्ना प्रतिभाशाली हैं, लेकिन उनकी प्रतिभा में खोट है | वह अपने-आपको पैगंबर समझते हैं।"

मैं-"वह एक वकील हैं।"

गांधीजी-"तुम उनके साथ अन्याय करते हो। 1944 में उनके साथ अठारह दिन की अपनी बातचीत की मैं तुम्हें साक्षी देता हूँ । वह सचमुच अपने को इस्लाम का त्राता मानते हैं।"

मैं-"मुसलमान लोग प्रकृति और साहस के धनी होते हैं। वे सहृदय और मैत्रीपूर्ण होते हैं ।"

गांधीजी-"हाँ |"

मैं-"परंतु जिन्ना रूखे हैं। वह छिछले आदमी हैं | वह तो मामले की वकालत करते हैं, ध्येय का प्रचार नहीं ।"

गांधीजी-"मैं मानता हूँ कि वह छिछले आदमी हैं। लेकिन मैं उन्हें फरेबी नहीं समझता। उन्होंने भोले-भाले मुसलमानों पर जादू डाल रखा है।"

मैं-"हिन्दू छापवाली कांग्रेस मुसलमानों को कैसे अपना सकती है?"

गांधीजी-"पल-भर में-अछूतों को समानता देकर |"

मैं-"सुना है कि हिन्दुओं और मुसलमानों का आपसी संपर्क कम हो रहा है|"

गांधीजी-"ऊपर के स्तर का राजनैतिक संपर्क टूटता जा रहा है |"

मैं-"1942 में जिन्ना ने मुझसे कहा था कि आप स्वाधीनता नहीं चाहते ।"

गांधीजी-"तो मैं क्या चाहता हूँ?"

मैं-"उनका कहना था कि आप हिन्दू-राज चाहते हैं।"

गांधीजी-"वह बिलकुल गलत बात कहते हैं | इसमें जरा भी तथ्य नहीं है। मैं मुसलमान हूँ, हिन्दू हूँ, बौद्ध हूँ, ईसाई हूँ, यहूदी हूँ, पारसी हूँ। अगर वह कहते हैं कि मैं हिन्दू-राज चाहता हूँ, तो वह मुझे जानते ही नहीं | उनकी इस बात में सचाई नहीं है। वह मानो एक क्षुद्र वकील की तरह बात कर रहे हों। ऐसे आरोप कोई सनकी ही लगा सकता है |मेरा विश्वास है कि मुस्लिम लीग संविधान सभा में शामिल हो जाएगी | परंतु सिखों ने इन्कार कर दिया है। सिख लोग यहूदियों की तरह अड़ियल होते हैं।"

मैं-"आप भी अड़ियल हैं।"

गांधीजी-"मैं ?"

मैं-"आप अड़ियल आदमी हैं। आप जिद्दी हैं। आप हर चीज अपने ढंग की चाहते हैं। आप मृदु स्वभाव के अधिनायक हैं।"

इस पर सब लोग हँस पड़े और गांधीजी भी इस हँसी में खुलकर शामिल हुए।

गांधीजी-"अधिनायक ? मेरे पास तो कोई सत्ता नहीं है। मैं कांग्रेस को नहीं बदल पाया | उसके विरुद्ध शिकायतों का मेरे पास एक पुलिन्दा है।"

मैं-"अठारह दिन जिन्ना के साथ रहकर आपको क्या पता लगा?"

गांधीजी-"मुझे पता लगा कि वह सनकी हैं। सनकी आदमी कभी-कभी सनक छोड़ देता है और समझदार बन जाता है। उनके साथ बातचीत का मुझे कभी अफसोस नहीं है। मैं इतना जिद्दी कभी नहीं रहा कि सीखने से इन्कार कर दूँ। मेरी हरएक सफलता एक सीढ़ी की तरह हुई है। जिन्ना के साथ मैं इसलिए आगे नहीं बढ़ सका कि वह सनकी हैं, परंतु बातचीत के समय उनके बर्ताव ने मुसलमानों के दिलों में भी उनके लिए नफरत पैदा कर दी है।"

मैं-"तो फिर हल क्या है?"

गांधीजी-"जिन्ना को अभी पच्चीस वर्ष और काम करना है |"

मैं-"वह तो आप ही के बराबर जीना चाहते हैं।"

गांधीजी-"तो जबतक मैं 125 वर्ष का न होऊँ, तबतक उन्हें जीना चाहिए।"

मैं-"फिर आपका न मरना अच्छा है, वरना वह मर जाएँगे और आपको हत्या लगेगी। (हँसी) वह आपकी मृत्यु के दूसरे ही दिन मर जाएँगे।"

गांधीजी-"जिन्ना पथ-भ्रष्ट नहीं किए जा सकते और वह बहादुर हैं | अगर जिन्ना संविधान सभा में नहीं जाएँ, तो अंग्रेजों को दृढ़ रहना चाहिए और हमको अकेले ही योजना को कार्यान्वित करने देना चाहिए। अंग्रेजों को जिन्ना की जबरदस्ती के आगे नहीं झुकना चाहिए । चर्चिल हिटलर के आगे नहीं झुका ।"

18 जुलाई को महात्माजी से मेरी अंतिम बातें हुईं। मैंने कहा-"अगर कार्य-समिति आपके 'अंधेरे में टटोलने' के अनुसार, अथवा आपके शब्दों में आपकी अंतःप्रेरणा के अनुसार चली होती, तो उसने संविधान-सभावाली केबिनेट मिशन-योजना ठुकरा दी होती?"

गांधीजी-"हाँ, परंतु मैंने यह नहीं होने दिया।"

मैं-"आपका मतलब है कि आपने इसरार नहीं किया |"

गांधीजी-"इससे भी अधिक | मैंने उन्हें अपनी अंतःप्रेरणा के अनुसार चलने से रोक दिया, जब तक कि उन्हें भी ऐसा न लगे। इसकी कल्पना करने से कोई लाभ नहीं है कि क्या हुआ होता। तथ्य यह है कि डा० राजेन्द्रप्रसाद ने मुझसे पूछा-'क्या आपकी अंतःप्रेरणा इतनी दूर जाती है कि चाहे हम उसे समझें या न समझें, आप हमको दूरवर्ती प्रस्ताव स्वीकार करने से रोकेंगे?' मैंने उत्तर दिया-"नहीं, आप अपनी बुद्धि के अनुसार चलिए, क्योंकि मेरी खुद की बुद्धि मेरी अंत:प्रेरणा का समर्थन नहीं करती। मेरी अंतःप्रेरणा मेरी बुद्धि से विद्रोह करती है। मैंने अपनी आशंकाएँ आपके सामने रख दी हैं, क्योंकि मैं आपको धोखा नहीं देना चाहता। जबतक मेरी बुद्धि सहारा न दे, तबतक मैं खुद अपनी अंतःप्रेरणा के अनुसार नहीं चलता |"

मैं-"परंतु आपने तो मुझसे कहा था कि जब कभी अंतःप्रेरणा आवाज देती है, तो आप उसके अनुसार चलते हैं, जैसाकि आप उपवासों के पहले किया करते हैं |

गांधीजी-"हाँ, परंतु इन अवसरों पर भी उपवास शुरू होने से पहले मेरी बुद्धि मौजूद रहती है।"

मैं-"फिर आप वर्तमान राजनैतिक स्थिति में अपनी अंतःप्रेरणा को क्यों घुसेड़ते हैं?"

गांधीजी-"मैंने ऐसा नहीं किया। लेकिन मैं वफादार रहा | मैं केबिनेट मिशन की ईमानदारी में अपनी आस्था बनाए रखना चाहता था। इसलिए मैंने केबिनेट मिशन से कह दिया कि मेरी अंतःप्रेरणा को आशंकाएँ हैं ।"

मैं-"क्या इसका यह अर्थ है कि केबिनेट-मिशन के इरादे सच्चे थे?"

गांधीजी-"शुरू में मैंने उन्हें जो प्रमाण-पत्र दिया था, उसका एक शब्द भी वापस नहीं लेना चाहता |"

मैं-"क्या आप इसलिए संविधान समर्थक बन गए हैं कि आपको हिंसा का भय है?

गांधीजी-"मेरा कहना है कि हमको संविधान सभा में जाकर उसका उपयोग करना चाहिए | अगर अंग्रेज बेईमान हैं, तो उनकी पोल खुल जाएगी। हानि हमारी नहीं होगी, उनकी तथा मानवता की होगी |"

मैं-"मेरा खयाल है कि आप आजाद हिन्द फौज तथा सुभाषचंद्र बोस की भावना से डरते हैं। वह चारों ओर फैल रही हैं। उसने नौजवानों का चित्त मोह लिया है और आप इसे जानते हैं और उनके चित्त की इस अवस्था से डरते हैं। नौजवान पीढ़ी भारत के लिए दीवानी है।"

गांधीजी-"उसने देश के मन को नहीं मोहा है। यह अतिशयोक्ति है। हाँ, नौजवानों तथा स्त्रियों का एक वर्ग उनका अनुगामी है। सर्वशक्तिमान परमात्मा ने हिन्दुओं को दयालुता विशेष रूप से दी है। 'दयाल हिन्दू' शब्दों का प्रयोग निन्दा के तौर पर किया जाता है। परंतु मैं इन्हें सम्मान के शब्दों की तरह लेता हूँ, जैसे चर्चिल के शब्द 'नंगा फकीर' | मैंने तो इन शब्दों को प्रशंसासूचक मान लिया और इसके बारे में चर्चिल को लिखा। मैंने चर्चिल से कहा कि मैं तो नंगा फकीर बनना चाहूँगा, परंतु अभी तक बन नहीं पाया हूँ।"

मैं-"क्या चर्चिल ने कोई जवाब दिया?"

गांधीजी-"हाँ, उन्होंने वाइसराय की मार्फत शिष्टतापूर्वक मेरे पत्र की प्राप्ति स्वीकार की |...खैर तथाकथित सभ्यता से अछूती और अभ्रष्ट, अस्वाभाविकता रहित स्त्रियाँ मेरे साथ हैं।"

मैं-"किन्तु आप बोस के प्रशंसक हैं। आपका विश्वास है कि वह जीवित हैं |"

गांधीजी-"बोस-संबंधित कथाओं को मैं प्रोत्साहन नहीं देता | मैं उनसे सहमत नहीं था। अब मुझे विश्वास नहीं है कि वह जीवित है।"

मैं-“मेरी दलील यह है कि बोस जर्मनी और जापान गए। ये दोनों फासिस्त देश हैं। अगर वह फासिस्तवाद के समर्थक थे, तो आपको उनसे कोई सहानुभूति नहीं हो सकती | अगर वह देशभक्त थे और समझते थे कि जर्मनी और जापान भारत को बचा लेंगे, तो वह मूर्ख थे और राजनीतिज्ञों का मूर्ख होना बुरा है।”

गांधीजी-“मालूम होता है, राजनीतिज्ञों के बारे में तुम्हारी बहुत अच्छी राय है। अधिकतर राजनीतिज्ञ मूर्ख होते हैं ।मुझे भारी दिक्कतों के विरुद्ध काम करना पड़ रहा है।हिंसा की क्रियाशीलता प्रवृत्ति फैली हुई है, जिसका मुकाबला करना है और मैं अपने ढंग से चल रहा हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह एक ऐसा अवशेष है, जो समय पाकर अपने-आप खत्म हो जायगा। यह जिन्दा नहीं रह सकता | यह भारत की भावना के प्रतिकूल तो है ही। लेकिन बातों से क्या फायदा? मैं तो एक रहस्यपूर्ण दैव में विश्वास करता हूँ, जो हमारे भाग्य का विधाता है-आप उसे ईश्वर के नाम से पुकारिए या किसी अन्य नाम से।”

4 / नोआखाली की महान यात्रा

कांग्रेस ने अस्थायी सरकार में शामिल होने से इन्कार कर दिया, क्योंकि जिन्ना के हठ पर लार्ड वेवल ने उन्हें एक पद पर मुसलमान को नामजद करने का अधिकार नहीं दिया। यह सही है कि वेवल ने सार्वजनिक रूप से बतला दिया था कि अंतरिम सरकार की रचना आगे के लिए उदाहरण नहीं मानी जाएगी | कांग्रेस को डर था कि यह मिसाल बन जाएगी और उसने जिन्ना के इस अधिकार को मानने से सख्ती के साथ इन्कार कर दिया कि वह मंत्रिमंडल में कांग्रेसी मुसलमान की नियुक्ति को रोक सकते हैं।

तदनुसार वेवल ने कांग्रेस तथा लीग से अपने-अपने उम्मीदवारों की सूचियाँ भेजने को फिर कहा, परंतु कांग्रेस की इच्छा के अनुसार यह स्पष्ट कर दिया कि कोई भी पक्ष दूसरे पक्ष के मनोनीतों को नहीं रोक सकता | इस पर जिन्ना ने अस्थायी सरकार में सम्मिलित होने का निमंत्रण अस्वीकार कर दिया | 12 अगस्त 1946 को वेवल ने नेहरू को सरकार बनाने का कार्य-भार सौंपा | नेहरू ने जो सरकार बनाई, उसमें एक हरिजन-सहित छः कांग्रेसी हिन्दू, एक ईसाई, एक सिख, एक पारसी और दो मुसलमान, जो मुस्लिम लीग के नहीं थे, लिए | वेवल ने घोषणा की कि मुस्लिम लीग चाहे तो अपने पाँच सदस्यों के नाम अस्थायी सरकार के लिए दे सकती है। जिन्ना ने कोई ध्यान नहीं दिया।

मुस्लिम लीग ने 16 अगस्त को "सीधी कार्रवाई का दिन" मनाया। कलकत्ता में चार दिन भीषण दंगे हुए।

24 अगस्त की शाम को शिमला में सर शफातअहमद खाँ की छुरों से हत्या कर दी गई | इन्होंने नेहरू की अस्थायी सरकार में शामिल होने के लिए मुस्लिम लीग से इस्तीफा दे दिया था।

2 सितंबर को नेहरू भारत के प्रधानमंत्री बने।

गांधीजी 2 सितंबर को नई दिल्ली की भंगी-बस्ती में थे। उस दिन वह बहुत सबेरे उठे और नई सरकार के कर्तव्यों के बारे में नेहरू को पत्र लिखा। भारत के इतिहास में यह एक महान पत्र था। अपनी प्रार्थना-सभा में वह शाम को बोले और अंग्रेजों के प्रति अपना आभार प्रदर्शित किया। उनके मन में उल्लास नहीं था। "जल्दी-से-जल्दी आपके हाथ में सारी शक्ति आ जायगी," उन्होंने दर्शकों से वादा किया-"अगर पं. नेहरू-आपके बिना ताज के बादशाह व प्रधान मंत्री—तथा उनके साथी अपने कर्तव्य का पालन करें।" मुसलमान हिन्दुओं के भाई हैं, हालाँकि वह अभी तक सरकार में नहीं हैं और गांधीजी ने कहा कि भाई गुस्से का बदला गुस्से से नहीं देता।

परंतु जिन्ना ने 2 सितंबर को 'मातम का दिन' घोषित कर दिया।

गांधीजी ने इन संकेतों को गलत नहीं पढ़ा | उन्होंने 9 सितंबर को कहा-"अभी तक हम गृह-युद्ध में नहीं फँसे हैं, परंतु उसके नजदीक जा रहे हैं ।" सितंबर भर बंबई में गोलीबारी और छुरेबाजी की घटनाएँ होती रहीं | पंजाब में भी गड़बड़ फैल गई। बंगाल और बिहार मार-काट से थर्रा उठे।

भारत की इस अशांत स्थिति से भयभीत होकर वेवल ने मुस्लिम लीग को नई सरकार में लाने के प्रयत्न दुगुने कर दिए | जिन्ना अंत में राजी हो गए और उन्होंने चार मुस्लिम लीगी सदस्यों को तथा एक अछूत को नियुक्त किया।

दोनों जातियों के बीच लगातार मार-काट के विरुद्ध गांधीजी रोज प्रचार करते थे। उन्होंने कहा-"कुछ लोगों को खुशी है कि हिन्दू अब इतने बलवान हो गए हैं कि उन्हें मारने की कोशिश करनेवालों को वे बदले में मार सकते हैं। मैं तो इसे अच्छा समझूँगा कि हिन्दू लोग बिना बदला लिए मर जाएँ।"

बहुत-से कांग्रेसी मंत्री और उनके सहायक तथा प्रांतीय अधिकारी हरिजन बस्ती में गांधीजी की कुटिया की सलाह लेने आते थे। गांधीजी 'महा-प्रधान-मंत्री' थे।

हिन्दू-मुस्लिम फिसादों की बढ़ती हुई आग गांधीजी को चैन नहीं लेने दे रही थी, परंतु मानव-जीवों में उनकी आस्था बनी हुई थी।

पागल बने हुए मनुष्यों में अब गांधीजी देवत्व की खोज करने लगे।

अक्तूबर में पूर्वी बंगाल के नोआखाली तथा टिपरा देहाती क्षेत्रों में हिन्दुओं पर मुसलमानों के व्यापक हमले हुए | इनसे महात्माजी इतने भयभीत हुए, जितने शहरी दंगों से नहीं हुए थे। अभी तक भारत के गाँवों में दोनों जातियों के लोग मेल-जोल से रहते थे। अब यदि जातीय विद्वेष देहात में भी फैल गया, तो राष्ट्र का सत्यानाश हो जाएगा। गांधीजी ने गड़बड़ के स्थानों पर जाने का निश्चय किया। मित्रों ने उनका इरादा बदलने की कोशिश की, परंतु उन्होंने जवाब दिया-"मैं तो यह जानता हूँ कि जबतक मैं वहाँ नहीं पहुँचूँगा, तबतक मुझे शांति नहीं मिलेगी |" उन्होंने लोगों से कहा कि स्टेशन पर उन्हें विदा करने न आएँ।

परंतु लोगों की भीड़ पहुँच गई। सरकार ने उनके लिए स्पेशल गाड़ी का इंतजाम कर दिया। रास्ते में हरएक बड़े स्टेशन पर विशाल जन-समुदायों नें गाड़ी को घेर लिया। इस हल्ले-गुल्ले से थके-थकाए गांधीजी पाँच घंटा देर से कलकत्ता पहुँचे |

जिस दिन गांधीजी दिल्ली से रवाना हुए, उस दिन कलकत्ता में सांप्रदायिक दंगे में बत्तीस आदमी मारे गए। कलकत्ता पहुँचने के दूसरे दिन गांधीजी औपचारिक रूप से बंगाल के गवर्नर सर फ्रेडरिक बरोज़ से मिले और फिर बंगाल के प्रधान मंत्री श्री हसन सुहरावर्दी के यहाँ काफी देर ठहरे। दूसरे दिन, 31 अक्तूबर को, उन्होंने सुहरावर्दी के साथ कलकत्ता की उजड़ी हुई गलियों का दौरा किया। मनुष्य को पशुओं से भी नीचा गिरानेवाले सामूहिक पागलपन की निराशापूर्ण भावना ने गांधीजी को अभिभूत कर दिया, परंतु फिर भी वह आशावादी बने रहे।

अब वह नोआखाली जा रहे थे, जहाँ मुसलमानों ने हिन्दुओं की हत्याएँ की थीं, हिन्दुओं को जबरदस्ती मुसलमान बनाया था, हिन्दू स्त्रियों पर बलात्कार किया था तथा हिन्दू घरों और मंदिरों को जला डाला था। गांधीजी ने कहा था-"यह त्रस्त नारीत्व की पुकार है, जो मुझे

बरबस नोआखाली बुला रही है |···जब तक झगड़े की अंतिम चिनगारियाँ बुझ न जाएँ, तब तक मैं बंगाल छोड़कर नहीं जाऊँगा।" यदि जरूरत पड़े, तो मैं यहाँ मर जाऊँगा, परंतु असफलता स्वीकार नहीं करूँगा।"

प्रार्थना-सभा में गांधीजी के इन शब्दों पर कितने ही श्रोताओं की आँखों में आँसू आ गए।

परंतु दुःखी महात्माजी के लिए अभी और भी संताप बाकी थे। नोआखाली की घटनाओं ने बिहार में हिन्दुओं का रोष भड़का दिया था। 25 अक्तूबर को 'नोआखाली दिवस' मनाया गया। अगले सप्ताह में लंदन टाइम्स के दिल्ली-स्थित संवाददाता के विवरण के अनुसार, दंगइयों द्वारा 4580 आदमी मार डाले गए। गांधीजी ने बाद में यह संख्या दस हजार से ऊपर कूती थी। मरनेवालों में अधिक संख्या मुसलमानों की थी।

बिहार के अत्याचारों के समाचार कलकत्ता में गांधीजी के पास पहुँचे और वह बहुत दुःखी हुए। उन्होंने बिहारियों के नाम एक संदेश भेजा-"मेरे स्वप्नों के बिहार ने उन्हें झूठा कर दिया है। ऐसा न हो कि जिस बिहार ने कांग्रेस की प्रतिष्ठा बढ़ाने में इतना काम किया है, वही सबसे पहले उसकी कब्र खोदनेवाला बन जाय।"

इसके प्रायश्चित-स्वरूप गांधीजी ने घोषणा की कि वह 'कम-से-कम भोजन करेंगे' और 'यदि पथभ्रष्ट बिहारी लोग नया अध्याय न शुरू करेंगे', तो यह 'आमरण उपवास' बन जाएगा।

बिहार की भीषणताओं के फलस्वरूप बंगाल में प्रतिशोध की आशंका से नेहरू और पटेल तथा लियाकतअली खाँ और अब्दुर्रव निश्तर हवाई जहाज में दिल्ली से कलकत्ता जा पहुँचे। लार्ड वेवल भी आ गए। डर था कि ईद के त्यौहार पर मुसलमानों का धार्मिक जोश न भड़क उठे।

कलकत्ता से चारों मंत्री बिहार गए | नेहरू ने जो कुछ देखा तथा सुना, उससे क्रोधित होकर उन्होंने धमकी दी कि अगर हिन्दुओं ने मार-काट बंद न की, तो वह बिहार पर हवाई

जहाजों से बम गिरवा देंगे। परंतु गांधीजी ने आलोचना की-"यह अंग्रेजों का तरीका है। फौज की सहायता से दंगों को दबाकर वे लोग भारत आजादी को दबा देंगे।"

नेहरू ने घोषणा की कि जब तक बिहार में शांति स्थापित नहीं हो जाएगी, वह वहाँ से नहीं जाएँगे। 5 नवंबर को गांधीजी ने उन्हें एक पत्र भेजा, जिसमें लिखा- "बिहार के समाचारों ने मुझे झकझोर डाला है।...जो सुनाई दे रहा है, उसका आधा भी सत्य है, तो उससे यह पता चलता है कि बिहार मानवता को भूल गया है।...मेरी आंतरिक पुकार कहती है-'इस प्रकार के विवेक शून्य हत्याकांड को देखने के लिए तुम जीवित मत रहो |...क्या इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम्हारे दिन पूरे हो गए हैं?' यह तर्क मुझे बेरोक उपवास की ओर ले जा रहा है।"

कलकत्ता में तथा अन्यत्र ईद शांतिपूर्वक गुजर गई | महात्माजी को बिहार से संतोषप्रद समाचार मिले। उनका कर्तव्य नोआखाली में था, जहाँ मुसलमानों की मार-काट के सामने हिन्दू भाग रहे थे। भय आजादी और लोकतंत्र का शत्रु है | अहिंसात्मक बहादुरी हिंसा के विष को मारनेवाली है। वह नोआखाली के हिन्दुओं के सामने बहादुर बनकर उन्हें बहादुरी का पाठ सिखाएँगे। इतने ही महत्त्व की बात यह थी कि गांधीजी जानना चाहते थे कि वह मुसलमानों पर भी असर डाल सकते हैं या नहीं। यदि अहिंसा, अ-प्रतिशोध तथा भाईचारे की भावना मुसलमानों तक नहीं पहुँच सकती, तो आजाद, संयुक्त भारत कैसे बन सकता है?

गांधीजी ने कहा-"मान लो, मुझे कोई मार डालता है, तो बदले में किसी दुसरे को मारकर तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा। और अगर तुम इस बारे में सोचो, तो पता चलेगा गांधी को सिवा गांधी के कौन मार सकता है? आत्मा को कोई भी नष्ट नहीं कर सकता ?"

क्या वह सोचते थे कि नोआखाली में कोई मुसलमान उन्हें मार डालेगा? क्या उन्हें इस बात का भय था कि बदले की भावना से हिन्दू सारे देश में मुसलमानों को कत्ल कर डालेंगे?

नोआखाली जाने की तड़प इतनी जोरदार थी कि रोकी नहीं जा सकती थी |

गांधीजी 6 नवंबर को कलकत्ता से नोआखाली के लिए रवाना हुए। नोआखाली भारत का सबसे दुर्गम भाग है। वह गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों के जलावरुद्ध मुहाने की भूमि में स्थित है। यातायात और दैनिक जीवन संबंधी वहाँ भारी कठिनाइयाँ हैं | बहुत-से गाँवों में नावों से पहुँचा जा सकता है। जिले की सड़कों को बैलगाड़ी भी पार नहीं कर सकती | वह 40 मील का भू-भाग है, जिसमें 25 लाख व्यक्ति हैं; 80 प्रतिशत मुसलमान | गृह-युद्ध और धार्मिक कटुता से उसके टुकड़े-टुकड़े हो गए थे | कुछ गाँव तो विध्वंस पड़े थे। गांधीजी ने इस दूरस्थ क्षेत्र द्वारा प्रस्तुत भौतिक या आध्यात्मिक चुनौती को जान-बूझकर स्वीकार किया था | उन्होंने महीनों धीरज रखा। 5 दिसंबर को उन्होंने नोआखाली से लिखा-"मेरा वर्तमान मिशन मेरे जीवन का बड़ा ही कठिन और जटिल मिशन है | मैं हर प्रकार की संभावना के लिए उद्यत हूँ। 'करो या मरो' को यहाँ कसौटी पर चढ़ाना है। 'करने' का यहाँ अर्थ है कि हिन्दू और मुसलमान शांति और सद्भाव के साथ मिल-जुलकर रहें। इस प्रयत्न में मैं अपनी जान की बाजी लगा दूँगा।"

गांधीजी के साथ बंगाल के कई मंत्री और गांधीजी के सचिव तथा सहायक नोआखाली तक गए | गांधीजी ने अपने शिष्यों को गाँवों में बिखेर दिया और अपने साथ प्रो. निर्मलकुमार बसु, परशुराम तथा मनु गांधी को रखा।

उन्होंने कहा कि अपना खाना वह स्वयं पकाएँगे और अपनी मालिश स्वयं करेंगे। मित्रों ने विरोध करते हुए कहा कि मुसलमानों से सुरक्षा के लिए उनके साथ पुलिस रहनी चाहिए। उन्होंने कहा कि उनकी डाक्टर सुशीला नैयर भी उनके पास रहनी चाहिए। लेकिन नहीं, वह, उनके भाई प्यारेलाल, सुचेता कृपालानी, आभा और कनु, सब एक-एक गाँव में बैठ जाएँ; ऐसे गाँव में, जो प्रायः विरोधी और एकांत में थे और अपने प्रेम के उदाहरण से वहाँ की हिंसा को निर्मूल करें। प्यारेलाल मलेरिया ज्वर में पड़े थे। उन्होंने गांधीजी को एक पुर्जा भेजा कि क्या उनकी देखभाल के लिए सुशीला उनके पास आ सकती है? गांधीजी ने उत्तर दिया-"जो गाँवों में जा रहे हैं, उन्हें इस इरादे से जाना चाहिए कि जीवित रहेंगे या मर जाएँगे। अगर वे बीमार पड़ते हैं, तो उनको वहीं अच्छा होना है या वहीं मरना है। तभी जाने

का कुछ अर्थ होगा। व्यवहार में इसका मतलब यह होता है कि उन्हें गाँव के उपचारों या प्रकृति के पंच-तत्त्वों से संतुष्ट रहना चाहिए। डा० सुशीला के पास देख-भाल को अपना गाँव है। उसकी सेवाएँ इस समय हमारे दल सदस्यों के लिए नहीं हैं। वे पूर्वी बंगाल के ग्रामवासियों के लिए पहले ही से गिरवी रखी जा चुकी हैं।" वह स्वयं अपने पर इसी प्रकार का निर्मम और सख्त अनुशासन लागू कर रहे थे।

नोआखाली की यात्रा में गांधीजी उनचास गाँवों में गए। वह सुबह चार बजे उठते, तीन-चार मील नंगे पाँव चलकर एक गाँव में पहुँचते, वहाँ लोगों के साथ बातचीत तथा निरंतर प्रार्थना करते हुए, एक या दो या तीन दिन ठहरते, फिर अपने गाँव को चल पड़ते। गाँव में पहुँचकर वह किसी ग्रामीण की झोंपड़ी में, और हो सकता तो किसी मुसलमान की झोंपड़ी में, जाते और कहते कि वह उनको तथा उनके साथियों को अपने यहाँ ठहरा लें। दुत्कारे जाने पर वह आगे की झोंपड़ी में कोशिश करते। वह स्थानीय फलों तथा सब्जियों पर, और मिल जाता तो बकरी के दूध पर, निर्वाह करते। 7 नवंबर 1946 से 2 मार्च 1947 तक उनका यही जीवन रहा। उनकी आयु का सत्तरवाँ वर्ष अभी पूरा हुआ था।

रास्ता चलने में कठिनाई होती-थी | उनके पाँवों में बिवाइयाँ फट गईं। परंतु वह चप्पल बहुत कम पहनते थे। नोआखाली का झगड़ा इसलिए पैदा हुआ कि वह लोगों का अहिंसा के द्वारा इलाज करने में सफल नहीं हुए थे। इसलिए यह उनकी प्रायश्चित की यात्रा थी और प्रायश्चित करनेवाला यात्री जूते नहीं पहनता | विरोधी तत्त्व कभी-कभी उनके रास्ते में काँच के टुकड़े, काँटे और मैला बिखेर देते | वह उन्हें दोष न देते। उनके नेताओं ने उन्हें भरमा दिया था। कितने ही स्थानों पर दलदल के ऊपर बने हुए पुलों को पार करना पड़ता था। ये पुल बाँसों की दस-पंद्रह फुट ऊँची बैसाखियों पर चार-पाँच मोटे बाँसों को बांधकर बनाए हुए होते थे। इन भौंडे, डावाँडोल पुलों पर पकड़ने के लिए एक ओर बांस की हत्थी लगी रहती थी, परंतु यह भी किसी पुल में होती थी, किसी में नहीं। एक बार गांधीजी का पैर फिसल गया और वह नीचे दलदल में गिर पड़े होते, परंतु उन्होंने फुर्ती से अपने-

आपको संभाल लिया। ऐसे पुलों को कुशलता से और बेखतरे पार करने के लिए उन्होंने नीचे पुलों पर चलने का अभ्यास किया।

हिन्दू स्त्रियों का धर्म बदलने के लिए मुसलमान लोग उनकी चूड़ियाँ फोड़ डालते थे और उनके माथे का सौभाग्य-सिन्दूर हटा देते थे। हिन्दू पुरुषों को दाढ़ियाँ रखने के लिए, मुसलमानों की तरह तहमद बाँधने के लिए और कुरान पढ़ने के लिए मजबूर किया गया। मूर्तियाँ तोड़ डाली गईं और हिन्दू मंदिर भ्रष्ट कर दिए गए | सबसे बुरी बात यह की गई कि हिन्दुओं से उनकी गौएँ कटवाई गईं और सबको मांस खिलाया गया।

शुरू में गांधीजी के कुछ सहयोगियों ने सलाह दी कि वह हिन्दुओं पर जोर डालें कि वे संकटग्रस्त क्षेत्रों को छोड़कर दूसरे प्रांतों में जा बसें। गांधीजी ने इस प्रकार की पराजय-भावना को बड़े ताव के साथ अस्वीकार कर दिया। आबादियों की अदला-बदली करना यह मानने के समान होगा कि भारत का संयुक्त रहना असंभव है।

नोआखाली की समस्या का अध्ययन करने के बाद गांधीजी ने निश्चय किया कि प्रत्येक गाँव में एक ऐसा मुसलमान और एक हिन्दू छाँटा जाय, जो गाँव के सारे निवासियों की सुरक्षा की गारंटी कर सकें और आवश्यकता पड़े, तो उनकी रक्षा के लिए जान भी दे दें। इस उद्देश्य से उन्होंने दोनों संप्रदायों के लोगों से बातें कीं | एक बार वह झोंपड़ी में फर्श पर मुसलमानों के बीच बैठे हुए अहिंसा की खूबियों पर व्याख्यान दे रहे थे। सुचेता कृपालानी ने महात्माजी को एक पर्चा दिया, जिसमें लिखा था कि उनके दाहिनी ओर बैठे हुए आदमी ने हाल के दंगों में कई हिन्दुओं की हत्याएँ की थीं। गांधीजी धीरे-से मुसकराए और आगे बोलते रहे। या तो हत्यारे को फाँसी पर चढ़ा दो-और गांधीजी का फाँसी में विश्वास नहीं था-अन्यथा उसे दयालुतापूर्वक ठीक करने का प्रयत्न करो | अगर तुम उसे जेल में डालो, तो दूसरे आ जाएँगे। परंतु गांधीजी जानते थे कि उन्हें एक सामाजिक रोग का इलाज करना है, एक या अधिक व्यक्तियों का सफाया कर देने से यह रोग मिटनेवाला नहीं था। इसलिए गांधीजी उन्हें क्षमा कर देते थे और उनसे कह भी देते थे और हिन्दुओं से भी कहते कि

उन्हें क्षमा कर दें | वह उनसे कहते कि वह स्वयं अपराधी हैं, क्योंकि वह हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य दूर करने में असफल हुए।

यह दुनिया ऐसे ही वैमनस्य से भरी हुई है। "लेकिन मैं तुमसे कहता हूँ, अपने दुश्मन को प्यार करो, जो तुम्हें कोसें, उन्हें आशीर्वाद दो, जो तुम्हें घृणा करें, उनकी भलाई करो और जो तुम्हारे साथ बुरा व्यवहार करें, तुम्हारा हनन करें, उनके लिए प्रार्थना करो । क्योंकि जो तुम्हें प्यार करते हैं, उन्हीं को प्यार करोगे तो उसमें तारीफ क्या हुई!" यह थी ईसा की सिखावन। गांधीजी ने उस पर अमल किया।

एक गाँव में गांधीजी ने अपनी शिष्या अमतुस सलाम को भेजा था। उन्होंने देखा कि इस गाँव के मुसलमान अपने हिन्दू पड़ोसियों के साथ अभी तक दुर्व्यवहार कर रहे हैं। फिलिप्स टैलबॉट लिखते हैं-"गांधी परंपरा के अनुसार अमतुस सलाम ने निश्चय किया कि जबतक मुसलमान लोग एक हिन्दू के घर से लूटी हुई बलि की तलवार नहीं लौटाएँगें, तब तक वह खाना नहीं खाएँगी | तलवार तो मिली नहीं, शायद वह किसी पोखर में फेंक दी गई थी। जो भी हुआ हो, जब अमतुस सलाम के अनशन के पच्चीसवें दिन गांधीजी उस गाँव में पहुँचे, तो वहाँ के घबराए हुए मुसलमान निवासी कोई भी बात मानने के लिए तैयार थे। कई घंटों की चर्चाओं के बाद गांधीजी ने गाँव के नेताओं से यह प्रतिज्ञा भरवा ली कि वह फिर कभी हिंदुओं को नहीं सताएँगे।"

गांधीजी और उनके सहयोगी बड़ी प्रतिकूल परिस्थितियों में काम कर रहे थे। यात्रा के शुरू में उनके प्रार्थना-सभाओं में मुसलमान लोग खूब जमा हो जाते थे, परंतु लीगी नेताओं ने मुसलमानों के इस आचरण को पसंद नहीं किया। मुल्लाओं ने इसके खिलाफ फतवा दे दिया। उन्होंने आरोप लगाया कि गांधीजी ईमानवालों को झूठी कसमें खिला रहे हैं। गांधीजी के प्रति मुसलमानों का आकर्षण था, पर न तो इसे लीगी नेता मुसलमान पसंद करते थे और न धर्मांध मुसलमान।

एक मुलाकात में गांधीजी ने कहा था--"मैंने अपने लोगों से कह दिया है कि फौज तथा पुलिस की मदद पर निर्भर न रहे। तुम्हें लोकतंत्र स्थापित करना है और फौज तथा पुलिस

पर निर्भरता लोकतंत्र के साथ मेल नहीं खाती |" वह लोगों के दिमाग बदलकर उनमें सुरक्षा की भावना पैदा करना चाहते थे। उन्होंने एक मित्र से कहा--"यदि यह बात पूरी हो गई, तो मेरे लिए जीवन की महान विजय होगी। मैं बंगाल से पराजित होकर नहीं लौटना चाहता। अगर आवश्यकता हुई, तो मैं स्वयं हत्यारे के हाथों अपनी जान दे दूँगा।"

कभी-कभी उनके निकटतम सहकर्मी डरते थे कि दूर-दूर के गाँवों में उन अकेलों का न मालूम क्या हाल हो जाय | गांधीजी ने उन्हें हिदायत दी-"तुम लोगों को व्यर्थ खतरे में नहीं पड़ना चाहिए, परंतु स्वाभाविक तौर पर जो कुछ आ पड़े, उसका मुकाबला करना चाहिए|"

6 जनवरी को गांधीजी का मौन-दिवस था और उनका प्रार्थना-प्रवचन श्रोताओं को पढ़कर सुनाया गया। उस दिन वह चंडीपुर में थे और उन्होंने लोगों को अपने वहाँ आने का अभिप्राय बतलाया-"मेरे सामने एक ही उद्देश्य है और वह बिलकुल स्पष्ट है। वह यह कि ईश्वर हिन्दुओं तथा मुसलमानों के हृदयों को शुद्ध करे और दोनों जातियाँ आपसी संदेह तथा भय से मुक्त हो जाएँ। आप लोग इस प्रार्थना में मेरे साथ शरीक हों और कहें कि परमात्मा हम दोनों का है और वह हमें सफलता दे।"

ऐसा करने के लिए उन्हें इतनी दूर से क्यों आना पड़ा?

"मेरा उत्तर है कि अपनी इस यात्रा में मैं अपनी शक्ति-भर ग्रामीणों को यह आश्वासन देना चाहता हूँ कि मेरे हृदय में किसी के लिए तनिक भी दुर्भावना नहीं है। ऐसा मैं उन लोगों के बीच रहकर और घूमकर ही सिद्ध कर सकता हूँ, जो मुझ पर विश्वास करते हैं।

इस गाँव में गांधीजी को खबर मिली कि दंगे के दिनों में जो हिन्दू घर छोड़कर भाग गए थे, उनका लौटकर आना शुरू हो गया है। दूसरी ओर उनकी प्रार्थना-सभा में उपस्थिति कम होने लगी। "लेकिन," अपने व्याख्यान की स्वयं रिपोर्ट करते हुए गांधीजी ने लिखा-"ऐसा होने पर भी कोई कारण नहीं है कि मैं निराश होकर अपने ध्येय को छोड़ दूँ। मैं अपना चर्खा लेकर गाँव-गाँव घूमूँगा। मेरे लिए यह कार्य भगवद्भक्ति है।"

17 जनवरी को पत्रों में प्रकाशित हुआ कि पिछले छः दिनों गांधीजी बीस घंटे रोज काम करते रहे हैं। प्रत्येक दिन उन्होंने अलग-अलग गाँवों में बिताया और उनकी झोंपड़ी में लोगों की भीड़ सलाह, सांत्वना तथा दोष स्वीकार करने के लिए आती रहती थी।

नारायणपुर गाँव में एक मुसलमान ने रात में उन्हें आश्रय दिया और दिन में भोजन । गांधीजी ने उसे सार्वजनिक रूप से धन्यवाद दिया। इस प्रकार का आतिथ्य अब बढ़ता जा रहा था।

इस मुसलमान ने गांधीजी से पूछा कि इतनी कठिन यात्रा का कष्ट उठाने के बजाय वह जिन्ना से समझौता क्यों नहीं कर लेते? उन्होंने जवाब दिया-"नेता को उसके अनुयायी बनाते हैं। पहले लोगों को आपसी शांति स्थापित करनी चाहिए और तब पड़ोसियों के प्रति उनकी शांति-भावना का प्रतिबिम्ब उनके नेताओं पर पड़ेगा | अगर उनका पड़ोसी बीमार पड़ जाय, तो क्या वे कांग्रेस या लीग से पूछने के लिए दौड़ेंगे कि क्या करना चाहिए?"

किसी ने पूछा कि क्या शिक्षा से मदद नहीं मिलेगी ? गांधीजी ने कहा-"शिक्षा ही काफी नहीं है। जर्मन पढ़े-लिखे थे, लेकिन फिर भी वे हिटलर के अधीन हो गए। शिक्षा या ज्ञान से आदमी नहीं बनता, बल्कि शिक्षा असली जीवन का निर्माण करनेवाली होनी चाहिए। अगर वे यह नहीं जानते कि अपने पड़ोसियों के साथ भ्रातृ-भाव से कैसे रहें, तो उन सब बातों का ज्ञान रखने से क्या लाभ?"

अगर सवाल यह हो कि हम अपनी जान दें या हत्यारे की लें, तो आप क्या सलाह देंगे?

गांधीजी ने कहा-"मेरे मन में तनिक भी संदेह नहीं है कि पहला मार्ग श्रेयस्कर होगा ।"

22 जनवरी को पनियाला गाँव की प्रार्थना-सभा में पाँच हजार नर-नारी उपस्थित थे। किसी ने पूछा-"आपकी राय में सांप्रदायिक दंगों का क्या कारण है?"

"दोनों जातियों की मूर्खता," उन्होंने जवाब दिया।

27 जनवरी को पल्ला गाँव में गांधीजी से पूछा गया-"यदि किसी स्त्री पर आक्रमण हो, तो उसे क्या करना चाहिए? क्या वह आत्म-हत्या कर ले?"

गांधीजी ने उत्तर दिया-"जीवन की मेरी योजना में आत्म-समर्पण के लिए जगह नहीं है। स्त्री के लिए आत्म-समर्पण से अच्छा यही है कि वह आत्म-हत्या कर ले।"

5 फरवरी को श्रीनगर में स्वयंसेवकों ने एक मंच बनाया था और ऊपर चंदोबा लगाया था। गांधीजी ने उन्हें लताड़ा-"यह श्रम तथा धन का अपव्यय है |" उन्होंने प्रार्थना-सभा में कहा-"मुझे तो बस एक ऊँचा चबूतरा चाहिए, जिस पर मेरी मांस-रहित हड्डियों को आराम देने के लिए कोई साफ मुलायम चीज बिछी हो |" फिर वह हँस पड़े और उन्होंने अपने बिना दाँत के मसूड़े दिखा दिए।

गांधीजी की सभाओं में अमीर मुसलमानों की अपेक्षा गरीब मुसलमान अधिक आते थे। उन्हें समाचार मिले कि संपत्तिवान और शिक्षित मुसलमान गरीबों को आर्थिक दबाव का डर दिखा रहे थे। इन लोगों ने गांधी-विरोधी पोस्टर भी लगवाए। 20 फरवरी को टिपरा जिले में बिश्काटली गाँव से लौटते समय गांधीजी बाँस के सुंदर वनों तथा नारियल के झुरमुटों में होकर गुजरे। उन्होंने पेड़ों पर पोस्टर लगे हुए देखे, जिन पर लिखा था-"बिहार को याद करो, तुरंत टिपरा छोड़कर चले जाओ।" "आपको बार-बार चेतावनी दी जा चुकी है, फिर भी आप घर-घर घूमने पर तुले हुए हैं। भलाई इसी में है कि चले जाओ।" "जहाँ आपकी जरूरत है, वहाँ जाइए। आपका पाखंड सहन नहीं किया जाएगा। पाकिस्तान मंजूर करो।"

फिर भी प्रार्थना सभाओं में भीड़ बढ़ती ही गई।

एक जगह एक विद्यार्थी ने गांधीजी से पूछा-"क्या यह सच नहीं है कि ईसाईयत और इस्लाम प्रगतिशील धर्म हैं और हिन्दू धर्म स्थिर या प्रतिगामी ?"

गांधीजी बोले-"नहीं, मुझे किसी धर्म में कोई स्पष्ट प्रगति देखने को नहीं मिली । अगर संसार के धर्म प्रगतिशील होते, तो आज जो संसार लड़खड़ा रहा है, वह नहीं होता।"

एक प्रश्नकर्ता ने पूछा-"अगर एक ही खुदा है तो क्या एक ही मजहब नहीं होना चाहिए ?"

"एक पेड़ में लाखों पत्ते होते हैं," गांधीजी ने उत्तर दिया-"जितने नर और नारियाँ हैं, उतने ही मजहब हैं, परंतु सबकी जड़ खुदा में है ।"

गांधीजी को एक लिखित प्रश्न दिया गया-"क्या धार्मिक शिक्षा स्कूलों के राज्य-मान्य पाठ्यक्रम का अंग होना चाहिए ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया-"मैं राज्य-धर्म में विश्वास नहीं करता, भले ही सारे समुदाय का एक ही धर्म हो। राज्य का हस्तक्षेप शायद हमेशा नापसंद किया जाएगा| धर्म तो शुद्ध व्यक्तिगत मामला है ।--धार्मिक संस्थाओं को आंशिक या पूरी राज्य सहायता का भी मैं विरोधी हूँ, क्योंकि मैं जानता हूँ कि जो संस्था या जमात अपनी धार्मिक शिक्षा के लिए धन की व्यवस्था खुद नहीं करती, वह सच्चे धर्म से अनजान है। इसका यह अर्थ नहीं है कि राज्यों के स्कूलों में सदाचार की शिक्षा नहीं दी जाएगी| सदाचार के मूलभूत नियम सब धर्मों में समान हैं।"

मुसलमान आलोचकों ने उन्हें चेतावनी दी कि वह पर्दे का जिक्र न करें। एक हिन्दू की यह हिम्मत कि वह उनकी स्त्रियों से चेहरा उघाड़ने को कहे ! मगर गांधीजी फिर भी यह जिक्र करते रहे।

2 मार्च 1947 को गांधीजी नोआखाली से बिहार के लिए रवाना हो गए। उन्होंने फिर किसी दिन आने का वादा किया। वापस आने का वादा उन्होंने इसलिए किया कि उनका मिशन पूरा नहीं हुआ था।

नोआखाली में गांधीजी का कार्य आंतरिक शांति पुन: स्थापित करना था ताकि भागे हुए हिन्दू वापस आ जाएँ और अपने-आपको सुरक्षित महसूस करें और इसलिए कि मुसलमान उन पर दुबारा हमले न करें। रोग बहुत गहरा था, किन्तु उसके भीषण विस्फोट क्वचित् और क्षणिक थे। इसलिए गांधीजी निराश नहीं हुए थे। वह समझते थे कि यदि स्थानीय समुदायों पर बाहर के राजनैतिक प्रचार का बुरा असर न पड़े तो वे शांति के साथ रह सकते हैं।

नोआखाली की पुकार बराबर आग्रह कर रही थी | गांधीजी दिल्ली से संदेश भेज सकते थे या प्रवचन सुना सकते थे | परंतु वह कर्मयोगी थे। उनका विश्वास था कि करने और कर सकने का भेद ही संसार की अधिकतर समस्याओं को हल करने के लिए काफी है। उन्होंने जीवन-भर इस भेद को मिटाने का प्रयत्न किया। इसमें उन्होंने अपनी सारी शक्ति लगा दी।

5 / पश्चिम को एशिया का संदेश

नवंबर 1946 के उत्तरार्द्ध में इंग्लैंड के प्रधान मंत्री एटली ने एक असाधारण सम्मेलन के लिए नेहरू, बलदेवसिंह, जिन्ना और लियाकतअली को लंदन बुलाया।

संविधान सभा 9 दिसंबर को नई दिल्ली में बैठनेवाली थी। जिन्ना बार-बार घोषित कर चुके थे कि मुस्लिम लीग उसका बहिष्कार करेगी | लंदन सम्मेलन का उद्देश्य मुस्लिम लीग को संविधान सभा में शामिल करना था।

दिसंबर के शुरू में नेहरू, बलदेवसिंह, जिन्ना और लियाकतअली हवाई जहाज से लंदन गए।

लंदन में जिन्ना ने सार्वजनिक रूप से घोषणा की कि वह भारत को हिन्दू राज्य तथा मुस्लिम राज्य में विभाजित करना चाहते हैं।

यद्यपि महान प्रयत्न के बाद एटली कांग्रेस और मुस्लिम लीग को अपने यहाँ बुलाने में सफल हुए, तथापि सम्मेलन मतभेद में ही समाप्त हो गया।

अतः 6 दिसंबर को एटली ने घोषित किया कि अगर मुस्लिम लीग के सहयोग के बिना संविधान सभा ने कोई संविधान स्वीकार किया, तो 'सम्राट की सरकार यह विचार नहीं कर सकती कि ऐसा संविधान देश के किन्हीं अनिच्छुक भागों पर लादा जाय |"

लंदन से वापस लौटते ही नेहरू नोआखाली में श्रीरामपुर गाँव गए और वहाँ 27 दिसंबर 1946 को उन्होंने गांधीजी को लंदन-सम्मेलन की ऐतिहासिक असफलता का समाचार सुनाया।

गांधीजी ने आसाम को और सिखों को गुटों में बाँटनेवाली धाराओं का विरोध करने की सलाह दी | उनकी राय में यह भारत के टुकड़े करने की चाल थी और वह ऐसी किसी बात का समर्थन नहीं कर सकते थे, जिसका फल भारत का विभाजन हो।

परंतु फिर भी कांग्रेस महा-समिति ने इन धाराओं को स्वीकार करने का प्रस्ताव बहुमत से पास कर दिया।

कांग्रेस में गांधीजी का प्रभाव कम हो रहा था।

हिन्दू मुस्लिम मेल-जोल में गांधीजी को अब भी विश्वास था | नेहरू और पटेल जानते थे कि इन धाराओं का अर्थ पाकिस्तान का प्रारंभ है, परंतु गृह-युद्ध के सिवा दूक्षरा चारा न देखकर वे उन्हें मानने पर राजी हो गए | उन्हें आशा थी कि जिन्ना भारत के तीन संघीय राज्यों में विभाजन से संतुष्ट हो जाएँगे और पाकिस्तान की माँग छोड़ देंगे।

प्रधान मंत्री एटली का अगला कदम यह था कि 20 फरवरी 1947 को उन्होंने ब्रिटिश लोक सभा में वक्तव्य दिया कि इंग्लैंड भारत को जून 1948 से पहले छोड़ देगा।

मार्च के पहले सप्ताह में कार्य-समिति ने अपने अधिवेशन में एटली के वक्तव्य को अधिकृत रूप से स्वीकार कर लिया और मुस्लिम लीग को आपसी बातचीत के लिए निमंत्रण दिया | साथ ही समिति ने पंजाब की व्यापक खून-खराबी पर भी ध्यान दिया। वास्तव में उसने पंजाब की घटनाओं को इतना अंधकारपूर्ण और गंभीर समझा कि पंजाब के विभाजन की संभावना मान ली।

इधर पश्चिम की घटनाओं से विकल होकर गांधीजी पूर्वी बंगाल से बिहार आ गए | एक दिन का भी विश्राम लिए बिना उन्होंने इस प्रांत का दौरा शुरू कर दिया |

जहाँ-कही वह गए, वहाँ उन्होंने प्रायश्चित और क्षतिपूर्त्ति का उपदेश दिया | तमाम भगाई हुई मुसलमान स्त्रियाँ लौटा दी जाएँ, लूटी हुई या नष्ट की गई संपत्ति का हर्जाना दिया जाय।

किसी हिन्दू का तार आया, जिसमें महात्माजी को चेतावनी थी कि हिन्दुओं ने जो कुछ किया, उसकी निन्दा न करें | गांधीजी ने प्रार्थना सभा में इस तार का जिक्र किया और कहा-"यदि मैं अपने हिन्दू भाइयों के अथवा किसी भी दुसरे भाई के कुकृत्यों को सहारा देने लगूँ, तो हिन्दू होने के दावे का अधिकारी नहीं रहूँगा |"

किसी जगह बोलने से पहले गांधीजी वहाँ उन मुसलमानों या मुसलमान-परिवारों के बरबाद घरों पर जाते थे, जो मौत या शारीरिक चोट के शिकार हो गए थे | वह बार-बार यही कहते थे कि हिन्दू लोग भागे हुए मुसलामानों को वापस बुलाएँ और उनकी झोंपड़ियाँ दुबारा बनाएँ और उन्हें फिर काम-धंधे से लगाएँ। अत्याचार करनेवाले हिन्दुओं को उन्होंने आत्म-समर्पण के लिए कहा।

जिस दिन गांधीजी मसूड़ी कसबे में पहुँचे, दंगों के पचास भागे हुए अभियुक्तों ने पुलिस को आत्म-समर्पण कर दिया।

जब गांधीजी की कार देहात में होकर गुजरती थी, तो हिन्दुओं की टोलियाँ उन्हें ठहरने का इशारा करती थीं और मुसलमानों की सहायता के लिए थैलियाँ भेंट करती थीं। फौज या पुलिस की मदद के बिना हिंसा को रोकने का यह तरीका था |

22 मार्च 1947 को लार्ड माउंटबैटन अपनी पत्नी एडवीना के साथ नई दिल्ली आ पहुँचे। चौबीस घंटे बाद जिन्ना ने सार्वजनिक रूप से वक्तव्य दिया कि विभाजन ही एकमात्र हल है, वरना "भयंकर विनाश होगा |"

अपने आगमन के चार दिन के भीतर लार्ड माउंटबैटन ने गांधीजी और जिन्ना को वाइसराय भवन आने का निमंत्रण दिया | गांधीजी बिहार के भीतरी भाग में थे। माउंटबैटन ने उन्हें हवाई जहाज से लाने का प्रस्ताव किया। गांधीजी ने कहा कि वह यात्रा के उसी साधन को पसंद करते हैं, जिसका उपयोग करोड़ों जन करते हैं।

31 मार्च को माउंटबैटन ने गांधीजी के साथ सवा दो घंटे मंत्रणा की।

अगले दिन गांधीजी एशियन रिलेशन्ज़ कान्फ्रेन्स में गए, जिसका अधिवेशन नई दिल्ली में 23 मार्च से हो रहा था। उनसे बोलने के लिए कहा गया, तो उन्होंने कहा कि वह दूसरे दिन अंतिम अधिवेशन में भाषण देंगे। परंतु यदि कोई प्रश्न पूछे जाएँ, तो वह उनके उत्तर देने का प्रयत्न करेंगे।

"क्या आप संसार की एकता में विश्वास करते हैं और क्या वर्तमान हालतों में यह सफल हो सकती है?"

"अगर यह संसार एक न हो सके, तो मैं इसमें जीना पसंद नहीं करूँगा," गांधीजी ने उत्तर दिया-"निश्चय ही मैं चाहता हूँ कि यह स्वप्न मेरे जीवन-काल में ही पूरा हो जाय। मैं उम्मीद करता हूँ कि एशियाई देशों से आए सारे प्रतिनिधि एक-विश्व स्थापित करने के लिए पूरा यत्न करेंगे। यदि वे पक्के इरादे से काम करें, तो स्वप्न अवश्य चरितार्थ हो जायगा।"

एक चीनी प्रतिनिधि ने एक स्थायी एशियाई इंस्टीट्यूट के विषय में पूछा। गांधीजी विषय से दूर हट गए और उनके दिमाग में जो मुख्य समस्या थी, उसी की चर्चा की | वह बोले-"मुझे खेद है कि मुझे देश की वर्तमान स्थिति का उल्लेख करना पड़ता है। हम नहीं जानते कि आपस में शांति कैसे रखें |…हम सोचते हैं कि हमें 'जंगल के कानून' अर्थात पाशविक-वृत्तियों का सहारा लेना पड़ेगा। मैं चाहूँगा कि इस प्रकार का अनुभव आप अपने-अपने देशों को न ले जाएँ ।"

उन्होंने एशिया की समस्याओं का भी जिक्र किया। "सारे एशिया के प्रतिनिधि यहाँ इकट्ठे हुए हैं," वह बोले-"क्या इसलिए कि यूरोप या अमरीका या अन्य गैर-एशियाइयों के खिलाफ युद्ध करें? मैं पूरे जोर के साथ कहता हूँ कि नहीं, यह भारत का उद्देश्य नही है।…मैं कहना चाहता था कि इस तरह की कांफ्रेस्स नियमित रूप से होनी चाहिएँ और अगर आप मुझसे पूछें कहाँ, तो वह जगह भारत है |"

दूसरे दिन उन्होंने कांफ्रेन्स में भाषण दिया, जिसका वादा उन्होंने पहले दिन किया था। पहले तो उन्होंने अंग्रेजी में बोलने के लिए क्षमा माँगी। फिर स्वीकार किया कि उन्होंने अपने विचारों को एक सूत्र में बाँधने की आशा की थी, परंतु समय नहीं मिला।

इसके बाद वह बिना सिलसिले के बोलने लगे :

"आप लोग शहर में इकट्ठे हुए हैं, परंतु भारत शहरों में नहीं है। वास्तविक सचाई गाँवों में और गाँवों के अछूतों के घरों में है |…

"पूर्व ने पश्चिम की सांस्कृतिक विजय स्वीकार कर ली है। किन्तु पश्चिम ने प्रारंभ में अपना ज्ञान पूर्व से प्राप्त किया था, ज़रथुस्त, बुद्ध, मूसा, ईसा, मोहम्मद, कृष्ण, राम तथा अन्य छोटे-मोटे दीपकों से।

"सम्मेलन को एशिया का संदेश समझना चाहिए। इसकी जानकारी पश्चिमी चश्मों के द्वारा या परमाणु बम के द्वारा नहीं होगी । यदि आप पश्चिम को कोई संदेश देना चाहते हैं, तो यह संदेश प्रेम का और सत्य का होना चाहिए। मैं केवल आपके दिमाग को आकर्षित नहीं करना चाहता, आपके दिल को पकड़ना चाहता हूँ।

"मुझे आशा है कि एशिया का प्रेम और सत्य का संदेश पश्चिम को जीत लेगा। इस विजय को खुद पश्चिम भी प्रेम के साथ स्वीकार करेगा। आज पश्चिम सुबुद्धि के लिए तड़प रहा है।"

रचना की दृष्टि से यह भाषण ज्यादा अच्छा नहीं था, परंतु इसमें सारभूत ज्ञान तथा गांधाजी का सार भरा हुआ था। अधिकतर प्रतिनिधियों ने शायद इतने सरल तथा हृदयगत शब्द बहुत वर्षों से नहीं सुने थे।

31 मार्च और 12 अप्रैल के बीच माउंटबैटन ने छः बार गांधीजी से मंत्रणा की | व्यस्त वाइसराय के साथ जिन्ना की भी इतनी ही बार बातें हुईं।

लंदन में रायल एंपायर सोसाइटी की कौन्सिल के सामने भाषण देते हुए 6 अक्तूबर 1948 को लार्ड माउंटबैटन ने इन बातचीतों का रहस्य खोला था-"समस्या के वास्तविक हल की बात उठाने से पहले मैं उनसे बातचीत करना और उन्हें समझना चाहता था, उनसे मिलना और वार्त्तालाप करना चाहता था। जब मुझे लगा कि जिन व्यक्तियों से मेरा वास्ता पड़ना है, उन्हें मैं कुछ समझ गया हूँ, तो मैंने उनसे प्रस्तुत समस्या के बारे में बातचीत शुरू की…

"व्यक्तिग रूप से मुझे प्रतीत हो गया था कि, उस समय और अब भी, सही हल भारत को संयुक्त रखना ही होता; परंतु मि. जिन्ना ने शुरू से ही यह स्पष्ट कर दिया कि अपने जीते-जी वह संयुक्त भारत स्वीकार नहीं करेंगे। उन्होंने विभाजन की माँग की, पाकिस्तान के

लिए हठ किया। दूसरी ओर कांग्रेस अविभाजित भारत के पक्ष में थी; परंतु कांग्रेस-नेता गृह-युद्ध बचाने के लिए विभाजन स्वीकार करने पर राजी हो गए | मुझे यकीन था कि मुस्लिम लीग लड़ाई करती।

"जब मैंने जिन्ना से कहा कि विभाजन के लिए कांग्रेस नेताओं का अस्थायी स्वीकृति-पत्र मेरे पास है, तो वह खुशी से उछल पड़े। जब मैंने बताया कि इसका तर्क-संगत परिणाम पंजाब और बंगाल का विभाजन होगा, तो वह भय से चौंक उठे | उन्होंने जोरदार दलीलें दी कि इन प्रांतों का विभाजन क्यों नहीं होना चाहिए | उन्होंने कहा कि इन प्रांतों की राष्ट्रीय विशिष्टताएँ हैं और विभाजन विनाशकारी हो जाएगा। मैंने मान लिया, परंतु साथ ही यह भी बताया कि अब मैं कितना ज्याद महसूस करता हूँ कि सारे भारत के विभाजन पर भी यही दलील लागू होती है। यह बात उन्हें पसंद नहीं आई और वह समझाने लगे कि भारत का विभाजन क्यों होना चाहिए। इस तरह हम खूँटे के चारों ओर चक्कर लगाते रहे और अंत में वह समझ गए कि या तो उन्हें अविभाजित पंजाब और बंगाल के साथ संयुक्त भारत लेना पड़ेगा, या विभाजित पंजाब और बंगाल के साथ विभक्त भारत | अंत में उन्होंने दूसरा हल स्वीकार कर लिया ।"

अप्रैल 1947 में गांधीजी ने किसी प्रकार के विभाजन का अनुमोदन नहीं किया और अपनी मृत्यु के समय तक इसका अनुमोदन करने से इन्कार कर दिया।

15 अप्रैल को माउंटबैटन की प्रार्थना पर गांधीजी और जिन्ना ने एक संयुक्त वक्तव्य प्रकाशित किया जिसमें भारत के नाम पर लांछन लगानेवाली हाल की हुल्लड़बाजी और मार-काट की निन्दा की गई और राजनैतिक उद्देश्यों की सिद्धि के लिए बल-प्रयोग को बुरा बताया गया। यह वक्तव्य उस पखवाड़े के अंत में निकाला गया, जब जिन्ना ने माउंटबैटन को यकीन दिलाया कि यदि उनका राजनैतिक उद्देश्य सिद्ध नहीं हुआ, तो भारत में गृह-युद्ध में फूट पड़ेगा।

इस पखवाड़े में गांधीजी दिल्ली की हरिजन बस्ती में ठहरे हुए थे और वहाँ रोज शाम को प्रार्थना-सभा चलाते थे। पहली शाम को उन्होंने उपस्थित जनों से पूछा कि उन्हें कुरान की कुछ आयतें पढ़ी जाने पर आपत्ति तो नहीं है। कई विरोधियों ने हाथ ऊँचे कर दिए। इस पर गांधीजी ने सभा भंग कर दी | दूसरी शाम को उन्होंने यही सवाल किया । उस दिन भी कुछ लोगों ने आपत्ति की और उस दिन भी उन्होंने सभा में प्रार्थना नहीं की | तीसरी शाम को भी यही बात हुई।

चौथी शाम को किसी ने एतराज नहीं किया। गांधीजी ने बतलाया कि अगर पिछले तीन दिन सारे-के-सारे उपस्थित जन एतराज करते, तो वह कुरान की आयतें जरूर पढ़ते और तैयार रहते कि यदि वे उन्हें मारना चाहें, तो वह ईश्वर का नाम लेते-लेते उनके हाथ से मर जाएँ, परंतु प्रार्थना-स्थान में वह प्रार्थना की इच्छा रखनेवालों तथा आपत्ति करनेवालों के बीच झगड़ा नहीं होने देना चाहते थे। अंत में अहिंसा की विजय हुई।

गांधीजी की दलील थी-"अरबी में ईश्वर का नाम लेना पाप कैसे हो सकता है?" हिन्दू-मुस्लिम एकता उनके जीवन का लक्ष्य था। यदि हिन्दुस्तान का अर्थ था केवल हिन्दुओं की भूमि और पाकिस्तान का अर्थ था केवल मुसलमानों की भूमि, तो पाकिस्तान और हिन्दुस्तान दोनों जहर से भरी भूमियाँ होनेवाली थीं।

13 अप्रैल को गांधीजी बिहार वापस चले गए।

अब तो अहिंसा के लिए तथा घृणा के विरुद्ध कार्रवाही ही वह राजनैतिक काम था, जिसका कुछ अर्थ था। यदि गांधीजी सिद्ध नहीं कर सके कि हिन्दू और मुसलमान मेल-जोल से रह सकते हैं, तो जिन्ना की बात सही थी और पाकिस्तान अनिवार्य था।

सवाल यह था-क्या भारत एक राष्ट्र है, अथवा ऐसा देश है, जिसमें एक-दूसरे से सदा लड़नेवाले धार्मिक समुदाय बसते हैं?

संसार का एक सबसे बुरा अभिशाप है विगत शताब्दियों का प्रभाव। भारत में सत्रहवीं, अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दियाँ बीसवीं शताब्दी को प्रभावित करने के लिए बाकी

बच गई हैं। मजहबी जोशों का, प्रांतीय भावनाओं का और देशी रियासतों का भारत में वैसा ही क्षयकारी विभाजक प्रभाव रहा है, जैसा उद्योगवाद तथा राष्ट्रवाद के आधुनिक युग से पहले यूरोप में। चालीस करोड़ की आबादीवाले भारत में केवल तीस लाख औद्योगिक मजदूर हैं। देश में एकसूत्रता का अभाव था, क्योंकि इस पिछड़े हुए देश की बिखरनेवाली प्रवृत्तियों को दबाने के लिए किसी के भी पास न तो एकीकरण की पर्याप्त सामर्थ्य थी और न एकीकरण की आकर्षक सूझ-बूझ। राष्ट्रवाद के, एकीकरण के उच्च प्रतीक गांधीजी खुद ही बीते हुए अतीत, संघर्षशील वर्तमान तथा अपने उच्च आदर्शों के भावी संसार का मिश्रण थे।

गृह-युद्ध की धमकी जिन्ना का बल थी, दंगे उसके पूर्व रूप थे। भारत की एकता कायम रखने की एकमात्र आशा यही थी कि जनता को शांत किया जाय और इस प्रकार जिन्ना की धमकी को गीदड़-भभकी सिद्ध कर दिया जाय।

गांधीजी बिना विचलित हुए तथा अकेले ही इस काम में जुट गए।

इतिहास पूछ रहा था कि भारत एक राष्ट्र है या नहीं?

6 / दुःखांत विजय

अप्रैल में बिहार में जोर की गर्मी थी और गांधीजी गाँवों की लंबी-चौड़ी यात्राओं का श्रम बरदाश्त नहीं कर सकते थे। परंतु यदि हिन्दू लोग पश्चात्ताप न करें और डर भागे हुए मुसलमानों को वापस न लाएँ, तो गांधीजी का वहाँ जाना जरूरी था | उनको एक पत्र मिला, जिसमें लिखा था कि उन्हें कृष्ण की तरह वन में चले जाना चाहिए, अहिंसा से देश का विश्वास जाता रहा है। इसके अलावा गीता अहिंसा का उपदेश नहीं देती।

उन्हें समाचार मिला कि नोआखाली में फिर दंगे शुरू हो गए हैं।

परंतु कई घटनाओं ने गांधीजी को उत्साहित किया। गांधीजी के कहने पर आजाद हिन्द फौज के जनरल शाहनवाज़ बिहार ही में रह गए थे। उन्होंने बतलाया कि मुसलमान लोग अपने-अपने गाँवों को लौट रहे हैं और हिन्दू तथा सिख उन्हें सहायता दे रहे हैं। एक सिख को मस्जिद में भी बुलाया गया था।

इस समाचार से गांधीजी को लगा कि यदि हिन्दू लोग सच्चे हिन्दू बन जाएँ और मुसलमानों को गले लगाएँ, तो सबको अपनी लपटों में लपटनेवाली मौजूदा आग बुझ जाय। बिहार बड़ा प्रांत था। उसके उदाहरण से दूसरों को प्रेरणा मिलेगी | बिहार की शांति कलकत्ता तथा दूसरी जगहों के फिसादों को मिटा देगी। उन्होंने बतलाया कि उनकी अशिक्षित ग्रामीण माँ ने उन्हें सिखाया था कि परमाणु में ब्रह्मांड है। यदि वह अपने इर्द-गिर्द की चीजों को संभाल लेंगे, तो दुनिया अपनी संभाल आप कर लेगी।

नेहरू ने तार द्वारा गांधीजी को दिल्ली बुलाया। एक महान ऐतिहासिक निर्णय के लिए कांग्रेस कार्य-समिति की बैठक 1 मई को होनेवाली थी। गांधीजी गर्मी में पाँचसौ मील की यात्रा करके दिल्ली पहुँचे।

माउंटबैटन ने स्थिति का अध्ययन करके पता लगा लिया था कि पाकिस्तान के सिवा कोई चारा नहीं है। इसलिए उन्होंने कांग्रेस के सामने प्रश्न रखा-क्या वह भारत का विभाजन

स्वीकार करेगी? 21 अप्रैल को संयुक्त प्रांतीय राजनैतिक सम्मेलन में नेहरू ने कहा था- "अगर मुस्लिम लीग पाकिस्तान चाहती है, तो उसे मिल जाएगा, किन्तु इस शर्त पर कि वह भारत के उन भागों को न माँगे, जो पाकिस्तान में शामिल नहीं होना चाहते |"

क्या कार्य-समिति भी यही निर्णय करनेवाली थी।

गांधीजी इसके विरुद्ध थे। पटेल डाँवाडोल थे। वह जिन्ना की धमकियों पर बल-परीक्षा करना चाहते थे। वह मुसलमानों की हिंसा को दबाने के लिए केन्द्रीय सरकार का उपयोग करना चाहते थे, परंतु अंत में वह भी राजी हो गए। गृह-युद्ध का खतरा उठाने के बजाय या स्वाधीनता खोने के बजाय कांग्रेस ने पाकिस्तान को मान लेना बेहतर समझा।

आजादी के लिए कांग्रेस ने पाकिस्तान के रूप में ऊँची कीमत अदा की।

गांधीजी ने अपनी झुंझलाहट को छिपाया नहीं। 7 मई की प्रार्थना-सभा में उन्होंने कहा- "कांग्रेस ने पाकिस्तान स्वीकार कर लिया है और पंजाब तथा बंगाल का विभाजन माँगा है। भारत के विभाजन का मैं आज भी उतना ही विरोधी हूँ, जितना सदा से रहा हूँ। लेकिन मैं क्या कर सकता हूँ? मैं तो केवल यही कर सकता हूँ कि ऐसी योजना से अपने-आपको अलग हटा लूँ। ईश्वर के सिवा और कोई भी मुझे इसे स्वीकार करने के लिए मजबूर नहीं कर सकता |"

गांधीजी माउंटबैटन से मिलने गए। अंग्रेजों को उन्होंने सलाह दी कि अपने सैनिकों-सहित भारत छोड़कर चले जाएँ और "भारत को उपद्रव तथा अराजकता के भरोसे छोड़ने का खतरा उठा लें |" अंग्रेजों के चले जाने पर कुछ समय उपद्रव होंगे "और हमको निस्संदेह आग में से गुजरना पड़ेगा, परंतु यह आग हमको शुद्ध कर देगी |"

गांधीजी के सुझाव का यह केवल विचारात्मक पहलू था। ठोस रूप में इसकी चतुराई इसकी सादगी में छिपी हुई थी। अंग्रेज लोग भारत को बिना किसी सरकार के नहीं छोड़ सकते थे। उपद्रवों के भरोसे भारत छोड़ जाने की सलाह का अर्थ था भारत कांग्रेस को सौंप देना। अगर इंग्लैंड इन्कार करता, तो गांधीजी चाहते थे कि कांग्रेस भी सरकार को

छोड़ दे। उस हालत में देश में शांति कायम रखने की जिम्मेदारी पूरी तरह अंग्रेजों पर रहती और अंग्रेज यह जिम्मेदारी उठाना नहीं चाहते थे।

इसलिए गांधीजी ने अंग्रेजों के सामने जो विकल्प रखा, वह यह था-या तो भारत पर कांग्रेस को शासन करने दो, वरना इस मार-काट के समय में खुद शासन चलाओ।

गांधीजी जानते थे कि पाकिस्तान तब तक संभव नहीं है, जब तक कि ब्रिटिश सरकार उसे न बनाए और अंग्रेज लोग पाकिस्तान तब तक नहीं बनाएँगे, जब तक कि कांग्रेस उसे स्वीकार न कर ले। जिन्ना तथा अल्पसंख्यकों को संतुष्ट करने के लिए ब्रिटिश सरकार भारत के टुकड़े नहीं कर सकती थी और बहुमत को नाराज नहीं कर सकती थी | इसलिए कांग्रेस को पाकिस्तान स्वीकार नहीं करना चाहिए |

परंतु गांधीजी की कौन सुनता था? गांधीजी के एक सहयोगी ने लिखा है-"हमारे नेता थक गए थे और दूर दृष्टि खो बैठे थे। कांग्रेस-नेता स्वाधीनता को टालने से डरते थे। गांधीजी इस आशा से देर करना चाहते थे कि अंत में संयुक्त देश को आजादी प्राप्त हो, न कि दो परस्पर विरोधी भारतों को।

1948 की गर्मियों में मैंने नेहरू, पटेल आदि से पूछा कि गांधीजी ने कांग्रेस को पाकिस्तान स्वीकार करने से रोकने का प्रयत्न क्यों नहीं किया, अगर कोई मामूली उपाय कारगर न होता, तो वह उपवास करके उसे दबा सकते थे?

सबका एक ही जवाब था कि गांधीजी का यह तरीका नहीं है कि चरम मुद्दों पर भी राजी होने के लिए किसी को मजबूर करें। यह सही है, परंतु पूरा उत्तर इससे भी गहरा है। कांग्रेस ने पाकिस्तान मान लिया और शासन-सूत्र सँभाले रही। इसका विकल्प केवल यही था कि पाकिस्तान को ठुकरा दिया जाता, शासन-सूत्र छोड़ दिया जाता और जनता में दुबारा सुबुद्धि तथा शांतिप्रियता स्थापित करने पर सारी बाजी लगा दी जाती | परंतु गांधीजी ने देख लिया कि उनके विकल्प में नेताओं को श्रद्धा नहीं है। कमेटियों में वह उन्हें अपने मत का समर्थन करने के लिए दबा सकते थे, परंतु उनमें श्रद्धा नहीं फूँक सकते थे। इसके लिए

पहले उन्हें यह सिद्ध करना पड़ता कि हिन्दू और मुसलमान मेल-जोल के साथ रह सकते हैं। यह सिद्ध करने का भार गांधीजी पर था और समय बड़ी तेजी से बीता जा रहा था।

गांधीजी कलकत्ता गए। पाकिस्तान पाने के लिए बंगाल का पाकिस्तान तथा हिन्दुस्तान के बीच बँटवारा करना होगा। अगर वह बंगाल के मुसलमानों को इस अंग-भंग के दुःखद परिणाम समझा सकें, अगर वह बंगाल के विभाजन के लिए हिन्दुओं की उमड़ती हुई भावनाओं को रोक सकें, तो शायद वह पाकिस्तान को टाल सकें।

कलकत्ता में गांधीजी ने पूछा-"जब ऊपर के सिरे पर सब ढंग-ढाँचा बिगड़ जाता है, तो क्या तले में जनता की सद्दबुद्धि इस शरारत-भरे असर के खिलाफ अड़कर खड़ी नहीं हो सकती ?" यही उनकी आशा थी।

गांधीजी ने दलील दी कि बंगाल की एक संस्कृति है, एक भाषा है। उसे संयुक्त ही बना रहने दो | लार्ड कर्जन द्वारा बंग-भंग के बाद उन्होंने बंगाल को फिर एक करवा लिया था। क्या वे विभाजन से पहले जिन्ना को नहीं रोक सकते ?

छः दिन कलकत्ता ठहरकर गांधीजी बिहार चले गए। बेहद गर्मी के बावजूद वह गाँवों का दौरा करने लगे | उनका गीत वही था-"यदि हिन्दू लोग भाईचारे की भावना प्रदर्शित करें, तो इससे बिहार का भला होगा, भारत का भला होगा और संसार का भला होगा।"

नेहरू का बुलावा आने पर गांधीजी 25 मई को फिर दिल्ली वापस गए। माउंटबैटन अपने मन में निश्चय करके हवाई जहाज द्वारा लंदन चले गए थे। अफवाह थी कि भारत का विभाजन होगा और इसकी योजना शीघ्र ही घोषित की जाएगी | गांधीजी को आश्चर्य था कि ऐसा क्यों हो रहा है। 16 मई 1946 को केबिनेट मिशन ने विभाजन तथा पाकिस्तान अस्वीकृत कर दिया था। तबसे कौन-सी बात हो गई, जिससे स्थिति बदल गई? क्या दंगे? क्या वे हुल्लड़बाजी के आगे घुटने टेक रहे थे?

वह विभाजन की ओर बढ़ते हुए ज्वार को पीछे ढकेलने का अब भी प्रयत्न कर रहे थे। यह प्रयत्न उनकी जान ले ले, तो भी क्या? गांधीजी ने कहा था-"आज भारत का जो रूप बन

रहा है, उसमें मेरे लिए स्थान नहीं है। मैंने सवासौ वर्ष जीने की आशा छोड़ दी है। शायद मैं साल-दो-साल और जिन्दा रहूँ। यह दूसरी बात है। परंतु यदि भारत मार-काट की बाढ़ में डूब गया, जैसाकि खतरा दिखाई दे रहा है, तो मैं जीवित नहीं रहना चाहता |"

फिर भी वह बहुत दिनों तक निराशावादी नहीं रह सके | नेहरू चीन के राजदूत डा० लो चिया-ल्युएन को गांधीजी के पास लाए। "आपके खयाल से घटनाएँ क्या रूप लेंगी?" डा० लो ने पूछा।

गांधीजी ने उत्तर दिया-"मैं अदम्य आशावादी हूँ। बंगाल, पंजाब और बिहार की तमाम विवेकहीन खून-खराबी को देखते हुए हम जैसे वहशी नजर आ रहे हैं, क्या वैसा बनने के लिए ही हम अब तक जिन्दा रहे हैं और कठिन परिश्रम करते रहे हैं? किन्तु मुझे लगता है कि यह इशारा है कि जब हम विदेशी जुए को उतारकर फेंक रहे हैं, तो सारा मैल और सारे झाग ऊपर आ रहे हैं। गंगा में जब बाढ़ आती है, तो पानी गंदला हो जाता है, मैल ऊपर आ जाता है। जब बाढ़ का पानी उतरता है, तो हमको शुद्ध नीला जल दिखाई देता है, जो आँखों को ठंडक पहुँचाता है। मैं इसी आशा में जी रहा हूँ। मैं भारत के मनुष्यों को वहशी नहीं देखना चाहता |"

इस अर्से में माउंटबेटन लंदन में भारत के विभाजन की योजना तैयार कर रहे थे।

इस योजना में केवल भारत के विभाजन का नहीं, बल्कि बंगाल, पंजाब और आसाम के विभाजन का भी विधान था-यदि वहाँ की जनता चाहे ।

3 जून 1947 को प्रधान मंत्री एटली ने ब्रिटिश लोक सभा में तथा माउंटबैटन ने नई दिल्ली में आकाशवाणी से इस योजना की घोषणा की।

नेहरू, पटेल तथा कार्य-समिति ने योजना मंजूर कर ली | कांग्रेस महा-समिति ने 15 जून को 153 के विरुद्ध 29 मतों से इसे मंजूर करके अधिकृत रूप दे दिया। प्रस्ताव पास होने के बाद कांग्रेस के अध्यक्ष प्रोफेसर जे. बी. कृपालानी ने एक छोटे-से भाषण में बतलाया कि कांग्रेस ने गांधीजी का साथ क्यों छोड़ दिया। उन्होंने कहा-"हिन्दुओं और मुसलमानों

के बीच मार-काट के बुरे-से-बुरे कृत्यों की होड़ चल रही है । डर यह है कि अगर हम इस तरह एक-दूसरे से बदला लेते और एक-दूसरे का तिरस्कार करते चले जाएँ, तो धीरे-धीरे हम नर-भक्षकों की अथवा इससे भी बुरी स्थिति में जा गिरेंगे। हर नए झगड़े में पुराने झगड़े के अत्यंत पाशविक तथा हीन कृत्य भी साधारण बन जाते हैं । मैं तीस साल से गांधीजी के साथ हूँ। उनके प्रति मेरी भक्ति कभी विचलित नहीं हुई है। यह भक्ति व्यक्तिगत नहीं, राजनैतिक है। जब कभी मैं उनसे सहमत नहीं हुआ हूँ, तब भी मैंने उनकी राजनैतिक अंतःप्रेरणा को अपने खूब तर्कयुक्त विचारों से ज्यादा सही माना है। आज भी मैं मानता हूँ कि अपनी महान निर्भयता को लिए हुए वह सही हैं और मेरी दलील त्रुटिपूर्ण है।

"तो फिर मैं उनके साथ क्यों नहीं हूँ? इसलिए नहीं हूँ कि मैं महसूस करता हूँ कि वह अभी तक इस समस्या को सामूहिक रूप से हल करने का कोई रास्ता नहीं निकाल पाए हैं।"

शांति और भाईचारे के लिए गांधीजी की दलील की राष्ट्र पर अनुकूल प्रतिक्रिया नहीं हो रही थी।

गांधीजी इसे जानते थे। उन्होंने कहा था-"यदि केवल गैर-मुस्लिम भारत मेरे साथ होता, तो मैं प्रस्तावित विभाजन को रद्द कराने का रास्ता बता सकता था |"

गांधीजी की नब्बे फीसदी डाक गालियों से और घृणा से भरी हुई होती थी। हिन्दुओं के पत्रों में पूछा जाता था कि वह मुसलमानों का पक्ष क्यों लेते हैं और मुसलमानों के पत्रों में यह माँग होती थी कि वह पाकिस्तान की स्थापना में रुकावट डालना बंद कर दें।

एक मराठा-दंपति ने दिल्ली आकर हरिजन बस्ती के पास डेरा डाल दिया और घोषणा की कि उन्होंने उपवास शुरू कर दिया है, जो तब तक जारी रहेगा, जब तक पाकिस्तान की योजना त्याग न दी जाय। गांधीजी ने प्रार्थना-सभा में प्रवचन देते हुए उनसे पूछा-"क्या तुम पाकिस्तान के विरुद्ध इसलिए उपवास कर रहे हो कि मुसलमानों से घृणा करते हो, या इसलिए कि मुसलमानों से प्रेम करते हो? अगर तुम मुसलमानों से घृणा करते हो, तो

उपवास की आवश्यकता नहीं है। यदि तुम मुसलमानों से प्रेम करते हो, तो जाओ, अन्य हिन्दुओं को भी उनसे प्रेम करना सिखाओ |" दोनों ने उपवास छोड़ दिया।

गांधीजी विभाजन को एक 'आध्यात्मिक' दुर्घटना कहते थे। वह खून-फिसाद की तैयारियों को देख रहे थे। उन्हें 'सैनिक अधिनायकशाही' की और फिर "आजादी से विदा' की संभावना दिखाई दे रही थी। उन्होंने कहा-"मेरे निकटतम मित्रों ने जो कुछ किया है, या वह जो कुछ कर रहे हैं, उससे मैं सहमत नहीं हूँ।"

गांधीजी का कहना था कि बत्तीस वर्ष के काम का 'शर्मनाक अंत' हो रहा है। 15 अगस्त 1947 को भारत स्वाधीन होनेवाला था, परंतु यह विजय एक रूखी राजनैतिक व्यवस्था थी | यह आजादी का खोखा छिलका था। यह दुःखांत विजय थी। यह ऐसी विजय थी, जिसमें सेना खुद अपने सेनापति को हराते हुए पाई गई।

गांधीजी ने घोषणा की-"मैं 15 अगस्त के समारोह में भाग नहीं ले सकता |"

स्वाधीनता अपने निर्माता के लिए शोक लेकर आई | अपने देश का पिता अपने ही देश से निराश हो गया। उन्होंने कहा-'मैंने इस विश्वास में अपने को धोखा दिया कि जनता अहिंसा के साथ बँधी हुई है।"

6 अक्तूबर 1948 को माउंटबैटन ने रायल एंपायर सोसायटी को बताया कि भारत में गांधीजी की तुलना रूज़वेल्ट या चर्चिल जैसे राजनेताओं के साथ नहीं होती। यहाँ के लोग तो उन्हें अपने मन में मोहम्मद और ईसा की श्रेणी का मानते हैं।

करोड़ों लोग गांधीजी की पूजा करते थे, ढेरों लोग उनके चरणों को अथवा उनके चरणों की धूल को माथे से लगाने का प्रयत्न करते थे। वे उन्हें श्रद्धांजलियाँ अर्पण करते थे और उनके उपदेशों को ठुकराते थे। वे उनके शरीर को पावन मानते थे और उनके व्यक्तित्व को अपावन। वे उनमें विश्वास करते थे, किन्तु उनके सिद्धांतों में नहीं। वे खोल की स्तुति करते थे और सार को पाँवों से कुचलते थे।

15 अगस्त, स्वाधीनता दिवस, ने गांधीजी को कलकत्ता में दंगों को रोकने का प्रयत्न करते हुए पाया। सारे दिन उन्होंने उपवास रखा और प्रार्थना की | देश के लिए उन्होंने कोई संदेश नहीं दिया। राष्ट्र के जीवन के औपचारिक उद्‌घाटन में भाग लेने के लिए राजधानी पहुँचने का निमंत्रण उन्होंने अस्वीकार कर दिया। उत्सवों के दौर में वह शोकाकुल थे। उन्होंने पूछा-"क्या मुझमें कोई खराबी पैदा हो गई है, या वास्तव में ही ढंग बिगड़ रहा है।"

भारत को आजादी मिली, लेकिन गांधीजी परेशान और बेचैन थे। उनकी अनासक्ति में कमी आ गई थी। उन्होंने कहा भी था-"मैं समत्व की स्थिति से दूर हट गया हूँ।"

परंतु विश्वास ने उनका साथ कभी नहीं छोड़ा। न उन्होंने गुफा में या जंगल में चले जाने का विचार किया। "कोई भी हेतु, जो भीतर से न्यायोचित है, निराश्रय कभी नहीं कहा जा सकता," उन्होंने दृढ़ता से कहा।

29 अगस्त को उन्होंने अमृतकौर को लिखा था-"मानवता एक महासागर है। यदि महासागर की कुछ दूँदे गंदली हो जाएँ, तो सारा महासागर गंदला नहीं होता।"

मनुष्य में उन्होंने अपना विश्वास कायम रखा था। ईश्वर में उन्होंने अपना विश्वास कायम रखा था। अपने प्रार्थना-प्रवचन में एक दिन उन्होंने कहा था—"मैं जन्म से ही संघर्ष करनेवाला हूँ और असफलता को नहीं जानता।"

विभाजन तथ्य था, परंतु उनका कहना था कि "सही आचरण से किसी बुराई को कम करना हमेशा संभव है और अंत में बुराई में से भलाई निकालना भी संभव है।"

कोई छोटा आदमी उद्विग्न हो जाता था या कदु बन जाता या अपने मार्ग में बाधा डालनेवालों को पराजित करने की साजिश करता। गांधीजी ने अपने अंदर रोशनी डाली, शायद उनका ही दोष हो। "हे ईश्वर तू मुझे अंधकार से प्रकाश में ले जा।"

गांधीजी अपनी आयु के अठहत्तर वर्ष पूरे कर रहे थे। जो संसार उन्होंने रचा था, वह उनके चारों ओर खंडहर हुआ पड़ा था। उन्हें नए सिरे से निर्माण करना था। कांग्रेस बेहद

राजनैतिक दल बन गई थी। उसे जनता के रचनात्मक उत्थान का निमित्त बनना आवश्यक था। वह नई दिशाएँ टटोल रहे थे। उनका शरीर बुढ़ा था और जोश जवानों जैसा। वह अनुभव में वृद्ध थे और विश्वास में युवा।

कलकत्ता में लोग उन्हें एक मुसलमान के घर ले गए। इस मुहल्ले की गली में ताजे खून से पाँव रपटते थे और हवा में जलते मकानों के धुएँ की दुर्गंध थी।

वियोग-संतप्त लोग इस छोटे-से मकान में उनके पास आए और गांधीजी ने उनके आँसू पोंछे | दूसरों के शांति का मरहम लगाने में उन्हें सांत्वना मिलती थी । उन्होंने अपना नया कर्तव्य खोज लिया था। यह उनका पुराना कार्य था। कष्ट-निवारण, प्रेम का प्रसार तथा सब मनुष्यों को भाई-भाई बनाना।

असीसी के संत फ्रांसिस जब अपने बागीचे में फावड़ा चला रहे थे, तो किसी ने उनसे पूछा कि अगर उन्हें अचानक यह पता लग जाय कि उसी शाम को उनकी मृत्यु होनेवाली है, तो वह क्या करेंगे?

उन्होंने जवाब दिया-"मैं अपने बागीचे में फावड़ा चलाना समाप्त कर दूँगा |"

गांधीजी उसी बागीचे में फावड़ा चलाते रहे, जिसमें उन्होंने अपने जीवन भर काम किया था। पापियों ने उनके बागीचे में पत्थर और कचरा फेंक दिया था, परंतु वह फावड़ा चलाते रहे।

सत्याग्रह गांधीजी के लिए निराशा तथा दुःखों की औषध था। कर्म उन्हें आंतरिक शांति प्रदान करता था।

7 / वेदना की पराकाष्ठा

अंग्रेज भारत छोड़कर चले गए। उन्हें राजनीति के अक्षरों का ज्ञान था, भारत की दीवार पर उन्होंने यह हस्तलेख पढ़ लिया था-"तुम्हारे दिन पूरे हो गए !" यह हस्तलेख गांधीजी का था।

भारतवासियों की मर्जी से लार्ड माउंटबैटन भारतीय संघ के गवर्नर-जनरल बने रहे | यह तय हुआ था कि माउंटबैटन पाकिस्तान के भी गवर्नर-जनरल होंगे और इस प्रकार एकता के प्रतीक होंगे। परंतु जिन्ना ने उनकी जगह ले ली।

पाकिस्तान बनने से भारत के दो टुकड़े हो गए। खुद पाकिस्तान के भी दो टुकड़े हो गए। दोनों टुकड़ों के बीच भारतीय संघ का करीब 800 मील लंबा भाग था।

भारत का विभाजन करनेवाली सीमांत रेखा ने परिवारों के दो भाग कर दिए। इसने कारखानों को कच्चे माल से और खेती की उपज को मंडियों से पृथक कर दिया | पाकिस्तान के अल्पसंख्यक अपने भविष्य के बारे में चिन्तित थे। भारतीय संघ के मुसलमान बेचैन थे। दोनों उपनिवेशों में शासक बहुसंख्यकों तथा भयभीत अल्पसंख्यकों के बीच मारकाट शुरू हो गई।

भारत शांति के साथ रह सकता था। अंग-भंग ने मार्मिक शिराओं को काट दिया। इनमें से मानव रक्त तथा धार्मिक विद्वेष का विष बहने लगा।

कलकत्ता तथा बंगाल का पश्चिम भाग भारतीय संघ में रहा। पूर्वी बंगाल पाकिस्तान में गया । कलकत्ता की आबादी में तेईस फीसदी मुसलमान थे। हिन्दू और मुसलमान आपस में लड़ पड़े।

गांधीजी ने इस भड़क उठानेवाले मसाले पर शांति का शीतल जल छिड़कने का बीड़ा उठाया।

गांधीजी 9 अगस्त 1947 को कलकत्ता पहुँचे। जिन्ना के 'सीधी कार्रवाई' के दिन से अब तक, पूरे साल-भर कलकत्ता खूनी लड़ाई-झगड़ों से त्रस्त था। धार्मिक उन्माद से भरी हुई

गलियों में गांधीजी और हसन सुहरावर्दी बाँह-में बाँह डाले घूमे। दंगे के क्षेत्रों में सुहरावर्दी गांधीजी को अपनी कार में खुद ले गए। जहाँ-कहीं ये दोनों गए, वहाँ मार-काट मानों काफूर हो गई। हजारों मुसलमान और हिन्दू आपस में गले मिले और उन्होंने नारे लगाए "महात्मा गांधी जिन्दाबाद !" "हिन्दू-मुस्लिम एकता जिन्दाबाद!" गांधीजी की दैनिक प्रार्थना-सभाओं में विशाल भीड़ भाईचारा प्रकट करने लगी | 14 अगस्त के बाद कलकत्ता में कोई दंगा नहीं हुआ। गांधीजी ने तूफान को शांत कर दिया था। समाचार-पत्रों ने लगोटीवाले जादूगर को प्रशंसा के उपहार भेंट किए।

31 अगस्त को गांधीजी एक मुसलमान के घर में सोए हुए थे। रात को 10 बजे के लगभग उन्हें रोष-भरी आवाजें सुनाई दीं । वह चुपचाप पड़े रहे | सुहरावर्दी तथा महात्माजी की कई शिष्याएँ कुछ हमलावरों को शांत करने का प्रयत्न कर रहे थे। तभी काँच टूटने लगे, खिड़कियों के काँच पत्थरों और घूँसों से तोड़े जा रहे थे। कुछ नौजवान मकान के भीतर घुस आए और किवाड़ों पर लातें मारने लगे। गांधीजी ने बिस्तर से उठकर अपने कमरे के किवाड़ खोल दिए। वह क्रोध-भरे दंगाइयों के सामने खड़े थे। उन्होंने अपने हाथ जोड़ दिए | उनपर ईंट फेंकी गई | यह ईंट उनके पास खड़े एक मुसलमान मित्र के लगी। एक दंगई ने लाठी घुमाई, जो गांधीजी के सिर पर पड़ने से जरा ही बच गई | महात्माजी ने दुःख से अपना सिर हिलाया। पुलिस आ गई | पुलिस के अफसर ने गांधीजी से अपने कमरे में चले जाने को कहा। तब पुलिस अफसरों ने दंगइयों को धक्के देकर बाहर निकाल दिया। बाहर बेकाबू भीड़ को तितर-बितर करने के लिए अश्रु गैस का प्रयोग किया गया। यह भीड़ एक पट्टी-बँधे मुसलमान को देखकर भड़क गई थी और उसका कहना था कि उसे हिन्दुओं ने छुरा मारा है।

गांधीजी ने उपवास का निश्चय कर डाला।

1 सितंबर को समाचार-पत्रों को दिए गए एक वक्तव्य में उन्होंने कहा-"जोश से चीखनेवाली भीड़ के सामने जाने से कुछ नहीं बनता। कम-से-कम कल रात कुछ नहीं बना। जो बात मेरे शब्द से नहीं हो सकी, वह शायद मेरे उपवास से हो सके। अगर कलकत्ता में मैं

लड़नेवाले बलवाइयों के दिलों पर असर कर सका, तो पंजाब में भी कर सकूँगा। इसलिए मैं आज रात को 8.15 बजे से उपवास शुरू कर रहा हूँ और यह उस समय समाप्त होगा, जब कलकत्तावालों में सद्बुद्धि फिर लौट आयगी |"

यह आमरण उपवास था। यदि सद्बुद्धि न लौटे, तो महात्माजी मर जाएँगे।

2 सितंबर को टोलियों तथा शिष्टमंडलों का गांधीजी के निवास-स्थान पर ताँता लग गया। उन्होंने कहा कि गांधीजी की प्राण-रक्षा के लिए वे सब कुछ करने को तैयार हैं। गांधीजी ने बतलाया कि यह दृष्टिकोण ही गलत है| उनके उपवास का अभिप्राय था अंतरात्मा को जगाना और दिमागी सुस्ती दूर करना | हृदय-परिवर्तन की मुख्य बात थी और उनके जीवन की रक्षा गौण।

सारे संप्रदायों तथा अनेक संस्थाओं के नेतागण महात्माजी से मिलने आए। गांधीजी ने सबसे बातें कीं | जबतक सांप्रदायिक मेल फिर स्थापित न हो जाय, वह उपवास नहीं तोड़ेंगे। कुछ प्रमुख मुसलमान तथा पाकिस्तान सीमैंस यूनियन के एक पदाधिकारी गांधीजी से मिले और उन्होंने आश्वासन दिया कि शांति कायम रखने का वह भरसक प्रयत्न करेंगे और मुसलमान भी आए | उपवास का उन पर असर

पड़ा था। यह उपवास उनकी सुरक्षा के लिए तथा उनके विनष्ट घरों के पुनर्वास के लिए था।

4 सितंबर को म्युनिसिपल अधिकारियों ने सूचना दी कि गत चौबीस घंटों में शहर में पूरी शांति रही । लोगों ने गांधीजी को यह भी बताया कि सांप्रदायिक शांति की अपनी इच्छा का सबूत देने के लिए उत्तर कलकत्ता के 500 पुलिस सिपाहियों ने, जिनमें अंग्रेज पुलिस-अफसर भी थे, ड्यूटी पर काम करते हुए ही सहानुभूति में चौबीस घंटे का उपवास शुरू कर दिया है। हुल्लड़बाजी गिरोह के सरदार, लंब-तड़ंग हत्यारे, गांधीजी के बिस्तर के पास बैठकर रोने लगे और उन्होंने वादा किया कि अपनी स्वाभाविक लूट-मार बंद कर देंगे। हिन्दुओं, मुसलमानों तथा ईसाईयों के प्रतिनिधियों ने, कार्यकर्ताओं ने, व्यापारियों तथा

दुकानदारों ने, गांधीजी के सामने प्रतिज्ञा की कि कलकत्ता में आगे से झगड़े नहीं होंगे। गांधीजी ने कहा कि वह उनका विश्वास तो करते हैं, परंतु इस बार लिखित प्रतिज्ञा चाहते हैं और प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर करने से पहले उन्हें यह जान लेना चाहिए कि अगर प्रतिज्ञा भंग की गई, तो वह अखंड उपवास शुरू कर देंगे, जिसे उनकी मृत्यु तक पृथ्वी की कोई भी वस्तु नहीं रोक सकेगी।

शहर के नेतागण मंत्रणा के लिए अलग चले गए। यह बड़ा महत्त्वपूर्ण क्षण था और वे लोग अपनी जिम्मेदारी को महसूस करते थे | फिर भी उन्होंने प्रतिज्ञा का मसविदा बनाया और उस पर हस्ताक्षर कर दिए | 4 सितंबर को रात के 9.45 पर गांधीजी ने सुहरावर्दी के हाथ से नीबू के शरबत का एक गिलास पिया। उन्होंने तिहत्तर घंटे उपवास किया था।

इस दिन से कलकत्ता तथा बंगाल के दोनों भाग मुक्त रहे, हालाँकि आगे के कितने ही महीनों तक पंजाब तथा अन्य प्रांत मजहबी हत्याओं से थर्राते रहे। बंगाल अपने वचन पर ईमानदारी से डटा रहा।

7 सितंबर को गांधीजी दिल्ली होकर पंजाब जाने के लिए कलकत्ता से रवाना हो गए। बाग के दूसरे भाग में गुड़ाई की आवश्यकता थी।

स्टेशन पर गांधीजी को सरदार पटेल, राजकुमारी अमृतकौर आदि मिले। इनके चेहरों पर निराशा छाई हुई थी। दिल्ली में दंगों का जोर था। पंजाब की आग से भागे हुए सिख तथा हिन्दू शरणार्थी दिल्ली में भरते जा रहे थे। अछूतों की जिस बस्ती में महात्माजी ठहरा करते थे, वह इन लोगों ने घेर ली थी। इसलिए गांधीजी को बिड़ला-भवन में रहना पड़ा।

बिड़ला भवन में गांधीजी का कमरा नीचे की मंजिल में था। जब गांधीजी यहाँ पहुँचे, तो उन्होंने सारा फर्नीचर हटवा दिया। आगंतुक लोग फर्श पर बैठते थे और गांधीजी कमरे के बाहर बरामदे में सोते थे।

बिड़ला भवन में पहुँचने पर गांधीजी को मालूम हुआ कि दिल्ली में ताजा फल और सब्जियाँ मिलना दुश्वार था। दंगों ने सब कारोबार ठप कर दिया था।

अब गांधीजी तेजी के साथ और पूरी तरह खुलकर दिल्ली की अक्ल ठिकाने लाने के काम में जुट गए, दिल्ली की भी और पंजाब की भी। दूसरी कोई बात महत्त्व नहीं रखती थी। पिछले वर्षों में गांधीजी डाक्टरों को अपना रक्तचाप नाप लेने देते थे। अब उन्होंने कह दिया-"मुझे तंग मत करो। मैं तो काम करना चाहता हूँ और अपने रक्तचाप के बारे में कुछ नहीं जानना चाहता।" डाक्टरों का कहना था कि पिछले दस वर्षों में उनके रक्त-परिभ्रमण संस्थान में कोई गिरावट नहीं आई थी, न उनके चेहरे अथवा शरीर पर ज्यादा झुर्रियाँ पड़ी थीं। जोर की आवाज उनके कानों को सहन नहीं होती थी। वह रात में पाँच-छ: घंटे और दिन में आधा या एक घंटा सोते थे। वह खूब गहरी नींद सोते थे। सुबह उनमें खूब ताजगी और फुर्ती रहती थी।

राजनैतिक स्थिति पर तीव्र विक्षोभ के बावजूद गांधीजी अपने शरीर पर बहुत अधिक ध्यान देते थे। खूब गर्म पानी के टब में 10 से 20 मिनट तक पड़ा रहना उन्हें बहुत अच्छा लगता था। अगर गुसलखाने में फहारेवाली टोंटी होती, तो वह बाद में ठंडे पानी से स्नान करते थे।

कठिन यात्राओं तथा जबरदस्त मानसिक खिंचाव के इन महीनों में वह अल्प भोजन करते थे। उनका गुर था : बूते से ज्यादा काम करना पड़े, तो कम खाओ। उनके लिए तो अभी बहुत काम करने को पड़ा था।

बिड़ला भवन पहुँचने के पहले ही गांधीजी दिल्ली से चौदह मील दूर ओखला में डॉ० जाकिरहुसैन से मिलने आए।

जाकिरहुसैन ओखला की जामिआ मिल्लिया इस्लामिया के अध्यक्ष थे। यह बहुत ऊँचे दिमाग और चरित्रवाले भव्य विद्वान हैं। इस स्कूल के लिए गांधीजी ने चंदा इकट्ठा किया था। उन्होंने डॉ० जाकिरहुसैन को 'तालीमी संघ' का अध्यक्ष भी बनाया था।

अगस्त 1947 में जामिआ मिल्लिया पर क्रोधित हिन्दुओं तथा सिखों का समुद्र लहरें मारने लगा, क्योंकि इनके लिए सारी मुस्लिम चीजें, चाहे आदमी हो या इमारत, घृणास्पद थीं | रात को जामिया के अध्यापक तथा विद्यार्थी हमले की आशंका में पहरा देते थे। चारों ओर

के गाँवों में मुसलमानों के घर जल रहे थे। हमलावरों का घेरा नजदीक आता जा रहा था। एक अँधेरी रात को एक टैक्सी जामिया के अहाते में पहुँची | इसमें से जवाहरलाल नेहरू उतरे | दिल्ली को घेरनेवाले दीवानों के घेरे में होकर वह अकेले ही वहाँ जा पहुँचे थे, ताकि डॉ० हुसैन और उनके विद्यार्थियों के पास रहें और उन्हें हमले से बचाएँ।

ज्योंही गांधीजी ने जामिआ के सामने खड़े खतरे की बात कही, वह कार में वहाँ जा पहुँचे और डॉ० जाकिरहुसैन तथा विद्यार्थियों के साथ एक घंटा ठहरे। गांधीजी के पदार्पण से जामिआ पवित्र हो गई। इसके बाद उस पर हमले की आशंका नहीं रही।

उसी दिन गांधीजी ने कई शरणार्थी कैंपों का दौरा किया | उनसे अनुरोध किया गया कि हथियारबंद रक्षक साथ ले जाएँ | संभव था हिन्दू तथा सिख उन्हें मुस्लिम परस्त मानकर उन पर हमला कर दें और मुसलमान उसे हिन्दू मानकर। परंतु वह अपनी रक्षा के लिए किसी को नहीं ले गए।

सावधानी और तंदुरुस्ती को ताक में रखकर गांधीजी ने अब असाधारण शक्ति का प्रदर्शन किया। वह दिन में कितनी ही बार शहर में इधर-उधर दौड़ते थे, कभी दंगेवाले क्षेत्रों का दौरा करते, कभी शहर में या बाहर शरणार्थी डेरों में जाते और कई बार मानवता के कटुता-भरे, जड़ से उखड़े, नमूनों की हजारों की भीड़ में भाषण देते। 20 सितंबर की प्रार्थना-सभा में उन्होंने कहा था-"मैं दिल्ली के और पूर्वी पंजाब तथा पश्चिमी पंजाब के दीन-हीन शरणार्थियों का विचार करता हूँ। मैंने सुना है कि हिन्दुओं और सिखों का सत्तावन मील लंबा काफिला पश्चिमी पंजाब से भारत में प्रवेश कर रहा है। यह सोचकर मेरा सिर चकराता है कि ऐसा कैसे हो सकता है। इस प्रकार की घटना संसार के इतिहास में दूसरी नहीं मिलेगी। इससे मेरा सिर शर्म से झुक जाता है और आप लोगों का भी झुक जाना चाहिए |"

मुर्दों और पागलों के इस शहर में गांधीजी प्रेम और शांति का उपदेश देने का प्रयत्न कर रहे थे। उन्होंने कहा-"जो हिन्दू और सिख मुसलमानों को सताते हैं, वे अपने धर्म को बदनाम करते हैं और भारत को ऐसी क्षति पहुँचाते हैं, जो कभी पूरी नहीं हो सकती |"

गांधीजी एक तूफानी बाढ़ के सामने अकेले ही जमकर खड़े हो गए थे।

वह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के करीब पाँचसौ सदस्यों की एक सभा में गए। उन्होंने कहा कि अपनी असहिष्णुता से संघ हिन्दू धर्म की हत्या कर डालेगा।

भाषण के बाद गांधीजी ने प्रश्न आमंत्रित किए | एक सवाल और उसका जवाब लिखे गए थे।

"क्या हिन्दू धर्म अत्याचारी को मारने की अनुमति देता है?"

"एक अत्याचारी दूसरे अत्याचारी को सजा नहीं दे सकता," गांधीजी ने उत्तर दिया-"सजा देना सरकार का काम है, जनता का नहीं |"

2 अक्तूबर 1947 को गांधीजी का अठहत्तरवाँ जन्म-दिन था। लेडी माउंटबैटन तथा विदेशी कूटनीतिक प्रतिनिधि गांधीजी को मुबारकबाद देने आए। बहुत-से मुसलमानों ने शुभ-कामनाएँ भेजीं | धनवानों ने रुपया भेजा, शरणार्थियों ने फूल भेजे। गांधीजी ने पूछा- "मुबारकबाद का मौका कहाँ है? क्या संवेदनाएँ भेजना अधिक उचित नहीं होगा? मेरे हृदय में तीव्र वेदना के सिवा कुछ नहीं है। एक समय था, रण्यरोदन के समान हो गई है |...मैंने 125 वर्ष तो क्या, ज्यादा जीवित रहने की भी सारी इच्छा छोड़ दी है। जब विद्वेष तथा मारकाट वातावरण को दूषित कर रहे हैं, तब मैं नहीं रह सकता | इसलिए आपसे मेरी प्रार्थना है कि मौजूदा पागलपन छोड़ दीजिए |"

गांधीजी अपने को निरुत्साहित महसूस नहीं करते थे, वह अपने को निरुपाय महसूस कर रहे थे | "सर्व-समावेशक शक्ति से मैं सहायता की याचना करता हूँ कि वह मुझे इस आँसुओं की घाटी से उठा ले तो बेहतर होगा, बजाय इसके कि वहशी बने हुए मनुष्य के कसाईपन का मुझे निरुपाय दर्शक बनाए |"

वह शरणार्थियों के उन कैम्पों में गए, जो गंदे थे। सवर्ण शरणार्थियों ने इनकी सफाई से इन्कार कर दिया। गांधीजी ने हिन्दुओं की इस कमजोरी की भर्त्सना की। सर्दी का मौसम आ रहा था। उन्होंने बेघरों के लिए कंबलौं, रजाइयों और चादरों की अपील की।

रोज शाम को वह बतलाते थे कि उन्हें कितने कंबल प्राप्त हुए। एक दिन गांधीजी दिल्ली केन्द्रीय जेल में गए और 3000 कैदियों के साथ प्रार्थना की | उन्होंने हँसते हुए कहा-"मैं तो एक अभ्यस्त पुराना कैदी हूँ।" उन्होंने पूछा-"स्वतंत्र भारत में जेल कैसे होंगी? सारे अपराधियों के साथ रोगी जैसा व्यवहार होगा और जेल अस्पताल बनेंगी, जिनमें इलाज और सेहत के लिए रोगी भरती किए जाएँगे ।" अंत में उन्होंने कहा कि मेरी इच्छा है कि हिन्दू-मुसलमान-सिख कैदी मिलकर भाईचारे से रहें।

कलकत्ता से अच्छे समाचार आ रहे थे। गांधीजी ने अपनी प्रार्थना सभा में पूछा कि दिल्ली भी कलकत्ता के शांतिपूर्ण उदाहरण का अनुकरण क्यों नहीं करती ?

प्रतिशोध के डर से भारतीय संघ के मुसलमानों ने पाकिस्तान जाने का निश्चय किया। बदला लिए जाने के डर से पाकिस्तान के हिन्दू तथा सिख भारतीय संघ की ओर चले आ रहे थे। एक विशाल प्रदेश में विद्वेष, हत्या तथा लाखों के निष्कासन से तूफान आ रहा था। इस उथल-पुथल के बीच एक लंगोटीवाला छोटा-सा आदमी खड़ा था। वह कह रहा था कि अदले का बदला, मौत के बदले मौत, भारत के लिए मौत के समान है।

दिल्ली में मार-काट की छिटफुट घटनाएँ हो रही थीं। मस्जिदों के तोड़े जाने तथा मंदिर बनाए जाने को गांधीजी ने हिन्दू-धर्म तथा सिख धर्म के लिए कलंक बतलाया। वह सिखों के एक समारोह में गए। वहाँ उन्होंने सिखों द्वारा मुसलमान की मार-काट की निन्दा की।

गांधीजी ने भारत सरकार की भी आलोचना की | सेना पर बढ़ते हुए खर्च के भारी बोझ को उन्होंने पश्चिम के झूठे आडंबर की भ्रांतिपूर्ण नकल बतलाया, परंतु साथ ही उन्होंने आशा प्रकट की कि भारत मृत्यु के इस तांडव से बच जाएगा और "उस नैतिक ऊँचाई पर पहुँच जाएगा, जिस पर बत्तीस वर्ष से लगातार मिलनेवाली अहिंसा की शिक्षा के फलस्वरूप उसे पहुँचना चाहिए |"

गांधीजी ने लिखा था-"जिस समय प्रासंगिक हो, उस समय सच बोलना ही पड़ता है, चाहे वह कितना ही नागवार क्यों न हो |अगर पाकिस्तान में मुसलमानों के कुकृत्यों को रोकना

या बंद करना अभीष्ट है, तो भारतीय संघ में हिन्दुओं के कुकृत्यों का छत पर खड़े होकर ऐलान करना होगा |" हिन्दू होने के नाते गांधीजी हिन्दुओं के प्रति सबसे अधिक निष्ठुर थे।

8 / भारत का भविष्य

गांधीजी ठोस इलाज सुझाए बिना कभी कोई प्रतिकूल आलोचना नहीं करते थे। उन्होंने कांग्रेस दल की तथा स्वाधीन भारत की नई सरकार की आलोचना की थी। वह क्या सुझाव पेश कर रहे थे?

गांधीजी ने बहुत जल्दी देख लिया कि भारत की आजादी के साथ भारत में आजादी का प्रश्न उठ खड़ा हुआ है। भारत लोकतंत्र कैसे बना रह सकता है?

गांधीजी के सामने विचारणीय प्रश्न था : कया कांग्रेस-दल सरकार को मार्ग दिखा सकता है और उस पर अंकुश लगा सकता है? उन्होंने सोवियत संघ की, या फ्रैंको के स्पेन की, या अन्य अधिनायकशाही देशों की राजनैतिक अवस्थाओं का अध्ययन नहीं किया था, परंतु सहज अंतःप्रेरणा से वह उन परिणामों पर पहुँच गए थे, जिन पर दूसरे लोग लंबे अनुभवों तथा विश्लेषण के बाद पहुँच पाए थे। उन्होंने जान लिया था कि एकदल-प्रणाली व्यवहार में दलहीन-प्रणाली हो जाती है, क्योंकि जब सरकार और दल एक ही होते हैं, तो दल केवल रबड़ की मुहर बन जाता है और उसका अस्तित्व काल्पनिक हो जाता है।

यदि भारत का एकमात्र महत्त्वपूर्ण राजनैतिक दल, कांग्रेस, सरकार के प्रति स्वतंत्र और आलोचनात्मक दृष्टिकोण न रखे, तो सरकार में पैदा होनेवाली संभावित निरंकुश प्रवृत्तियों के अवरोधक का काम कौन करेगा?

क्या गांधीजी तथा स्वतंत्र समाचार-पत्रों की सहायता से कांग्रेस-दल द्वारा भारत में इस संभावना को रोका जा सकता है?

15 नवंबर 1947 को, गांधीजी की उपस्थिति में, कांग्रेस के अध्यक्ष आचार्य कृपालानी ने कांग्रेस महा-समिति को सूचित किया कि वह अपने पद से त्याग-पत्र दे रहे हैं। सरकार ने न तो उनसे परामर्श किया और न उन्हें पूरी तरह विश्वास में लिया | कृपालानी ने बतलाया कि गांधीजी की राय में ऐसी परिस्थिति में त्याग-पत्र उचित था।

कांग्रेस कार्य-समिति की जिस बैठक में नए अध्यक्ष का चुनाव होनेवाला था, उसमें गांधीजी भी उपस्थित थे। यह महात्माजी का मौन दिवस था | जब नामजदगियाँ खोली गईं, तो गांधीजी ने अपने उम्मीदवार का नाम एक पर्चे पर लिखा और उसे नेहरू के पास पहुँचा दिया। नेहरू ने सबको सुनाकर नाम पढ़ा-नरेन्द्रदेव | नेहरू ने नरेन्द्रदेव के नाम का समर्थन किया। दूसरों ने विरोध किया।

कार्य-समिति की सुबह की बैठक 10 बजे उठ गई, मत नहीं लिए गए।

दोपहर को नेहरू और पटेल ने राजेन्द्रबाबू को बुलाया और गांधीजी से बिना पूछे उनसे अनुरोध किया कि कांग्रेस की अध्यक्षता के लिए खड़े हो जाएँ।

राजेन्द्रबाबू 1 बजे बिड़ला भवन में गांधीजी के पास गए और इस प्रस्ताव का गांधीजी से जिक्र किया। गांधीजी ने कहा-"यह प्रस्ताव मुझे पसंद नहीं है।"

इन घटनाओं का वर्णन करते हुए राजेन्द्रबाबू ने बताया-"मुझे याद नहीं कि मैंने कभी गांधीजी के विरोध का साहस किया हो। अगर कभी उनसे मेरा मतभेद भी होता, तो मुझे लगता कि उनकी बात ठीक होनी चाहिए और मैं उनके पीछे चलता था |"

इस अवसर पर भी राजेन्द्रबाबू गांधीजी का बात से सहमत हो गए और उन्होंने अपनी उम्मीदवारी वापस लेने का वादा किया।

परंतु बाद में राजेन्द्रबाबू को समझा-बुझाकर उनका विचार बदलवा लिया गया। वह कांग्रेस के नए अध्यक्ष बन गए।

कांग्रेस-यंत्र ने तथा सरकार के प्रमुख व्यक्तियों ने गांधीजी को पराजित कर दिया।

1947 के दिसंबर के पूर्वार्द्ध में गांधीजी ने अपने सबसे अधिक विश्वस्त सहयोगियों के साथ कई बार सम्मिलित रूप से बात-चीत की | ये लोग सरकार से बाहर थे और रचनात्मक कार्यों में लगे हुए थे। ये गांधीजी द्वारा स्थापित रचनात्मक संस्थाओं का संचालन करते थे।

गांधीजी चाहते थे कि ये सब संस्थाएँ मिलकर एक हो जाएँ, परंतु वह यह नहीं चाहते थे कि रचनात्मक कार्यकर्त्ता "सत्ता प्राप्त करने की राजनीति में पड़ जाएँ, क्योंकि इससे सर्वनाश हो जाएगा ।" उन्होंने कहा-"अगर यह बात न होती, तो क्या मैं खुद ही राजनीति में न पड़ जाता और अपने ढंग से सरकार चलाने की कोशिश न करता ? आज जिनके हाथों में सत्ता की बागडोर है, वे आसानी से हटकर मेरे लिए जगह कर देते।"

"परंतु मैं अपने हाथों में सत्ता नहीं लेना चाहता," गांधीजी ने अपने मित्रों को विश्वास दिलाया-"सत्ता का त्याग करके और शुद्ध निःस्वार्थ सेवा में लगकर हम मतदाताओं को मार्ग दिखा सकते हैं और प्रभावित कर सकते हैं। इससे हमें जो सत्ता प्राप्त होगी, वह इस सत्ता से बहुत अधिक वास्तविक होगी, जो सरकार में जाने से प्राप्त होती । ऐसी स्थिति आ सकती है, जब लोग खुद महसूस करें और कहें कि वे चाहते हैं कि सत्ता का उपयोग हमारे ही द्वारा हो, अन्य किसी के द्वारा नहीं। उस समय इस प्रश्न पर विचार किया जा सकता है। तब तक शायद मैं जीवित न रहूँ |"

जब गांधीजी ने देखा कि वह कांग्रेस को मार्ग दिखाने में असमर्थ हैं, तो उन्होंने एक नया वाहन रचने की योजना बनाई, जो सरकार को धक्का देकरे आगे बढ़ाए और संकट के समय सरकार का भार भी उठाकर ले चले। यह राजनीति में रहे, परंतु राजनैतिक सत्ता ग्रहण न करे, सिवा उस अवस्था के, जब अन्य कोई चारा न रहे। मत प्राप्त करने की कोशिश के बजाय, गांधीजी के शब्दों में, यह जनता को सिखाए कि वह "अपने मताधिकार का उपयोग बुद्धिमानी से करे |"

एक प्रतिनिधि ने सवाल किया कि कांग्रेस या सरकार रचनात्मक जन हितकारी कार्य क्यों नहीं कर सकती ?

गांधीजी नें सरलता से उत्तर दिया-"क्योंकि रचनात्मक कार्य में कांग्रेस-जनों को काफी दिलचस्पी नहीं है। हमें इस तथ्य को समझ लेना चाहिए कि हमारे स्वप्नों की सामाजिक-व्यवस्था आज की कांग्रेस के द्वारा उपलब्ध नहीं हो सकती |"

गांधीजी ने दृढ़ता से कहा-"आज इतना भ्रष्टाचार फैला हुआ है कि मुझे डर लग रहा है। आदमी अपनी जेब में इतने सारे मत रखना चाहता है, क्योंकि मतों से सत्ता मिलती है| इसलिए सत्ता हस्तगत करने का विचार मिटा दीजिए, तो आप सत्ता को ठीक मार्ग पर ले जा सकेंगे। जो भ्रष्टाचार हमारी स्वाधीनता का जन्मते ही गला घोंटने को तैयार खड़ा है, उसे मिटाने का दूसरा कोई उपाय नहीं है।"

गांधीजी महसूस करते थे कि सत्ताधारी व्यक्तियों का तगड़ा विरोध वही कर सकता है, जो खुद सत्ता के प्रलोभन से मुक्त हो। सरकार से बाहर रहनेवाले ही सरकार में रहनेवालों को रोक और साध सकते हैं, ऐसा गांधीजी का मत था।

फिर भी गांधीजी की ऊँची अधिकारपूर्ण स्थिति उस सरकार की सत्ता का मुकाबला नहीं कर पा रही थी, जो उनके प्रयत्नों से बनी थी और जिसके सदस्य उनके चरणों में शीश झुकाते थे।

9 / आखिरी उपवास

रिचर्ड सिमंड्स नामक एक अंग्रेज मित्र, जो बंगाल में गांधीजी से मिले थे, नवंबर 1947 में नई दिल्ली में बीमार पड़ गए | गांधीजी ने उन्हें बिड़ला भवन बुला लिया।

डाक्टर ने सिमंड्स के लिए ब्रांडी तजवीज की। गांधीजी से पूछा गया, तो उन्होंने कहा कि सिमंड्स को ब्रांडी दिए जाने में उन्हें कोई आपत्ति नहीं है।

सिमंड्स काश्मीर गए थे और वहाँ की स्थिति के बारे में गांधीजी से चर्चा करना चाहते थे, लेकिन गांधीजी ने उन्हें मौका ही नहीं दिया।

सितंबर 1947 में पाकिस्तान ने सरहद के कबीलों को काश्मीर में घुसने के लिए परोक्ष रूप से सहायता दी थी | बाद में पाकिस्तान की फौज के सैनिकों ने काश्मीर पर धावा बोल दिया। काश्मीर के महाराजा ने घबराकर तथा लाचार होकर प्रार्थना की कि उनकी रियासत भारतीय संघ में शामिल कर ली जाय। 29 अक्तूबर को काश्मीर का विलय सरकारी तौर पर घोषित कर दिया गया और महाराजा ने शेख अब्दुल्ला को अपना प्रधान मंत्री नियुक्त किया। साथ ही नई दिल्ली की सरकार ने वायु तथा थल मार्ग से काश्मीर में सैनिक भेज दिए | अगर हवाई जहाजों से सैनिक न पहुँचाए गए होते, तो पाकिस्तान काश्मीर को जीतकर अपने राज्य में मिला लेता। शीघ्र ही काश्मीर और जम्मू की भूमि भारत और पाकिस्तान के बीच छोटे-से युद्ध का क्षेत्र बन गई।

बड़े दिन पर आकाशवाणी से बोलते हुए गांधीजी ने भारत द्वारा काश्मीर में सैनिक भेजे जाने की कार्रवाई का समर्थन किया। भारत और पाकिस्तान के बीच रियासत के बँटवारे के प्रस्ताव की उन्होंने निन्दा की | उन्होंने इस पर दुःख प्रकट किया कि नेहरू ने यह झगड़ा संयुक्त-राष्ट्र-संघ को सौंप दिया। अंग्रेज शांतिवादी होरेस अलेक्ज़ेंडर से उन्होंने कहा था कि काश्मीर के मुद्दे पर देशों का रुख अंतर्राष्ट्रीय 'सत्तागत राजनीति' के आधार पर निश्चित होगा, न्याय पर नहीं। इसलिए गांधीजी ने भारत तथा पाकिस्तान से अनुरोध किया कि

निष्पक्ष भारतवासियों की सहायता से दोनों आपस में मैत्रीपूर्ण समझौता कर लें, जिससे भारतीय संघ संयुक्त-राष्ट्र-संघ से अपना आवेदन-पत्र वापस ले ले।

गांधीजी सदा ऊँची राजनीति को नीची राजनीति से मिला देते थे। एक दिन अगर वह नेहरू से काश्मीर के बारे में बातचीत करते, तो दूसरे दिन वह किसी गाँव में जाकर किसानों को मैले की खाद बनाने की तरकीब बताते।

गांधीजी इतने महान थे कि उनकी सफलता संभव नहीं थी। उनके लक्ष्य अत्यधिक ऊँचे थे, उनके अनुगामी अत्यधिक मानवी तथा दुर्बल!

गांधीजी केवल भारत की ही संपत्ति नहीं थे। भारत में उनकी असफलताओं से संसार के लिए उनके संदेश तथा उसके अर्थ का महत्त्व कम नहीं होता । संभव है, वह भारत में मर जाएँ और भारत के बाहर उत्कट रूप से जीवित रहें। अंत में जाकर शायद वह वहाँ भी जीवित रहें और यहाँ भी ।

गांधीजी के जीवन का ढंग ही है कि जो असली महत्त्व रखता है, न कि उनके निकटवर्ती पड़ोस में उनका तत्कालीन प्रभाव।

ईसा ने सोचा होगा कि ईश्वर ने उन्हें छोड़ दिया और गांधीजी ने सोचा होगा कि उनके लोगों ने उन्हें छोड़ दिया। इतिहास के निर्माता इतिहास के निर्णय को पहले से नहीं जान सकते।

मनुष्य की महानता देखनेवाले की निगाहें होती हैं। गांधीजी इतने परेशान, दुःखी तथा अपने भक्तों द्वारा अवरुद्ध थे कि वह नहीं देख सकते थे कि अपने जीवन के अंतिम क्षणों में वह कितनी ऊँचाई पर पहुँच गए थे। इस अल्प समय में उन्होंने वह किया, जो किसी भी समाज के लिए अपरिमित मूल्य रखता है। उन्होंने भारत के सामने एक निराले तथा श्रेष्ठतर जीवन का नमूना रखा। उन्होंने सिद्ध कर दिया कि मनुष्य भाई-भाई की तरह रह सकते हैं और रक्त-रंजित हाथोंवाला पाशविक मनुष्य भी आत्मा के स्पर्श से प्रभावित हो सकता है, चाहे थोड़ी देर के लिए ही क्यों न हो | ऐसे क्षणों के बिना मानवता अपने-आप में विश्वास खो

देगी। समाज को अनंत काल तक प्रकाश की इस झलक की तुलना साधारण जीवन-स्थिति के अंधकार से करनी चाहिए।

13 जनवरी 1948 को महात्मा गांधीजी ने अपना अंतिम उपवास प्रारंभ किया। इसने भारत के मस्तिष्क में सद्भाव की मूर्ति स्थापित कर दी।

दिल्ली की मार-काट बंद हो गई | शहर में गांधीजी की उपस्थिति का असर हो गया। परंतु उन्हें अब भी 'तीव्र वेदना' थी। उन्होंने कहा था-"यह असहनीय है कि डा० जाकिरहुसैन जैसे व्यक्ति या शहीद सुहरावर्दी दिल्ली में मेरी तरह आजादी और हिफाजत के साथ घूम-फिर नहीं सकते |मैंने अपने जीवन में कभी ऐसी निराशा का अनुभव नहीं किया |"

इसलिए उन्होंने अनशन कर दिया। यह आमरण-अनशन होनेवाला था। इसके लिए उन्हें अकस्मात प्रेरणा हुई थी। उन्होंने नेहरू या पटेल या अपने डाक्टरों से कोई परामर्श नहीं किया था | साल-भर से दंगे शुरू हुए थे, वह धीरज के साथ ठहरे हुए थे; मजहबों के बीच आपसी मार-काट की भावना देश में अभी तक फैली हुई थी। "मानव-प्रयत्न के रूप में मेरे सारे साधन समाप्त हो गए। तब मैंने अपना सिर ईश्वर की गोद में रख दिया |ईश्वर ने मेरे लिए उपवास भेजा।" उपवास का निश्चय करने के बाद उन्होंने महीनों बाद पहली बार आनंद अनुभव किया।

वह जानते थे कि उनकी मृत्यु हो सकती है, "परंतु मृत्यु मेरे लिए यशस्वी उद्धार होगी और इससे तो अच्छी ही होगी कि मैं भारत, हिन्दू-धर्म, सिख-धर्म तथा इस्लाम का विनाश निरुपाय होकर देखता रहूँ।"

उपवास के पहले दिन वह प्रार्थना-स्थान को गए और रोज की तरह प्रार्थना कराई | एक पर्चे पर उनके पास भेजे गए लिखित प्रश्न में पूछा गया कि उपवास का दोष किस पर है? उन्होंने उत्तर दिया-"किसी पर नहीं, परंतु यदि हिन्दू और सिख मुसलमानों को दिल्ली से निकालने पर आमादा हैं, तो वे भारत तथा अपने धर्मों के साथ विश्वासघात करेंगे और इससे मुझे चोट लगती है। कुछ लोग ताना देते हैं कि मैं मुसलमानों की खातिर उपवास कर रहा

हूँ ! वे ठीक कहते हैं। अपने जीवन-भर मैंने अल्पसंख्यकों को और जरूरतमंदों की हिमायत की है।"

उन्होंने बताया कि "वह अपना उपवास तभी तोड़ेंगे, जब दिल्ली वास्तविक अर्थों" में शांत हो जाएगी।

उपवास के दूसरे दिन डाक्टरों ने गांधीजी को प्रार्थना में जाने से मना किया, इसलिए उन्होंने प्रार्थना-सभा में पढ़े जाने के लिए एक संदेश लिखा दिया। परंतु बाद में उन्होंने जाने का निश्चय किया। उन्होंने बताया कि उनके पास आनेवाले संदेशों का ताँता बँध गया है। सबसे अधिक खुशी देनेवाला संदेश लाहौर से मृदुला साराभाई का था। मृदुला ने तार भेजा था कि गांधीजी के मुसलमान मित्र, जिनमें कुछ मुस्लिम लीगी तथा पाकिस्तान के मंत्री भी शामिल थे, उनके जीवन के लिए चिन्तित थे और पूछते थे कि वे क्या करें।

गांधीजी का उत्तर था-"मेरा उपवास आत्म-शुद्धि की प्रक्रिया है और इसका अभिप्राय उन सबको आत्म-शुद्धि की इस प्रक्रिया में भाग लेने को आमंत्रित करता है, जिनकी इस उपवास के उद्देश्य से सहानुभूति हो । फर्ज कीजिए कि भारत के दोनों भागों में आत्म-शुद्धि की लहर दौड़ जाती है, तब पाकिस्तान 'पाक' बन जाएगा |ऐसा पाकिस्तान कभी नहीं मर सकता। तभी, और उसी समय, मुझे पछतावा होगा कि मैंने विभाजन को पाप बताया। आज तो मैं इसे पाप ही समझता हूँ।"

गांधीजी ने उपस्थित समुदाय को विश्वास दिलाया-"मेरी जरा भी इच्छा नहीं है कि उपवास जल्दी-से-जल्दी समाप्त हो। यदि मेरे जैसे मूर्ख की उन्मादभरी इच्छाएँ कभी पूरी न हों और उपवास कभी न टूटे, तो कोई चिन्ता की बात नहीं है। जब तक जरूरी हो, तब तक प्रतीक्षा करने में मुझे संतोष है, परंतु यह सोचकर मुझे चोट लगेगी कि लोगों ने सिर्फ मेरी जान बचाने की खातिर कार्रवाई की है।"

इस उपवास में गांधीजी ने चिकित्सकों द्वारा अपनी परीक्षा किया जाना पसंद नहीं किया। उन्होंने कहा-"मैंने अपने को भगवान के भरोसे पर छोड़ दिया है।" परंतु डा० गिल्डर ने

कहा कि डाक्टर लोग दैनिक विज्ञप्तियाँ निकालना चाहते हैं और उनकी परीक्षा किए बिना वह सच्ची बात नहीं बता सकते। इस पर महात्माजी ढीले पड़ गए | डा० सुशीला ने बताया कि उनके पेशाब में कुछ एसिटोन आने लगा है।

"इसका कारण यह है कि मुझमें काफी श्रद्धा नहीं है...।" गांधीजी ने जवाब दिया।

"परंतु एसिटोन तो एक रासायनिक पदार्थ है," डा० सुशीला ने उनकी बात काटते हुए कहा।

गांधीजी ने डा० सुशीला पर दृष्टि डाली, मानो वह बहुत दूर देख रहे हों और कहा-"विज्ञान कितना कम जानता है | विज्ञान में जो कुछ है, उससे अधिक जीवन में है और रसायन में जो कुछ है, उससे अधिक ईश्वर में है।"

वह पानी नहीं पी सकते थे, इससे जी मतलाने लगता था। मतली रोकने के लिए उन्होंने पानी में नीबू का रस या शहद मिलाने से इन्कार कर दिया । गुर्दे ठीक तरह काम नहीं कर रहे थे। वह काफी कमजोर हो गए थे। रोज उनका वजन एक सेर के करीब कम हो रहा था।

तीसरे दिन वह एनिमा लेने पर राजी हो गए। पिछली रात 2.30 बजे उनकी आँख खुल गई और उन्होंने गर्म पानी से स्नान की इच्छा प्रकट की। टब में बैठे-बैठे उन्होंने प्यारेलाल को एक वक्तव्य लिखाया, जिसमें भारत सरकार से पाकिस्तान को 55 करोड़ रुपया देने को कहा गया था | लिखाने के बाद उन्हें चक्कर आने लगा और प्यारेलाल ने उन्हें टब से उठाकर कुरसी पर बैठा दिया।

उस दिन गांधीजी बिड़ला भवन की एक बंद बरसाती में चारपाई पर घुटने पेट में दबाए लेटे रहे। उनकी आँखें बंद थीं और वह सोए हुए या अर्द्ध-मुर्च्छित मालूम होते थे। करीब दस फुट की दूरी पर दर्शनार्थियों की अनंत कतार चल रही थी। गांधीजी को देखकर कतार में जानेवाले भारतवासियों तथा विदेशियों के हृदय करुणा से भर गए, बहुत-से तो रो पड़े और हाथ जोड़कर मन-ही-मन विनती करने लगे। गांधीजी के चेहरे पर तीव्र यंत्रणा प्रकट हो रही थी। परंतु इस अवस्था में भी यह यातना लोकोत्तर प्रतीत होती थी । यह यातना श्रद्धा

के उल्लास से प्रशंमित हो गई थी, सेवा की अवगति से कम हो गई थी | उनकी अंतरात्मा जानती थी कि वह शांति में योगदान कर रहे हैं, इसलिए उनके मन में शांति थी।

सायँ 5 बजे, प्रार्थना से पहले, वह पूरी तरह जाग रहे थे, परंतु प्रार्थना-स्थान तक चल नहीं सकते थे। इसलिए उनके बिस्तर के पास माइक्रोफोन लगा दिया गया, जिससे लाउडस्पीकर के द्वारा प्रार्थना-स्थान पर उनका प्रवचन सुना जा सके तथा आकाशवाणी से प्रसारित किया जा सके।

क्षीण आवाज में उन्होंने कहा-"दूसरे लोग क्या कर रहे हैं, इससे विकल नहीं होना चाहिए | हममें से हर एक को अपने भीतर रोशनी डालनी चाहिए और जितना अधिक हो सके, अपने हृदय को शुद्ध करना चाहिए |...मृत्यु से कोई नहीं बच सकता। फिर उससे डरना क्या? वास्तव में मृत्यु तो एक मित्र है, जो यातना से मुक्ति दिलाती है।"

चौथे दिन गांधीजी की नब्ज की चाल में गड़बड़ी होने लगी।

17 जनवरी को गांधीजी का वजन 107 पौंड पर स्थिर हो गया। उन्हें मतलियाँ आती थीं और वह बेचैन थे। परंतु घंटों तक वह चुपचाप पड़े रहते थे या सो जाते थे। नेहरू आए और रोने लगे। गांधीजी ने प्यारेलाल को यह देखने के लिए शहर भेजा कि मुसलमान लोग बिना खतरे के वापस आ सकते हैं या नहीं।

18 जनवरी को गांधीजी की तबीयत पहले से अच्छी मालूम हुई। उन्होंने हल्के-हल्के मालिश कराई | उनका वजन 107 पौंड बना रहा।

13 तारीख को 11 बजे से, जब से गांधीजी ने उपवास शुरू किया था, विभिन्न जातियों, संगठनों तथा शरणार्थी समूहों के प्रतिनिधियों की कमेटियों की बैठकें डा० राजेन्द्रप्रसाद के घर पर हो रही थीं और विरोधी तत्त्वों के बीच वास्तविक शांति स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील थीं। इस बार किसी दस्तावेज पर हस्ताक्षर कराने का सवाल नहीं था। इससे गांधीजी को संतोष होनेवाला नहीं था | लोगों को ठोस प्रतिज्ञाएँ करनी थीं, जिनका उनके

अनुगामी पालन करें। इस जिम्मेदारी को महसूस करके कुछ प्रतिनिधिगण हिचकिचा रहे थे और अपने विवेक तथा अपने मातहतों से परामर्श करने के लिए चले गए थे।

आखिर 18 तारीख की सुबह प्रतिज्ञा-पत्र का मसविदा तैयार हो गया और उस पर हस्ताक्षर हो गए। इसे लेकर लगभग सौ प्रतिनिधि राजेन्द्रबाबू के मकान से बिड़ला भवन पहुँचे। नेहरू और आजाद पहले ही वहाँ मौजूद थे। दिल्ली पुलिस के मुख्य अधिकारी तथा उनके सहायक भी मौजूद थे। इन लोगों ने भी प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर किए थे। हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, यहूदी सभी उपस्थित थे। हिन्दू महासभा तथा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रतिनिधि भी थे।

पाकिस्तान के उच्च आयुक्त जनाब ज़ाहिदहुसैन भी उपस्थित थे।

राजेन्द्रबाबू ने महात्माजी को बतलाया कि उनके प्रतिज्ञा-पत्र में वचन है और उसे पूरा करने का कार्यक्रम है | प्रतिज्ञाएँ निश्चयात्मक थीं : “हम वचनबद्ध हैं कि मुसलमानों के जान, माल और ईमान की रक्षा करेंगे और दिल्ली में जो घटनाएँ हुई हैं, वे फिर नहीं होंगी ।”

गांधीजी सुनते जाते थे और सम्मति सूचक सिर हिलाते जाते थे।

“मुसलमानों की छोड़ी हुई मस्जिदें, जिन पर हिन्दुओं और सिखों ने कब्जा कर लिया है, वापस लौटा दी जाएँगी।”

“भागे हुए मुसलमान वापस आ सकते हैं और पहले की तरह अपने कारोबार चला सकते हैं।”

“ये सब हम अपने व्यक्तिगत प्रयत्नों से करेंगे, पुलिस या फौज की मदद से नहीं।"

अंत में राजेन्द्रबाबू ने गांधीजी से प्रार्थना की कि वह अपना उपवास तोड़ दें।

राजेन्द्रबाबू के मकान पर होनेवाली चर्चाओं की सूचना गांधीजी को मिलती रहती थी। प्रतिनिधियों द्वारा स्वीकार की गई कुछ बातें तो प्रारंभ में उन्होंने ही सुझाईं थीं।

गांधीजी ने अब उपस्थित जनों को संबोधन किया-"आपके शब्दों ने मुझे प्रभावित किया है। परंतु यदि आप लोग अपने को सिर्फ दिल्ली की सांप्रदायिक शांति के लिए जिम्मेदार मानते हैं, तो आपके आश्वासन का कोई मूल्य नहीं है और मैं तथा आप एक दिन महसूस करेंगे कि उपवास तोड़कर मैंने महान भूल की|हिन्दू महासभा तथा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रतिनिधि इस कमरे में मौजूद हैं। यदि ये लोग अपने वचनों के प्रति ईमानदार हैं तो दिल्ली के अलावा दूसरे स्थानों पर प्रकट होनेवाले पागलपन से उदासीन नहीं रह सकते|…दिल्ली भारत का हृदय है और आप लोग दिल्ली का सार-तत्त्व हैं। यदि आप सारे भारत को यह महसूस नहीं करा सकते कि हिन्दू, सिख और मुसलमान सब भाई-भाई हैं, तो भारत तथा पाकिस्तान दोनों के भविष्य की अशुभ घड़ी आनेवाली है।"

इस स्थल पर आवेग से अभिभूत होकर गांधीजी रो पड़े|उनके गालों पर आँसू बहने लगे। दर्शक भी सिसकियाँ भरने लगे, बहुत-से रोने लगे।

जब गांधीजी ने दुबारा बोलना शुरू किया, तो उनकी आवाज इतनी धीमी थी कि सुनाई नहीं देती थी। डा० सुशीला नैयर उनके शब्द दुहराती गईं। गांधीजी ने पूछा—"आप लोग मुझे धोखा तो नहीं दे रहे ? आप लोग सिर्फ मेरी जान बचाने की कोशिश तो नहीं कर रहे?"

मौलाना आजाद और अन्य मुस्लिम विद्वानों ने, हिन्दू महासभा तथा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की ओर से गणेशदत्त गोस्वामी ने गांधीजी को आश्वासन दिया कि यह बात नहीं है और उनसे उपवास तोड़ने की प्रार्थना की।

गांधीजी चारपाई पर बैठे हुए गंभीर विचार में मग्न हो गए। उपस्थित जन प्रतीक्षा करने लगे। अंत में गांधीजी ने घोषणा की कि वह अपना उपवास तोड़ देंगे। पारसी, मुस्लिम तथा जापानी धर्म-ग्रंथों का पाठ हुआ और फिर यह मंत्र बोला गया :

असतो मा सद्गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्मा अमृतंगमय

इसके बाद मौलाना आजाद ने पाव-भर नारंगी के रस का गिलास गांधीजी को दिया और गांधीजी ने धीरे-धीरे रस पिया।

उस दिन सुबह उठते ही नेहरू ने गांधीजी के साथ शाम तक उपवास का निश्चय किया था। उन्हें बिड़ला भवन बुलाया गया, जहाँ उन्होंने वचन दिया जाना तथा उपवास का समाप्त किया जाना देखा | मजाक करते हुए नेहरू ने गांधीजी से कहा-"देखिए, मैं उपवास कर रहा हूँ और अब मुझे समय से पहले अपना उपवास तोड़ना पड़ेगा।"

गांधीजी प्रसन्न हो गए। तीसरे पहर उन्होंने नेहरू के पास कुछ कागजात एक पर्च के साथ भेजे, जिसमें लिखा था-"मुझे आशा है, तुमने अपना उपवास समाप्त कर दिया होगा। ईश्वर करे, तुम बहुत समय तक भारत के जवाहर बने रहो।"

पाकिस्तान के विदेश-मंत्री सर मोहम्मद ज़फरुल्ला खाँ ने संयुकत-राष्ट्र-संघ की सुरक्षा-परिषद् को सूचना दी थी-"उपवास की प्रतिक्रिया-स्वरूप दोनों उपनिवेशों के बीच मैत्री की भावना तथा इच्छा की एक नई और जबरदस्त लहर ने संपूर्ण उप-महाद्वीप को ढक लिया है।"

पाकिस्तान और भारत के बीच की राष्ट्रीय सीमा भारत के हृदय में लगाया गया चीरा है, जो जुड़ा नहीं, और दोनों के बीच मैत्री दुष्कर है। फिर भी गांधीजी के उपवास ने यह चमत्कार दिखाया कि केवल दिल्ली में ही शांति स्थापित नहीं हुई, बल्कि दोनों उपनिवेशों में मजहबी दंगों और मार-काट का अंत हो गया।

विश्व-व्यापी समस्या का यह आंशिक हल उस व्यक्ति के नैतिक बल की यादगार के रूप में है, जिसकी सेवा करने की इच्छा प्राणों की ममता से कहीं अधिक थी। गांधीजी जीवन को प्रेम करते थे और जीवित रहना चाहते थे। लेकिन मरने के लिए उद्यत रहने में उन्हें सेवा की शक्ति प्राप्त हुई और उसीमें आनंद था। उपवास के बाद के बारह दिनों वह प्रसन्न और विनोदपूर्ण थे। निराशा काफूर हो गई थी और भविष्य के कार्य के लिए उनके मन में अनेक योजनाएँ थीं । उन्होंने मृत्यु का आह्वान किया और उन्हें जीवन का नया पट्टा मिल गया।

10 / अंतिम अध्याय

उपवास समाप्त होने के बाद पहले दिन गांधीजी को कुरसी पर बिठाकर प्रार्थना-स्थल पहुँचाया गया | अपने भाषण में, जिसकी आवाज बहुत धीमी थी, उन्होंने बताया कि हिन्दू-महासभा के एक पदाधिकारी ने दिल्ली की शांति-प्रतिज्ञा को मानने से इन्कार कर दिया है। गांधीजी ने इस पर दुःख प्रकट किया।

दूसरे दिन भी प्रार्थना के लिए उन्हें उठाकर ले जाया गया। अपने प्रार्थना-प्रवचन में उन्होंने जल्दी स्वास्थ्य-लाभ की तथा शांति का मिशन आगे बढ़ाने के लिए पाकिस्तान जाने की आशा व्यक्त की |

प्रश्नोत्तर के समय एक आदमी ने गांधीजी से कहा कि वह अपने को अवतार घोषित कर दें। गांधीजी ने परिश्रांत मुसकराहट से कहा-"चुपचाप बैठ जाओ |"

गांधीजी जिस समय बोल रहे थे, तभी धड़ाके की आवाज सुनाई दी | "यह क्या हुआ ?" उन्होंने पूछा, और फिर कहा-"मालूम नहीं, क्या है ?" श्रोताओं में घबराहट फैल गई। "इस पर ध्यान मत दो," वह बोले-"मेरी बात सुनो ।"

पास ही बाग की दीवार से महात्माजी पर बम फेंका गया था।

अगले दिन गांधीजी जब खुद चलकर प्रार्थना-सभा में पहुँचे, तो उन्होंने बताया कि कल की घटना के समय अविचलित रहने के लिए उनके पास बधाइयाँ चली आ रही हैं। वह कहने लगे-"इसके लिए मैं प्रशंसा का पात्र नहीं हूँ। मैंने समझा था कि सेना अभ्यास कर रही है। प्रशंसा का पात्र तो तब होऊँगा, जब ऐसे धड़ाके से मैं आहत हो जाऊँ और फिर भी मेरे चेहरे पर मुसकराहट बनी रहे और मारनेवाले के प्रति द्वेष न हो। जिस पथ-भ्रष्ट युवक ने बम फेंका है, उससे किसी को घृणा नहीं होनी चाहिए। वह शायद मुझे हिन्दू-धर्म का शत्रु समझता है |...परंतु हिन्दू-धर्म को बचाने का यह तरीका नहीं है। हिन्दू-धर्म तो मेरे ही तरीके से बच सकता है।"

एक बेपढ़ी बुढ़िया ने बम फेंकनेवाले के साथ धर-पकड़ की थी और पुलिस के आने तक उसे पकड़े रखा था | गांधीजी ने इस अशिक्षित बहन के सहज साहस की सराहना की। पुलिस के इंसपेक्टर जनरल से उन्होंने कहा कि उस नौजवान को तंग न करें।

इस नौजवान का नाम मदनलाल था। वह पंजाब से आया हुआ शरणार्थी था और उसने दिल्ली की एक मस्जिद में आश्रय ले रखा था। गांधीजी की इच्छा के अनुसार उसे मस्जिद से निकाल दिया गया था।

रोष में भरकर मदनलाल उन लोगों के दल में शामिल हो गया, जो गांधीजी की हत्या की साजिश कर रहे थे। जब बम ने अपना काम नहीं किया और मदनलाल गिरफ्तार हो गया, तो उसका साथी षड्यंत्रकारी नाथूराम विनायक गोडसे दिल्ली आया।

गोडसे बिड़ला-भवन के आस-पास चक्कर लगाने लगा। वह खाकी जाकट पहने रहता था। जाकट की जेब में एक छोटा पिस्तौल रखता था।

रविवार, 25 जनवरी को गांधीजी की प्रार्थना-सभा में रोज की अपेक्षा भारी भीड़ थी। गांधीजी खुश हुए। उन्होंने लोगों से कहा कि वे अपने साथ आसन या मोटी खादी का कपड़ा बैठने के लिए ले आया करें, क्योंकि जाड़ों में घास ठंडी और नम रहती है। उन्होंने बताया कि उन्हें हिन्दू और मुसलमानों से यह जानकर बड़ा हर्ष है कि दिल्ली ने हृदयों का ऐसा मिलन कभी अनुभव नहीं किया। इस सुधार की अवस्था में क्या यह नहीं हो सकता कि प्रार्थना में जो भी हिन्दू या सिख आएँ, वे अपने साथ कम-से-कम एक-एक मुसलमान लेते आएँ? गांधीजी के लिए यह भाई-चारे का एक ठोस उदाहरण होगा।

लेकिन मदनलाल, गोडसे तथा उनके सिद्धांतों के संयोजकों जैसे हिन्दू प्रार्थना में मुसलमानों की उपस्थिति और कुरान की आयतों के पाठ से कुपित हो उठे थे। इसके अतिरिक्त उन्हें यह भी आशा जान पड़ती थी कि हिंसात्मक ढंग से भारत को फिर से जोड़ने की दिशा में गांधीजी की मृत्यु पहला कदम होगी | वे चाहते थे कि गांधीजी को अपने बीच से हटाकर मुसलमानों को अरक्षित कर दें। उन्होंने यह नहीं समझा कि गांधीजी की हत्या से देश के

सामने यह प्रकट हो जाएगा कि मुसलमानों के कट्टर विरोधी कितने खतरनाक और अनुशासनहीन हैं और इस प्रकार उस हत्या का उल्टा ही प्रभाव पड़ेगा।

उपवास के बाद तनाव में कमी होने के बावजूद गांधीजी उन महान कठिनाइयों को जानते थे, जो नई अनुभवहीन सरकार के सामने आ रही थीं | कांग्रेस की क्षमता में उनका विश्वास जाता रहा था। अब तो बहुत-कुछ चोटी के दो नेताओं पर निर्भर था-प्रधान मंत्री नेहरू तथा उप-प्रधान मंत्री पटेल। ये दोनों सदा एक-दूसरे से सहमत नहीं होते थे। दोनों के स्वभाव परस्पर विरोधी थे। दोनों के बीच संघर्ष हो रहा था। गांधीजी इससे परेशान थे। वास्तव में मामला यहाँ तक बढ़ गया था कि गांधीजी को आशंका होने लगी कि नेहरू और पटेल सरकार में साथ-साथ काम कर सकेंगे या नहीं | यदि दोनों में से एक को पसंद करने की नौबत आती, तो गांधीजी शायद नेहरू को पसंद करते | पटेल को वह एक पुराने मित्र तथा कुशल प्रशासक के रूप में अच्छा समझते थे, परंतु नेहरू को वह प्यार करते थे और उन्हें भरोसा था कि हिन्दुओं तथा मुसलमानों के प्रति नेहरू का समभाव है। पटेल पर हिन्दुओं के प्रति पक्षपात का संदेह किया जाता था।

अंत में गांधीजी इस निर्णय पर पहुँचे कि नेहरू तथा पटेल दोनों एक-दूसरे के लिए अपरिहार्य हैं| दोनों में से एक के बिना सरकार बिलकुल कमजोर हो जाएगी। इसलिए गांधीजी ने नेहरू को अंग्रेजी में एक पर्चा भेजा, जिसमें लिखा था कि उन्हें तथा पटेल को देश के हित में "साथ बने रहना चाहिए |" 30 जनवरी को शाम के 4 बजे पटेल बिड़ला भवन में गांधीजी से मिलने और यही संदेश सुनने आए थे।

5 बजकर 5 मिनट पर गांधीजी प्रार्थना में देर होने से बेचैन हो गए और उन्होंने पटेल को बिदा किया। आभा और मनु के कंधों पर हाथ रखकर वह जल्दी-जल्दी प्रार्थना-स्थल की ओर चल दिए। ज्योंही प्रार्थना-स्थल पर आए, नाथूराम गोडसे कोहनी से भीड़ को हटाता हुआ आगे आया और ऐसा जान पड़ा कि वह झुककर गांधीजी को प्रणाम करेगा | उसका हाथ जेब में रखी हुई पिस्तौल को पकड़े हुए था।

गोडसे के नमस्कार को तथा उपस्थित व्यक्तियों के आदर-सूचक अभिवादन को स्वीकार करते हुए गांधीजी ने हाथ जोड़ लिए और मुसकराते हुए सबको आशीर्वाद दिया। इसी क्षण गोडसे ने पिस्तौल का घोड़ा दबा दिया। गांधीजी गिर पड़े और उनकी जीवन-लीला समाप्त हो गई | उनके मुँह से अंतिम शब्द निकले-"हे राम !"